आचार्य राजशेखर

डा० श्यामा वर्मा



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

2.5

आचार्य राजशेखर

डा० श्यामा वर्मा



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

आचार्य राजशेखर

डॉ० श्यामा वर्मा



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

आचार्य राजशेखर

प्रकाशक :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल.

प्रथम संस्करण :
१९७१

मूल्य :
दस रुपये

मुद्रक :
चन्द्रा प्रिन्टर्स, सुलतानिया रोड,
भोपाल.

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एकमत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी-गयी शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि में अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जैसे मान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी देश में शिक्षा-सम्बन्धी जो कमीशन या समितियाँ नियुक्त की गयीं, उन्होंने एकमत से इस सिद्धांत का अनुमोदन किया।

इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी—श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थों का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीक, अपितु मानविकी के क्षेत्र में भी विश्व में इतनी तीव्रता से नये अनुसंधानों और चिन्तनों का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढंग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले अंचलों के पिछड़ जाने की आशंका है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में विश्व-विद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय की यह योजना उसके शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य अकादमियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्य-प्रदेश में 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तकों के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं में बिखरे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षा-प्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे। प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने में हमें सहयोग प्रदान करें जिससे बिना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण का माध्यम हिन्दी बन सके।

जगदीशनारायण अवस्थी
शिक्षा-मंत्री
अध्यक्ष : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-समीक्षा की आचार्य-माला के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसके पूर्व आचार्य मम्मट और आचार्य हेमचन्द्र के सम्बन्ध में दो समीक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. श्यामा वर्मा की प्रस्तुत कृति इस माला का तृतीय पुष्प है।

काव्य-शास्त्रियों और नाटककारों में आचार्य राजेश्वर का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे एक प्रकार से मध्यप्रदेशीय कहे जा सकते हैं। दक्षिण भारत में जन्म लेकर और सम्भवतः वहीं विवाहित होकर उन्होंने महोदय (कन्नौज) को अपना साधना-क्षेत्र बनाया किन्तु उनके अन्तिम दिन कल्चुरि के शासक केयूरवर्ष के साथ उनकी राजधानी त्रिपुरी में बीते। अनुमान है कि उनका बाल्यकाल भी यहीं बीता होगा। उनकी लेखनी से प्रसूत त्रिपुरी तथा माहिष्मती आदि मध्यप्रदेशीय नगरों के वर्णन ने इस राज्य को गौरवान्वित किया है। सम्भवतः वे संस्कृत के एकमात्र भाग्यवान नाटककार हुए जिनकी कृति का रंगमंचीय प्रयोग उनकी पत्नी ने किया। अवन्तिसुन्दरी के व्यक्तित्व का उत्कर्ष राजशेखर की पत्नी होने के कारण ही नहीं, उनकी अपनी विद्वत्ता और कला-मर्मज्ञता के कारण विद्वत्-समाज में बहुत अधिक है। वे चौहान-क्षत्रिय कुल की थीं और लगता है कि राजशेखर से उनका परिणय पारस्परिक अनुराग का परिणाम था। 'काव्यमीमांसा' में अवन्तिसुन्दरी के विभिन्न मतों का उल्लेख मिलता है।

राजशेखर की नाट्य कृतियाँ—'बाल रामायण', 'बाल भारत', 'कर्पूरमञ्जरी' और 'विद्धशालभञ्जिका' प्रसिद्ध हैं। इन सबका काव्य की दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्व है। राजशेखर सरस-सूक्ति के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। वे इसे ही काव्य की आत्मा मानते थे। अतः उनकी रचनायें सरस सूक्तियों से भरी पड़ी हैं। 'कर्पूरमञ्जरी' एकमात्र उपलब्ध सट्टक है जिसका महत्त्व प्राकृत की दृष्टि से भी अद्वितीय है। इसमें तथा 'विद्धशालभञ्जिका' में उनके नाट्य-कौशल के दर्शन होते हैं। बाल-रामायण को भी नाटक की दृष्टि से नहीं तो काव्य की दृष्टि से अतीव उत्कृष्ट कोटि में रखा जा सकता है।

राजशेखर को आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित करने वाला उनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' है। यदि यह ग्रन्थ पूरा हो गया होता तो संस्कृत साहित्य का सागर होता। फिर भी जो भाग उपलब्ध है, उसका विशेष महत्व-है। इसमें राजशेखर ने सम्पूर्ण पूर्ववर्ती चिन्तन का सार संगृहीत कर दिया है। साहित्यिक क्षेत्र में शायद ही कोई भाग्यवान व्यक्ति राजशेखर के समान पर-वर्ती लेखकों द्वारा उद्धृत किया गया हो। भाषा, व्याकरण, दर्शन आदि समस्त वङ्मयीन अङ्गों पर राजशेखर का व्यापक अधिकार है। उनकी शैली अत्यन्त मधुर, प्रवाहमयी एवं प्रभावोत्पादक है। राजशेखर की प्रत्येक सूक्ति हृदय और बुद्धि दोनों को समान रूप से प्रभावित करती है। राजशेखर की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी राष्ट्र-भक्ति है। कालिदास के बाद अन्य किसी कवि या आचार्य ने भारत के समस्त जनपदों, नदियों, पर्वतों तथा रहन-सहन, खान-पान वेष-भूषा और संस्कार आदि के प्रति न इतना प्रेम दिखाया और न उनका इतना विशद वर्णन किया जितना राजशेखर ने किया है। राजशेखर के ग्रन्थ वस्तुतः सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक कोष हैं। इसलिए स्वयं-पूर्ण, आत्म-तुष्ट एवं श्री और सरस्वती दोनों के कृपापात्र आचार्य कवि के चरणों में यह पुष्प समर्पित करते हुए अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा है।

हिन्दी-टंकण में कुछ वर्णों की कमी के कारण संस्कृत उद्धरणों में सन्धि के कुछ नियमों, विशेषतः परसवर्णता का पालन पूर्णतः नहीं हो सका है, इस कारण कई स्थानों पर 'पञ्च' के लिए पंच या 'अङ्क' के लिए अंक और जहाँ के लिए 'जहां' जैसे प्रयोग मिलेंगे। आशा है सुधी पाठक संस्कृत-मुद्रण की कठिनाई समझ कर तदर्थ उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

भगवान करे, डॉ. श्यामा वर्मा की यह कृति राजशेखर की काव्य-माधुरी से जन-जन को आप्यायित कर साफल्य-लाभ करे और उनकी ही कृति का यह वाक्य सफल हो :-

'फुल्ला कीर्ति र्भ्रमति सुकवे र्दिक्षु यायावरस्य'

प्र. द. श्रीवास्तव

संचालक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

भोपाल :
१५ जून, १९७१

विषय-क्रम

चतुर्थ खण्ड

परिशिष्टियाँ

संकेत-सूची

का० म०	कर्पूरमञ्जरी
का० मी०	काव्यमीमांसा
वा० भा०	वाल-भारत
बा० रा०	बालरामायण
वि० भ०	विद्धशालभञ्जिका
ए० वी० ओ० आई०	Annals of the Bhandarkar Oriental Institute
आई० ए०	Indian Antiquary
ई० आई०	Epigraphica Indica
जी० ओ० एस०	Gaekwad's Oriental Series
एच० ओ० एस०	Harward's Oriental Series
सा० द०	साहित्य दर्पण
दश०	दशरूपक
शृं० प्र०	शृंगार-प्रकाश

प्रथम खण्ड

बभूव वल्मीकभवः कविःपुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स राजते सम्प्रति राजशेखरः ।।

कवि-परिचय

"एष कविः श्रीराजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति ।
हरिणाङ्क प्रतिपंक्तिसिद्धया निष्कलंका गुणा यस्य ॥"

राजशेखर की बहुमुखी प्रतिभा से संस्कृत साहित्य आलोकित है । महान् कवि, आचार्य, भूगोलज्ञ एवं संस्कृति के व्याख्याता के रूप में उन्होंने संस्कृत-साहित्य को समृद्ध और गौरवान्वित किया है । संस्कृत साहित्य के इतिहास में उनका स्थान निर्माता कलाकारों की परम्परा में अग्रगण्य रहेगा । उनमें न केवल वाल्मीकि, कालिदास, सुबन्धु, माघ, भारवि, बाण, श्रीहर्ष एवं भवभूति आदि के समान सर्जनात्मक प्रतिभा है, अपितु, भरत, भामह, वामन, उद्भट, रुद्रट एवं आनन्दवर्धन आदि के समान शास्त्रोपयोगी प्रतिभा भी । वस्तुतः उनमें काव्य और शास्त्र की सम्मिलित प्रतिभा का मञ्जुल सामञ्जस्य है । संस्कृत साहित्य के इतिहास में इस प्रकार के उभयमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार केवल तीन हैं---आचार्य दण्डी, आचार्य राजशेखर एवं पण्डितराज जगन्नाथ । आचार्य दण्डी के पश्चात् नवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य का वाङ्मयाकाश आचार्य राजशेखर की प्रतिभा से आलोकित रहा है ।

राजशेखर ने बाल-नाटकों की रचना से अपना कवि-जीवन प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे वे कवित्व और आचार्यत्व के मूर्धा पर पहुँच गये ।

इनके ये दृश्यकाव्य न केवल नाट्यकला की दृष्टि से, वरन् तत्कालीन सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक अवस्था पर प्रकाश डालने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं । राजशेखर की "काव्यमीमांसा" एक सहस्र वर्षों की शास्त्र-परम्परा का मधुसंचयन है ।

काल-निर्णय

यद्यपि राजशेखर का परिचय महाकवि कालिदास अथवा संस्कृत के अन्य अनेक कवियों तथा आचार्यों के समान दुर्लभ नहीं है, क्योंकि अपने ग्रन्थों के द्वारा उन्होंने अपने विषय में पर्याप्त जानकारी दे दी है, तथापि कवि के रचनाकाल को लेकर कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। कुछ विद्वानों ने भवभूति के काल से ही राजशेखर को सम्बद्ध कर दिया है। कुछ ने राजशेखर को किसी राजपूत राजा का मन्त्री माना है और कुछ उन्हें आठवीं शताब्दी में वर्तमान मानते हैं। मैक्समूलर जैसे विद्वान नाम की समानता के कारण काव्यमीमांसाकार राजशेखर और प्रबन्ध-कोषकर्ता राजशेखर सूरि को एक ही व्यक्ति मान बैठे हैं। परिणामस्वरूप राज-शेखर का काल विवाद का विषय बन गया है।

अन्तःसाक्ष्य-बहिःसाक्ष्य : काल सम्बन्धी विवाद का हल दो प्रकार की सामग्री के द्वारा निकाला जा सकता है। वे हैं:—अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य। राजशेखर ने अपनी रचनाओं में अपने कुल एवं आश्रयदाता नरेश की जानकारी दी है। यही अन्तःसाक्ष्य का आधार है। राजशेखर के पश्चात् धनपाल से लेकर आचार्य जगन्नाथ के समय तक निर्मित ग्रन्थों —जिनमें राजशेखर के विचार या उनकी सूक्तियाँ उद्धृत हैं—को उनके काल-निर्णय के विषय में बहिःसाक्ष्य का प्रामाणिक आधार माना जा सकता है। इनके द्वारा प्राप्त जानकारी में सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है। काल-निर्णय के लिए हमें इन्हीं आधारों पर आगे बढ़ना होगा।

सीमा-रेखा : राजशेखर के विषय में उपलब्ध जानकारी के आधार पर उन्हें ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच कहीं स्थापित करना होगा। इन सात सौ वर्षों के बीच राजशेखर का आविर्भाव मानने वाले विद्वानों के मत में उनका रचनाकाल निम्न प्रकार है—

१. ईसा की सातवीं शताब्दी —श्री० ए० बरो
२. ईसा की आठवीं शताब्दी —श्री० पीटर्सन० एवं पं० दुर्गाप्रसाद
३. ईसा की आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध—श्री० वी० एस० आपटे
४. ईसा की नवीं शताब्दी —डॉ० स्टेनकोनो, प्रो. लैनमैन,
—श्री० सी० डी० दयाल, पं० आर० ए० शास्त्री

—श्री० नारायण राम आचार्य, ...
श्री० एन० जी० सुरु, डॉ० पी०वी०
काणे, डॉ० मिराशी

५. ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध —श्री० विल्सन

६. ईसा की चौदहवीं शताब्दी —डॉ० मैक्समूलर

उक्त विद्वानों के द्वारा अपने मत के समर्थन में दिये गये तर्कों की परीक्षा करने पर हम राजशेखर के रचना-काल के विषय में सही निर्णय के निकट पहुँच सकते हैं।

ईसा की सातवीं शताब्दी : ईसा की सातवीं शताब्दी को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले श्री० बरो अपने समर्थन में कवि के नाटक बालरामायण एवं बालभारत के इस श्लोक को उघृत करते हैं—

> **बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा**
> **ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।**
> **स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया**
> **स वर्त्तते सम्प्रति राजशेखरः[1] ॥**

अर्थात् पहले वाल्मीकि नामक कवि हुए। फिर वे भर्तृमेण्ठ के नाम से भूमण्डल पर अवतरित हुए। तत्पश्चात् उन्होंने ही भवभूति के नाम से पृथ्वी पर जन्म लिया और अब वे ही राजशेखर के रूप में विद्यमान हैं।

राजशेखर के इस कथन से स्पष्ट है कि उनसे पूर्व भवभूति की मृत्यु हो चुकी थी। श्री० बरो महोदय ने भवभूति को सातवीं शताब्दी का माना है। उनका मत है कि कुछ समय पश्चात् आविर्भूत राजशेखर भी सातवीं शताब्दी में ही हुए होंगे।[2]

श्री० बरो महोदय ने इस मत पर श्री० वी० एस० आपटे का आक्षेप यह है कि भवभूति अपने युग में लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार नहीं थे। वें स्वयं कहते हैं—

> **ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां**
> **जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।**

---

१. बालरामायण १-१६ एवं बालभरत १-१२
२. भवभूति ऐण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिट्रेचर पृ० -१७

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥[1]

अर्थात् कभी न कभी, कहीं तो मेरे ग्रन्थों का सहृदय आलोचक पैदा होगा क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये करुण-क्रन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये झोली फैलाने वाले मलिन-यशा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय पश्चात् हुए होते, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम सौ वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में गौरव का अनुभव किया होगा। अतः वरो महोदय का मत, श्री० आप्टे की दृष्टि से उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का काल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'अमरकोष' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रसंगतः राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' के चार श्लोक उद्धृत हैं।[2] जिनके आधार पर श्री पीटर्सन एवं पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड़ के गुरु थे।[3] जयापीड़ का समय ७५० ई० है। अतः इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। यद्यपि काश्मीर के राजा जयापीड़ के गुरु का नाम क्षीरस्वामी अवश्य था, किन्तु उन्होंने अमरकोष पर टीका नहीं लिखी। वस्तुतः अमरकोष पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अतः जयापीड़ के गुरु

---

१. मालतीमाधव-१-४४
२. इनके आरम्भिकचरण हैं—
 (१) "दरदलित हरिद्रापिञ्जराण्यङ्गकानि"—अमरकोष पृ० १८ वि० भ० ३-१७
 (२) 'द्विभैर्व्योम्नि पुराण-मौक्तिककणैः'—अमरकोष पृ० २२ वि० भ० १-११
 (३) 'गोनासाविनियोजितायतजरत्'—अमरकोष पृ० ३८ वि० भ० १-३
 (४) 'झटिति कुचतटादौ नमो मन्मथाय—अमरकोष पृ० १८७ वि० भ० १-१७
३. इन्ट्रोडक्शन टु वल्लभदेवाज सुभाषितावली—पृ० १०१

क्षीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को आठवीं शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री आप्टे का कथन है कि—

"Bhavabhuti was not appreciated in his own days He had to rest with well ground - faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakeably pronounced in his favour. At such a dist·nce can alone Rajacekhara be reasonably supposed to mentlon Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other woeds he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,[1]

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध में आप्टे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में यह आधार अप्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता नरेश महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सियदोनी अभिलेख के अनुसार महेन्द्रपाल का राज्यपाल ९०३ ई० से ९०७ ई० ठहरता है।[2] अतः श्री० आप्टे का मत प्रमाणिक प्रतीत नहीं होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध : ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले विल्सन महोदय ने अपने मत की पुष्टि में कर्पूरमञ्जरी सट्टक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है[3] —

चाहुआणकुल मोलिमालिआ राअसेहर कइंद गेहिणी।
भत्तुणो किइमवंतिसुन्दरी सा पउंजइउमेअमिच्छइ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी न केवल चौहान कुलोत्पन्न है अपितु वह चौहान कुल का शिरोरत्न भी है। चौहान वंश राजपूतों का था।

---

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स पृ०-१४
२. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३।
३. कर्पूरमंजरी—१-११।

इससे श्री विल्सन महोदय ने अनुमान किया है कि राजशेखर किसी राजपूत नरेश के मन्त्री थे तथा वे ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे —

In a verse cited from another work by the writer the (Karpurmanjari) his wife is styled as the chaplet of the crest of the Chauhan Raco from which it follows that he belonged to that tribe. We can only conclude, therefore, that Rajshekhara was the minister of some Rajput prince who flourished in the central India, at the end of the eleventh or the beginning of the twelveth century."[१]

परन्तु कर्पूरमञ्जरी के आधार पर श्री० विल्सन ने जो अनुमान निकाले हैं वे युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होते[१]। यद्यपि राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी राजपूत थी, राजशेखर स्वयं जाति से ब्राह्मण थे। अतः पत्नी के आधार पर उन्हें भी राजपूत मानना संगत प्रतीत नहीं होता। दूसरी बात यह है कि, वे महामंत्री के पुत्र थे,[२] स्वयं मंत्री नहीं। जो व्यक्ति अपने ग्रन्थों में बार बार स्पष्ट शब्दों में स्वयं को महेन्द्रपाल का गुरु[३] एवं महेन्द्रपाल को अपना शिष्य[४] बता रहा है, वह किसी अन्य क्षत्रिय राजा का मंत्री कैसे हो सकता है? अतः दुर्बल प्रमाणों पर आधारित होने के कारण विल्सन महोदय का मत, जो राजशेखर को ग्यारहवीं शताब्दी-उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध में निर्धारित करता है, अनुपयुक्त है।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी को राजशेखर का रचनाकाल माननेवाले प्रमुख विद्वान् डॉ० मेक्समूलर की विचारधारा कुछ नवीन आधार लिए हुए हैं। वे कहते हैं:—

---

१. हिन्दू थियेटर—एच. एच. विल्सन जिल्द २ पृ० ३६२
२. बालरामायण—१-८ सूक्तमिदं तेनैव हि महामन्त्रिपुत्रेण।
   बालभारत—१-६ उक्तं हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण।
३. कर्पूरमंजरी—१-६ "बालकई कइराओ णिब्भरराजस्स तहउवज्झाओ।"
४. विद्धशालभंजिका—१-६ रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।
   —बालरामायण १-१८ देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणी
   —बालभारत १–११ वही

Rajachekhara lived in the fourteenth century. He wrote the Prabandhakosh in about 1347 A. D."[1]

उन्होंने राजशेखर को 'प्रवन्धकोप' नामक ग्रन्थ का रचयिता कहा है। चौदहवीं शताब्दी में राजशेखर सूरि नामक जैन साहित्यकार ने 'प्रबन्धकोष' की रचना की थी। किन्तु राजशेखर के जिन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है उनमें प्रबन्ध-कोष का नाम नहीं है और न ही वे जैन साहित्यकार थे। अतः राजशेखर को चौद-हवीं शताब्दी का मानना उचित नहीं है।

ईसा की नवीं शताब्दी को अनेक विद्वान् राजशेखर का रचनाकाल मानते हैं। "देवो यस्य महेन्द्रपाल नृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः" के अन्तः साक्ष्य को आधार मानकर वे थोड़े-बहुत अन्तर से नवीं शताब्दी के आस पास राजशेखर का समय निर्धारित करते हैं। विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित कालावधि इस प्रकार है।

१. डॉ० स्टेनकोनो एवं प्रो० लॉनमैन[2] —९०० ई०
२. श्री० सी० डी० दलाल,[3]
 पं० आर० ए० शास्त्री —८८० ई० –९२० ई०
३. श्री० नारायणराम आचार्य[4] —८८४ ई०–९५९ ई०
४. श्री० एन० जी० सुरु[5] —७५५ ई०–९३० ई०
५. डॉ० पी० वी० काणे[6] —८७५ ई०–९५० ई०
६. डॉ० वि० वि० मिराशी[7] —८८५ ई०–९७५ ई०

इन तिथियों के अवलोकन से हमारे आलोच्य कवि के लिए एक सीमा वन जाती है और वह है ८५५ ई० से ९७५ ई० तक का अन्तराल। इसके उचित निर्धारण के पूर्व इस प्रसंग में उन साहित्यकारों का उल्लेख उपयुक्त होगा, जिन्होंने राजशेखर को अपने ग्रन्थों में उद्‌घृत किया है। इसे हम साहित्यिक साक्ष्य कहेंगे—

---

१. इण्डिया:व्हाट कैन इट टीच अस ?–मैक्समूलर–पृ० ३२८
२. कर्पूरमंजरी—हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज, पृ०–१७९
३. काव्यमीमांसा (प्रस्तावना) गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० ३१
४. कर्पूरमंजरी–निर्णयसागर प्रेस–पृ० ५
५. कर्पूरमंज़री–(प्रस्तावना) श्री० एन० जी० सुरु पृ० १०२
६. ईन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण–डॉ० पी० वी० काणे पृ० २०७
७. पाठक कमेमोरेशन वॉल्यूम–डॉ० वी० वी० मिराशी पृ० ३६५-३६६

साहित्यिक साक्ष्य

राजशेखर के पश्चात् उनके भावों एवं शब्दों को ग्रहण करने वाले आचार्यों में प्रमुख हैं—धनंजय, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, कुन्तक, मम्मट, वाग्भट, हेमचन्द्र, अरिसिंह, अमरचन्द्र, देवेश्वर, केशवमिश्र एवं विश्वनाथ। कालक्रम की दृष्टि से धनंजय प्रथम हैं जिन्होंने राजशेखर के समय से कुछ समय पश्चात् ही उन्हें उद्धृत किया है। दशरूपक में प्रपञ्च के प्रसंग में वे कहते हैं—

"असद्भूतं मिथः स्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः।
असद्भूतेनार्थेन पारदार्यादिनैपुण्यादिना याऽन्योन्य–
स्तुतिः स प्रपञ्चः। यथा कर्पूरमञ्जर्यां[1] भैरवानन्दः—

रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।
भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डं च शय्या
कौलो धर्मः कस्य नो भाति रम्यः॥"

इसी प्रकार धनञ्जय ने आयोग की दस अवस्थाओं में से "आनन्द" नामक अवस्था के उदाहरण के लिये 'विद्धशालभञ्जिका' के निम्न श्लोक का उल्लेख किया है—

"आनन्दो यथा विद्धशालभञ्जिकायाम्[2]
सुधावद्ध—ग्रासैरुपवन—चकोरैरनुसृतां,
किरत् ज्योत्सनामच्छां नवलवलिपाकप्रणयिनीम्"

धनंजय का समय ९७४ ई० से ९९४ ई० के मध्य का है। अतः राजशेखर को ९९४ ईसवी के पूर्व का माना अनुचित न होगा।

इसी प्रकार सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू में पूर्ववर्ती साहित्यकारों की एक नामावली दी है जिसमें राजशेखर का नाम अन्त में आता है।

'यथा उर्वभारवि-भवभूति-भर्तृहरि भर्तृमेण्ठकण्ठगुणाढ्यव्यास–भासवाण-कालिदास मयूरनारायणकुमारमाघराजशेखरादिमहाकवि काव्येषु[3]

---

१. दशरूपक ३-१५
२. दशरूपक ४-५४।५५
३. यशास्तिलकचम्पू (चतुर्थ उच्छवास) २।११३

इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर यशस्तिलककार के समय में ज़ीवित थे या उनसे कुछ दिन पूर्व ही दिवंगत हुए थे। "यशास्तिलकचम्पू" की रचना ९५९ ई० में हुई थी। यही राजशेखर की परावधि मानी जा सकती है।

राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में वाल्मीकि से लेकर कवि रत्नाकर तक का उल्लेख किया है। रत्नाकर आनन्दवर्धन के समकालीन थे, तथा वे काश्मीर-नरेश अवन्ति वर्मा की विद्वत्समा को मण्डित करते थे। इनका समय ८५५ ई० -८८३ ई० है। अतः साहित्यिक सांक्ष्य के आधार पर राजशेखर ईस्वी सन् ८८३ से ईस्वी ९५९ के बीच रखेजा सकते हैं।

उपरिर्चचित काल-निर्धारक मान्यताओं तथा साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित तिथि का औचित्य एवं अनौचित्य, ऐतिहासिक साक्ष्य से स्पष्ट हो सकता है। क्योंकि राजशेखर द्वारा दी गई आश्रयदाता नरेशों की तिथि में सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है।

ऐतिहासिक साक्ष्य

राजशेखर ने कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में स्वयं को गुर्जर-प्रतिहारवंशी महेन्द्रपाल का उपाध्याय[1] वतलाया है।

"बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ"

महेन्द्रपाल की राजधानी कान्यकुब्ज नगरी थी। काठियावाड़ में स्थित ऊना के अभिलेख[2] में इस नरेश की प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति ८९३ ई० की होने के कारण इस शासक की पूर्वावधि भी ८९३ ई० मानी जा सकती है। इस राजा का प्रशस्ति-परक अन्तिम अभिलेख झाँसी जिले के सियदोनी[3] ग्राम में हैं। जिस पर ९०३-९०७ ई० अंकित है। अतः अभिलेखों के आधार पर महेन्द्रपाल का समय ८९० ई० से ९१० ई० तक स्थिर किया जा सकता है।

"बालभारत" की प्रस्तावना में गुर्जर-प्रतिहारवंशी महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल का उल्लेख है। यह नरेश राजशेखर का आश्रयदाता था।[4] इसके शासन काल के

---

१. कर्पूरमञ्जरी १.९
२. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द ९; पृ० ६ पादटिप्पणी द्रष्टव्य।
३. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३
४. बालभारत १-७नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलानां
रणकलितकलिंगः केलितट् केरलेन्दोः।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलानां कुठारो
हठहतरमठश्रीः श्री महीपालदेवः।

दो महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हैं। एक हड़ल[1] ग्राम में है, जिस पर महीपाल की तिथि ९१४ ई० उत्कीर्ण है, दूसरा एवं अंतिम प्रतापगढ़[2] में है जिस पर ९४८ ई० अंकित है। दोनों अभिलेखों के आधार पर राजशेखर के आश्रयदाता महीपाल का समय ९१० ई० से ९४८ ई० मानना प्रामाणिक है।

राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका'' त्रिपुरी-नरेश युवराजदेव के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत की गई थी। युवराजदेव त्रिपुरी के नरेश थे। विलहरी[3] ग्राम में प्राप्त शिलालेख के आधार पर इनका शासनकाल ९१० ई० से ९४८ ई० ज्ञात होता है।

इस प्रकार इन तीन आश्रयदाताओं का कालक्रम है:—

१. महेन्द्रपाल	—८९० ई० से ९१० ई०
२. महीपाल	—९१० ई० से ९४८ ई०
३. युवराजदेव प्रथम	—९१० ई० से ९४८ ई०

तीनों के आश्रय में रहने के कारण राजशेखर का रचनाकाल भी लगभग ८८० से ९५० तक रहा होगा।

निष्कर्ष

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचारों एवं अनुमानों के आधार पर राजशेखर का रचनाकाल ईसा की सातवीं शती से चौदहवीं शती के बीच स्थिर करने का प्रयास किया है। किन्तु कहीं महेन्द्रपाल की तिथि और कहीं राजशेखर की कृतियों से उनका साम्य न होने के कारण वे तिथियाँ अनुपयुक्त हैं। कतिपय विद्वानों ने नवम शताब्दी के आसपास ही राजशेखर का समय निर्धारित किया है किन्तु साहित्यिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार राजशेखर निश्चित ही ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में उतर चुके थे। दूसरे, जो विद्वान् राजशेखर को नवम शताब्दी का मानते हैं वे भी उनका काल ८८५ ई० के लगभग ही स्थिर करते हैं।

राजशेखर महेन्द्रपाल के गुरु थे। महेन्द्रपाल के पिता मिहिरभोज की मृत्यु ८८५ ई० में हो चुकी थी। इसी समय महेन्द्रपाल (ई० ८८५ में) राज्य:धिष्ठित

१. इंडियन एण्टीक्वेरी–जिल्द-१२ पृ० १९३ पादटिप्पणी-द्रष्टव्य
२. इंडियन एण्टीक्वेरी-जिल्द १४ पृ० १२२ पाद टिप्पणी द्रष्टव्य
३. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० २५२ पादटिप्पणी द्रष्टव्य

हुए थे। महेन्द्रपाल के गुरु राजशेखर ने भी अनुमानतः ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया होगा।

उन्होंने युवराजदेव (९१० ई० से ९४८ ई० तक) की सभा को अलंकृत किया था। वहीं उन्होंने 'विद्धशालभञ्जिका' का प्रणयन किया होगा। तत्पश्चात् प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की रूपरेखा निर्धारित की होगी। लगता है कि इसी पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना करते-करते नब्बे वर्ष की आयु में सन् ९७५ ई० के लगभग वे दिवंगत हो गए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ८८५ ई० से ९७५ ई० तक साहित्य-जगत को आलोकित करते रहे।

राजशेखर नामों की अनेकता

राजशेखर नाम के अनेक व्यक्ति संस्कृत साहित्य में मिलते हैं। किन्तु उनका स्थितिकाल उनके नामों की अनेकता के सम्बन्ध में फैली भ्रान्ति का निराकरण करता है।

(१) सन् ३२२ में केरल प्रदेश में राजशेखर नाम के एक राजा हुए थे।[१] उन्होंने 'मुकुन्दमाला' ग्रन्थ की रचना की थी। अभिनव कालिदास के शिष्य कवि कुञ्जर ने 'राजशेखर-चरित' नामक प्रबन्ध का निर्माण किया जिसमें उस राजा को "कुलशेखर" और "रसिकशेखर" शब्दों से सम्बोधित किया है तथा उसके जीवन की प्रमुख घटनायें वर्णित की हैं।

(२) माधवाचार्य ने अपने "शंकरदिग्विजय" में राजशेखर नाम के राजा[२] का उल्लेख किया है तथा उसे भी केरल प्रदेश का राजा बतलाया है। साथ में यह भी लिखा है कि वे आठवीं शताब्दी के शंकराचार्य के समकालीन थे। अतः राजशेखर-चरित में वर्णित केरल क्षितिपति 'राजशेखर' माधवाचार्य वर्णित राजा 'राजशेखर' से भिन्न हैं। यह तो स्पष्ट है लेकिन 'शंकरदिग्विजय' और उसके लेखक माधवाचार्य, दोनों की जानकारी संदिग्ध होने के कारण उपर्युक्त विवेचन विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—एन. कृष्णमाचारी—पृ० ५०८।
२. वही—, पृ० ६२५

(४) दक्षिण में जंगेजशेरि के समीप तलइनइल्ल गांव में ७५० ई० से ८५० ई० के वीच किसी राजशेखर नामक नरेश[1] के होने की जनश्रुति प्रचलित है। इस जनश्रुति के प्रामाणिक होने में संदेह है।

(४) इतिहास में राजशेखर सूरिनामक एक जैनाचार्य[2] का नाम भी मिलता है। इन्होंने प्रवन्धकोष' या 'चतुर्विशंति प्रवन्ध' की रचना की थी। इनका समय १३४८ ई० है। डॉ० मैक्समूलर ने नाम की समानता के कारण भ्रान्ति से यायावरीभ राजशेखर और जैन राजशेखर को अभिन्न माना है।

(५) इन राजशेखरों के अतिरिक्त गोदावरी के किनारे पेरुर में भी एक कोल्लूरिवंशज राजशेखर[3] हुए हैं। इनका दूसरा नाम सोमशेखर था। इनकी तीन रचनायें—'साहित्यकल्पद्रुम' 'शिवशतक' और 'अलंकारमकरन्द' हैं। इनका समय १८४० ई० है।

उक्त पाँचों राजशेखर नामक व्यक्तियों में से तीन नरेश, एक कोल्लूरिवंशज साहित्यकार और एक जैन साहित्यकार हैं। कवि-आचार्य राजशेखर न तो राजा थे और न जैन। दूसरे राजशेखर का काल ८८५ ई० से ९७५ ई० के मध्य का है। अतः 'काव्यमीमांसाकार' राजशेखर इन सव राजशेखरों से सर्वथा भिन्न हैं।

जन्म-स्थान

यह निर्विवाद है कि राजशेखर, गुर्जर-प्रतिहार महेन्द्रपाल और महीपाल के शासन-काल में 'कान्यकुब्ज' में थे। वे कुछ समय तक कलचुरि नरेश युवराजदेव की राजधानी 'त्रिपुरी' में भी रहे। किन्तु उनके जन्मस्थान का प्रश्न अब भी विचारणीय वना हुआ है।

राजशेखर के पितामह अकालजलद महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित जनों के मूर्धन्य थे।' तदामुष्यायनस्य महाराष्ट्र चूड़ामणेरकालजलदस्य चतुर्थोदौर्दुकिः।'[4] किन्तु राजशेखर का जन्म-स्थान महाराष्ट्र था, यह निश्चित नहीं है। इनके जन्मस्थान का निर्धारण करने वाले विद्वानों के दो वर्ग हैं। पहला यह कहता है कि वे मध्यप्रदेश में उत्पन्न हुए थे। दूसरे वर्ग का कथन है कि उनका जन्म-स्थान दक्षिण प्रदेश था।

१. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—एन. कृष्णमाचारी— पृ० ६२६।
२. —वही— पृ० ४३२।
३. —वही— पृ० ५०८।
४. वालरामायण १-१३।

प्रथम वर्ग के समर्थक डॉ० मनमोहन घोष हैं ।[1] उनकी धारणा है कि देश-विशेष के कारण उन देशों के कवि अपनी मातृभाषा का आश्रय लेते हैं। उनका कथन है कि स्वयं राजशेखर इसको स्वीकार करते हैं कि गौड़ आदि देशों के कवि संस्कृत में विशेष रुचि रखते हैं । लाटदेशवासी प्राकृतप्रिय होते हैं । मरुभूमि और पंजाव के कवि अपभ्रंश भाषा में अधिक रुचि रखते हैं । अवन्ति, पारियात्र, दशपुर आदि देशों के कवि भूतभाषा या पैशाचीभाषा का अधिक प्रयोग करते हैं । मध्यदेश-निवासी कविगण सभी भाषाओं में समान रुचि रखते हैं ।[2] राजशेखर ने स्वयं को सर्वभाषा विचक्षण[3] कहा है । सर्वभाषाओं में निपुणता मध्यदेशीय कवि की विशेषता है । अतः घोष महोदय का अनुमान है कि राजशेखर मध्यदेश में उत्पन्न हुए थे ।

डॉ० घोष का दूसरा तर्क यह है कि राजशेखर ने अपनी रचनाओं में कन्नौज और पाँचाल की न केवल चर्चा की है वरन् अन्य जनपदों की तुलना में उसे अपेक्षाकृत अधिक गौरव भी प्रदान किया है । "वेषं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम्[4]" इस पंक्ति का आश्रय लेते हुए वे कहते हैं कि कवि का अपनी जन्म-भूमि में पहुँकर इस प्रकार अनुराग प्रदर्शित करना स्वाभाविक है। उनके मतानुसार "पाँचाल मण्डलभुवां सुभगः कवीनां श्रोत्रे मधु क्षरति किञ्च काव्यपाठः" (अर्थात् पांचाल-देशीय कवियों की पाठ्यप्रणाली रसमिश्रित होती है) यह गौरवोक्ति जन्मभूमि का ही संकेत करती है ।

डा० घोष के दोनों अनुमान निर्बल प्रतीत होते हैं । राजशेखर 'सर्वभाषा चतुर' थे, यह तो निर्विवाद है, किन्तु यह वात ध्यान देने योग्य है कि वे महाकवि ही नहीं, कविराज थे । भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रबन्धों की स्वतंत्रतापूर्वक, निबधिगति से रचना करनेवाला कवि ही महाकवि हो सकता है ।[5] अतः सर्व-भाषानिपुणत्व उनके कविराज होने का प्रमाण है, मध्यदेशीय होने का नहीं ।

१. द्रष्टव्य—इन्ट्रोडक्शन टु कर्पूरमंजरी—डॉ० एम० एम० घोष—पृ० ६५—६८
२. काव्यमीमांसा—अध्याय १० पृ० ५५ ।
गौड़ाद्याः संस्कृतस्थाः परिचितरुचयः प्राकृते लाटदेश्याः,
सापभ्रंशप्रयोगाः सकल मरुभुवष्टक्कभादानकाश्च ।
आवन्त्याः पारियात्राः सहदशपुरजैर्भूति भाषां भजन्ते
यो मध्येमध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिष्णः ।
३. बालरामायण—अंक १ पृ० ८ ।
४. काव्यमीमांसा—अध्याय ३ पृ० ७ ।
५. काव्यमीमांसा अध्याय ५ पृ० १९ ।

उनकी पूरी धारणा—कि पाँचाल और कन्नौज के कवियों तथा सुन्दरियों के प्रति उनके प्रशंसात्मक वचन उनका मध्यदेशीय होना सूचित करते हैं—अनुपयुक्त हैं। ऐसे तर्क यदि मान लिये जायें तो साहित्यकारों के स्थान-निर्धारण का काम अत्यन्त सरल हो जायगा किन्तु इसके परिणाम कितने दोषपूर्ण होंगे यह सहज ही कल्पित किया जा सकता है। दक्षिण प्रदेश को राजशेखर का जन्म-स्थान प्रमाणित करने वाले श्री आपटे का कथन है कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में दक्षिणात्यों के आचरण, उनकी स्थानीय विशेषताओं एवं दक्षिण की नदियों के सौन्दर्य का अत्यन्त सहृदयतापूर्वक वर्णन किया है। अतः आपटे महोदय का अनुमान है कि राजशेखर दक्षिण देशवासी या महाराष्ट्र के निवासी रहे होंगे।[1] इस अनुमान को वे इस तर्क से पुष्ट करते हैं कि सम्भवतः उनके हृदय पर जन्म-भूमि की प्रकृति तथा लोक-रीति की प्रतिभा का इस प्रकार का अंकन होना सहज है। श्री आपटे महोदय के कथन में प्रामाणिकता दिखाई देती है। तद्धितप्रियता दाक्षिणात्यों की एक साहित्यक विशेषता रही है। राजशेखर के ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि 'काव्यमीमांसा' में न केवल 'तद्धिताप्रिया हि दाक्षिणात्याः' इस महाभाष्य के वाक्य का स्मरण दिलाया गया है प्रत्युत उनकी अपनी रचनाओं में तद्धित-रूपों का बहुलता से प्रयोग भी किया है।

श्री नारायण दीक्षित ने 'विद्धशालभञ्जिका' की टीका में लिखा है कि बाल-रामायणे स्वस्य महाराष्ट्रवर्णनात् महाराष्ट्रः कविः। सोऽयं देशी-प्रायस्वदेश-जान् प्रयुक्तवान्। योऽस्माकं सुबोधो बहुधास्ति सः'। इस प्रकार श्री दीक्षित ने राजशेखर को स्पष्ट रूप से महाराष्ट्र का कवि कहा है।

डॉ० मिराशी[2], श्री स्टेनकोनो एवं श्री लॉनमैन[3], श्री एस० के०[4] दे, श्री कृष्णमाचारियर[5], श्री पी० वी० काणे[6], श्री दलाल एवं श्री शास्त्री[7] इसी पक्ष

---

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स—आपटे पृ० २२।
२. ए० बी० ओ० आर० आई०—पृ० ३६६।
३. कर्पूरमञ्जरी—हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज—पृ० १८०–१८१।
४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—जिल्द १—एस० के० दे पृ० ४२५।
५. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—एन० कृष्णमाचारी—पृ० ६२५।
६. इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण—डॉ० काणे—पृ० २०७।
७. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज—पृ० ३० (प्रस्तावना)।

के समर्थक हैं। राजशेखर का जन्मस्थान महाराष्ट्र मानने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिये। हाँ, इस विशाल महाराष्ट्र में किस भू-भाग विशेष को कवि ने अपने जन्म से कृतार्थ किया, यह प्रश्न दुरुह तो नहीं, किन्तु विवेचनीय है।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में काव्य-पुरुष को विदर्भ-देशोत्पन्न बतलाया है और उसे वैदर्भी रीति से ही आकृष्ट भी किया है। उन्होंने साहित्य का जन्म-स्थान, काव्य-पुरुष तथा साहित्य-विद्यावधू का विवाहस्थान इसी विदर्भभूमि को माना है। उनके कर्पूमञ्जरी सट्टक की नायिका भी विदर्भ देश की ही है। उनके ग्रन्थों में इतना गौरवपूर्ण 'विदर्भ'—निश्चित ही कवि का जन्म स्थान होना चाहिये।

विदर्भ का अपना निजी इतिहास है। वत्सगुल्म अकोला जिले में स्थित वाशिम का ही प्राचीन नाम है। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में इस नगरी को वाकाटक नरेशों की वैभवशाली राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। उन नरेशों के साथ ही वह गौरव भी धाराशायी हो गया। राजशेखर ने पांच सौ वर्षों के पश्चात् उस वैभव-विहीना नगरी को, साहित्यिक प्रतिष्ठा देकर पुनः गरिमा से मण्डित किया। राजशेखर के आदर्श भवभूति भी विदर्भ देश में पैदा हुए थे। किन्तु उन्होंने विदर्भ को विशेष महत्व नहीं दिया। राजशेखर ने उसे इतनी अधिक प्रतिष्ठा जन्मभूमि के प्रेम के कारण ही प्रदान की है।

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के निर्माण में वंश, पूर्वज एवं माता पिता का अत्यधिक महत्व होता है—

वंश

राजशेखर यायावर वंश में उत्पन्न हुए थे। यह यायावरवंश ब्राह्मणों का ही होता है। अतः राजशेखर ब्राह्मण जाति के थे। यायावर शब्द का सामान्य अर्थ है—निरन्तर चलने वाला। प्राचीन काल में धर्मशास्त्रकारों ने यायावर श्रेणी गृहस्थों की बतलाई है। देवल[1] ने गृहस्थों को दो भागों में बाँटा है। १—शालीन तथा २—यायावर। यायावर शालीन से ऊंचे माने जाते हैं। बौधायन[2] ने यायावर के विषय में कहा है कि यायावर गृहस्थ अत्युत्तम जीविका चलाने वाले होते हैं। वे काटकर घर ले जाते समय पृथ्वी पर गिरे अन्न को ही जीविकार्थ चुनते हैं और सम्पत्ति का संचय नहीं करते। वे जीवकोपार्जनार्थ

१. याज्ञवल्क्यस्मृति १—१२८।
२. बौधायन धर्मसूत्र ३—१—१।

पौरोहित्य, अध्यापकत्व अथवा दान का आश्रय नहीं लेते । बौधायन से भिन्न मत वैखानस-गृह्यसूत्र[१] में उपलब्ध होता है । इस सूत्र में यायावरों के छह कार्य गिनाये हैं । १—हविष एवं सोम यज्ञ का सम्पादन, २—यज्ञ का पौरोहित्य, ३—वेद का अध्ययन अध्यापन, ४—दान एवं प्रतिग्रह, ५—श्रौत एवं स्मार्त अग्नि का निरन्तर सेवन तथा अतिथियों की परिचर्या ।

फिर भी सम्पूर्ण विवेचन से ज्ञात होता है कि यायावर वंश अपनी धार्मिकता, नैष्ठिकता तथा सदाचार के लिये सदा से प्रसिद्ध है । राजशेखर ने स्वयं को वारंवार यायावर या यायावरीय कहा है ।

पूर्वज

यह यायावर कुल, कवियों के प्रसव के लिये कल्पतरु था । इस कुल में राजशेखर के पूर्वजों में अकालजलद, सुरानन्द एवं कविराज आदि उल्लेखनीय काव्यकार हुए हैं ।[२]

कविराज अकालजलद राजशेखर के प्रपितामह थे । वे महाराष्ट्र के प्रतिष्ठितों में भी मूर्धन्य थे । राजशेखर अकालजलद के विषय में कहते हैं—"जब सूखे सरोवर में मेंढक अपने बिलों में पड़े मृतप्राय हो रहे थे, तब अकालजलद ने आकर सूखे सरोवर में ऐसी वर्षा की कि अब उसी में जंगली हाथियों के झुंड गले तक डूब कर जल पी रहे हैं ।[३] कादम्वरीराम नामक नाटककार ने, अकालजलद के श्लोकों को अपनी कृति में इस कुशलता से संविष्ट किया कि वे उसी के प्रतीत होने लगे । अकालजलद की वचन-चन्द्रिका का कवि-चकोर नित्य ही पान करते हैं ।[४] किन्तु वह चन्द्रिका रिक्त नहीं होती । इससे स्पष्ट है कि राजशेखर के प्रपितामह महाराष्ट्र देश के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार थे ।

अकालजलद के समान सुरानन्द भी यायावर वंश के थे तथा राजशेखर के पूर्वज थे । संभवतः ये राजशेखर के पितामह होंगे । सुरानन्द चेदिमण्डल के भूषण थे ।[५] राजशेखर ने काव्यमीमांसा में सुरानन्द के "अपहरण" संबंधी मत को

---

१. वैखानस—गृह्यसूत्र १—८ ।
२. वालरामायण १—१३ ।
३. सूक्तिमुक्तावली ४—८४ ।
४. सूक्तिमुक्तावली ४—८३ ।
५. सूक्तिमुक्तावली ४—८७ ।

नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
नदीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डल मण्डनम् ।।

ग्रादरपूर्वक ग्रहण किया है । इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर उनकी विद्वत्ता एवं प्रतिष्ठा से अपनी युवावस्था में ही लाभान्वित हुए होंगे ।

इसी यायावर वंश में तरल नाम के कवि भी प्रसिद्ध हैं । सूक्तिमुक्तावली में यायावर कुलश्रेणी के मण्डनरूप में तरल कवि का परिचय मिलता है ।[1] राघवपाण्डवीय काव्य के रचयिता कविराज से हम अवश्य परिचित हैं । किन्तु यह यायावरीय कविराज से भिन्न हैं। क्योंकि यह कविराज धारानरेश कामदेव (सन् ११८२–११८७) के समकालीन थे । यायावरीय कविराज के विषय में अन्य किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं है ।

माता पिता : राजशेखर की माता का नाम शीवलती तथा पिता का नाम दुर्दुक या दुहिक था–"तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकाल जलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः शीलवती सुनुरुपाध्याय श्रीराजशेखर इत्यपर्याप्तं वहुमानेन ।"[2] नाम को छोड़कर उनकी माता के विषय में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है । कवि के पिता किसी राजा के महामंत्री थे[3] किन्तु किस राजदरबार में वे महामंत्री का पद सम्हाल रहे थे इसकी भी विश्वसनीय जानकारी हमें प्राप्त नहीं है । इनके परिवार के अन्य सदस्यों, या भाई बहिनों आदि के विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है । हो सकता है, वे अपने माता पिता के एक मात्र पुत्र रहे हों ।

पत्नी : उन्हें श्री एवं सरस्वती से वरप्राप्ता पत्नी का भी लाभ हुआ था। नवम शताब्दी में क्षत्रियों का चौहान कुल प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर हो रहा था । राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी चौहान वंशीया क्षत्रिया थी। अवन्तिसुन्दरी का कुल अन्य चौहानों में मूर्धन्य माना जाता था।[4] स्पष्ट है कि राजशेखर तथा अवन्तिसुन्दरी का विवाह अन्तर्जातीय या अनुलोभ था । इस अन्तर्जातीय (अनुलोम) विवाह के लिये राजशेखर को कितने बड़े संघर्ष का सामना करना पड़ा होगा यह अनुमान हम सहज ही कर सकते हैं ।

---

१. सूक्तिमुक्तावली:—
   यायावरकुलश्रेणेर्हरियष्टेश्च मण्डनम् ।
   सुवर्णबन्धरुचिरस्तरलस्तरलो यथा ॥
२. बालरामायण–अंक १–१३–१४ ।
३. बालभारत १–८।६ (उक्तं हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण)
   बालरामायण–१–८।७ (सूक्तमिदं तेनैव महामन्त्रिपुत्रेण)
४. कर्पुरमंजरी १–११
   चाहुआणकुलमोलिमालिआ राउसेहर कइंदगेहिणी ।
   भत्तुणो किइमवंतिसुन्दरी सा पउंजइउमेअमिच्छइ ॥

अविन्तसुन्दरी विदुषी महिला थी । संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं पर उनका प्रभुत्व था । उनके द्वारा रचे गये किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम नहीं मिलता, फिर भी इतना स्पष्ट है कि वे अलंकारशास्त्र में निपुण थी । 'काव्यमीमांसा' में अवन्तिसुन्दरी के मतों का तीन बार उल्लेख है । एक में उन्होंने वामन के पाक विषयक मत[1] का खण्डन किया है । दूसरे शब्दहरण के विषय में[2] अवन्तिसुन्दरी का मत महत्वपूर्ण है । तीसरे रस-परिपाक के विषय में[3] भी उनका स्वतंत्र मन्तव्य मिलता है । हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में[4] अवन्तिसुन्दरी को दो बार उद्धृत किया है जिससे स्पष्ट है कि वे न केवल संस्कृत और प्राकृत अपितु तत्कालीन जनभाषाओं में भी पारंगत थीं । दसवीं शताब्दी के तिलकमंजरीकार आचार्य धनपाल की छोटी बहन का नाम भी अवन्तिसुन्दरी था । धनपाल ने उसके लिये 'पाइअलच्छी' की रचना की थी । डॉ० बूलर इसी आधार पर 'पाइअलच्छी' की प्रस्तावना में[5] यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि हेमचन्द्र की देशी नाममाला में जिस अविन्तसुन्दरी का उल्लेख है वह धनपाल की बहन थी, कर्पूरमंजरीकार राजशेखर की पत्नी नहीं । बूलर महोदय की यह बात कितनी हास्यास्पद लगती है ।

राजशेखर ने कर्पूरमंजरी की रचना अवन्तिसुन्दरी के लिये की थी । नाम से अवन्तिसुन्दरी अवन्तिदेश की प्रतीत होती है । संभव है उसका नाम कुछ अन्य हो, परन्तु अवन्तिप्रदेश पर प्रगाढ़ अनुराग होने से उन्होंने प्रेयसी का नाम अवन्तिसुन्दरी रख लिया हो ।

पारिवारिक जीवन

राजशेखर की साहित्यक प्रतिष्ठा को बनाये रखने में इनकी धर्मपत्नी का बहुत बड़ा योगदान प्रतीत होता है । इनका पारिवारिक जीवन सुखद रहा होगा । क्योंकि "कविका जैसा स्वभाव होता है वैसा ही उसका काव्य होता है । जैसा चित्रकार होता है वैसा ही उसका चित्र होता है" । इस नियम से कवि के साहित्य से

---

१. काव्यमीमांसा १–११
२. काव्यमीमांसा अ ५ पृ० २०
३. वही अ ११ पृ० ५७ ।
४. देशीनाममाला ५–७१, ५–१५७ ।
५. पाइअलच्छी–डा० बूलर (प्रस्तावना) पृ० ७ ।

संतुष्ट पारिवारिक जीवन का पता चलता है । उनके समस्त ग्रन्थों का सम्यक् निरीक्षण करने से मालूम होता है कि वे विलासी तथा विनोदी स्वभाव के थे । उनके जीवन का अधिकांश भाग राजदरबार में ही बीता था । अतः उनकी वाणी में शिष्टता तथा आचार-विचार एवं वेशभूषा में राजसभोचित गरिमा थी । आदर्श कवि की जीवन-चर्या का वर्णन राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में किया है । अनुमानतः उनका जीवन तदनुरूप रहा होगा । इस दृष्टि से वे वात्स्यायन वर्णित नागरिकचर्या के नागरक थे । वात्स्यायन के नागरक सुख समृद्धि के प्रतीक थे । हमारे काव्य-साधक के विषय में भी यह कथन अति-शयोक्ति न होगी ।

अध्ययन

राजशेखर ने किस गुरुकुल या विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण की, इसका निर्देश प्राप्त नहीं है । राजशेखर ने स्वयं कवि के लिये वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, राजसिद्धान्तत्रयी, सांसारिक या व्यवहारिक वृत्त, अन्यान्य कवियों की रचनायें, दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य, प्रकीर्णक (चौंसठ कलायें, आयुर्वेद, ज्योतिष, वृक्षशास्त्र, अश्व गजलक्षण आदि) का अध्ययन आवश्यक बतलाया है । वे स्वयं चारों वेदों और वेदांगों के विद्वान थे । इन्होंने ऋग्वेद की दो रचनायें काव्यमीमांसा में उद्धृत की है । काव्यपुरुष की उनकी कल्पना पुरुष-सूक्त पर आधारित है । ऐतरेत, शतपय, तैत्तिरीय ब्राह्मण, मुण्डक, श्वेताश्तर, ईश और महानारायणादि उपनिषदों का उन्होंने मनन किया था ।

संस्कृत व्याकरण का इनका अध्ययन गम्भीर था । कविरहस्य का छठा अध्याय व्याकरण शास्त्र के नियमों से संबन्धित है । प्रकृति और प्रत्यय निष्पन्न सुबन्त एवं तिङन्त शब्द, प्रातिपादिक एवं पद की परिभाषा, सुबन्त, समासान्त तद्धितान्त कृदन्त और तिङन्त के पाँच पद-भेद, समासवृत्ति के छः भेद, तद्धितवृत्ति की अनन्तता, दस लकारों पर आधारित तिङन्त के दस भेद, वाक्य, वाक्यभेद, भारत के विभिन्न देशों की प्रियवृत्तियाँ, पातञ्जल महाभाष्य के पश्पशाह्निक का समीक्षण, व्याकरण का काव्यविद्या की दृष्टि से-मूल्यांकन, व्याकरणकार पाल्यकीर्ति के मत का उल्लेख, शब्द ब्रह्मवाद का विवेचन आदि से उनकी व्याकरण विषयक पारंगतता सूचित होती है ।

वायु-पुराण इनका प्रिय पुराण है । काव्यपुरुष के जन्म की कथा प्रमुखतः वायु पुराण केकथानक पर आधारित है । कविरहस्य अधिकरण के सप्तम अध्याय

में ब्राह्मवचन उसके पाँच प्रकार-स्वायम्भुव, ऐश्वर्य, आर्ष, आर्षीक एवं आर्षीपुत्रक, इन सबका वर्णन राजशेखर ने वायुपुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर किया है। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण और अग्निपुराण में उनकी रुचि दिखाई देती है। भारतवर्ष के वर्णन में जम्बूदीप का उल्लेख, कविप्रसिद्धियाँ तथा वाल-रामायण में लिखित अनेक कथाओं का आधार आदर्श पुराण हैं। इन पुराणों के अध्ययन में राजशेखर की विशेष रुचि थी।

राजशेखर स्मृतियों के भी अध्येता थे। इन्होंने 'विद्धशालभंजिका' तथा 'काव्यमीमांसा' में मनुस्मृति का श्लोक उद्धृत किया है।

आस्तिक तथा नास्तिक, दोनों दर्शनों पर राजशेखर का अच्छा अधिकार था। इन दर्शनों का परिचय एवं उसमें राजशेखर की विद्वत्ता, कविरहस्य के अर्थव्याप्ति नामक नवम अध्याय में दिखाई देती है। सांख्य, न्याय; योग, वैशेषिक, वेदान्त, पूर्वमीमांसा आदि आस्तिक दर्शन तथा बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनों के विषय में इनका ज्ञान अत्यन्त व्यापक था। राजशेखर साम्प्रदायिक विद्याओं से भी सुपरिचित थे। शैव, पांचरात्र (वैष्णव) एवं बौद्ध सिद्धांतों का भी उन्हें ज्ञान था। इनकी रचनायें कौटिलीय अर्थशास्त्र, वात्स्यायनीय कामसूत्र एवं भारतीय नाट्यशास्त्र से प्रभावित है। निश्चित ही इन्होंने इन ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा।

राजशेखर ने 'वालरामायण' और 'वालभारत' नाटकों के कथानकों के लिये रामायण और महाभारत का अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त कालिदास की समस्त रचनायें—रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र—उन्होंने रुचिपूर्वक पढ़ी थीं। भारवि के किरातार्जुनीय, माघ के शिशुपालवध, कुमारदास के जानकी हरण, भर्तृमेण्ठ के हयग्रीववध, मयूर के सूर्यशतक, अमरुक के अमरुशतक, भट्टनारायण के वेणीसंहार, बाणभट्ट की कादम्बरी एवं चण्डीशतक, पुष्पदन्त के शिवमहिम्नस्तोत्र, वाक्यतिराज के गौड़वध, त्रिविक्रमभट्ट के दमयन्तीचम्पू, जीभूतवाहन की व्यवहारमातृका, वात्स्यायन के कामसूत्र, हालसातवाहन की गाथा—सप्तशती, रत्नाकर की सुभाषितावली, व्यासमुनि के महाभारत, वाल्मीकि ऋषि की रामायण, भवभूति के मालतीमाधव एवं महावीरचरित आदि के अनेक उदाहरण काव्यमीमांसा ग्रन्थ में बिखरे पड़े हैं।

इसी प्रकार काव्यशास्त्र के विषय में उनका पांडित्य प्रगाध था । समस्त प्राचीन आचार्यों का स्थान-स्थान पर उल्लेख उनके व्यापक काव्यशास्त्रीय अध्ययन का सूचक है । भरत, उद्‌भट, रुद्रट, सुरानन्द श्यामदेव, वाक्यतिराज, मेधा-विरुद्र, मंगल, द्रोहिणि और आनन्दवर्धन के स्पष्ट नामोल्लेख के अतिरिक्त "आचार्याः" नाम से बहुधा भामह, एवं दण्डी का संकेत भी काव्यमीमांसा में उपलब्ध है । एक वाक्य में कहा जाय तो इनके अध्ययन की परिधि में सम्पूर्ण वाङ्मय आ जाता है ।

यात्राएँ

राजशेखर ने वत्सगुल्म से कान्यकुब्ज एवं कान्यकुब्ज से त्रिपुरी तक तो भ्रमण किया ही था परन्तु उनके अन्य प्रदेशों की पर्यटन विषयक प्रामाणिक जानकारी अनुपलब्ध है । फिर भी स्वदेश के भूगोल का सूक्ष्म ज्ञान उनके ग्रन्थों में बिखरा पड़ा है । राजशेखर ने 'बालरामायण' में मिथिला, लंका, कोंकण, अयोध्या, सिंहल, कैलास प्राग्ज्योतिष, कामरूप, पाण्ड्य,द्रविण, माहिष्मती, दशार्ण, सिंहल मथुरा, अवन्ति, कुशस्थली, ऋथकैशिक, कुन्तल, कांची, लाट, औड्र, मगध,काम्बोज, सौराष्ट्र, शक, नेपाल, आन्ध्र, हैहय, विदेश, लम्पाक, वाल्व, वाल्हीक, प्रयाग, चित्रकूट तथा 'बालभारत' में मुरल, मेकल, कलिंग, रपठ, धकुरु आदि और जनपदों का सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक महत्व वर्णित किया है । 'काव्यमीमांसा' में भौगोलिक आधार पर उनका पाँच खण्डों में विभाजन भी बतलाया है । उनके इस विशाल भौगोलिक ज्ञान तथा उसके सूक्ष्म वर्णन से हम अनुमान करने के लिये बाध्य हैं कि राजशेखर ने अवश्य ही भारत के सुदूर प्रान्तों का अर्थात् हिमालय से कन्याकुमारी एवं कच्छ से ब्रह्मदेश तक का प्रवास और प्रकृति निरीक्षण किया होगा । इनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण एवं शास्त्रों के गहन अध्ययन झाँकी की उनकी विभिन्न रचनाओं में दिखाई देती है ।

रचनाएँ

आज राजशेखर के नाम से निम्न पाँच रचनायें उपलब्ध हैं–'बालरामायण' 'बालभारत', 'कर्पूरमंजरी', 'विद्धशालभंजिका' और 'काव्यमीमांसा' । इनमें 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटक 'कर्पूरमंजरी' सट्टक, 'विद्धशालभंजिका' नाटिका तथा 'काव्यमीमांसा' काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने राजशेखर की कुछ अन्य कृतियों का भी उल्लेख किया है। जैसे, चौदहवीं शती के आचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्या-

नुशासन में 'स्वनामांकता यथा राजशेखरस्य हरविलासे, द्वारा इन्हें हरविलास ग्रंथ का न केवल कर्ता बताया है अपितु अन्य दो श्लोकों द्वारा[1] यह भी प्रमाणित किया है कि यह ग्रंथ कभी अस्तित्व में था। आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व १२ वीं शताब्दी के वृत्तिकार उज्ज्वलदत्त–जिन्होंने उणादि सूत्रों पर वृत्ति लिखी है[2]–ने हरविलास ग्रन्थ का तो उल्लेख किया है परन्तु राजशेखर का नहीं। हेमचन्द्राचार्य द्वाराउद्धृत अंश से विदित होता है कि इसका प्रचलन चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक था। संभव है किसी तमसावृत प्रदेश में पड़ा यह ग्रंथ किसी अन्वेषक सुधी की प्रतीक्षा कर रहा हो।

राजशेखर की संदिग्ध पदावली के कारण उनके नाम पर दो अन्य ग्रन्थों का अस्तित्व भी विवाद का विषय बन गया है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने प्रथम षट्प्रबन्धों का अवलोकन करने का आग्रह किया है।[3] अतः ये षट्प्रबन्ध विद्वानों के लिए प्रहेलिका बन गये हैं। इसी प्रकार काव्यमीमांसा में देश विभाग के विवेचन के पश्चात् "यस्तुजिगीषत्यधिकं पश्यतु मद्भुवनकोषमसौ" कहकर भुवनकोष' नामक ग्रन्थ के स्वतंत्र या 'काव्यमीमांसा' के अध्याय विशेष होने की समस्या को हल करने के लिए छोड़ गए हैं। इन दोनों ग्रन्थों के विषय में अनेक मत उपलब्ध हैं।

डॉ० मिराशी 'षट्प्रबन्ध' को कवि की प्रथम रचना मानते हैं।[4] इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थ 'भुवनकोष' के संबंध में डॉ० वि० वि० मिराशी[5] डॉ० एस० के०[6] एवं प्रो० रैंनो[7] का कथन है कि वह स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर 'कविरहस्य अधिकरण' का अन्तिम अध्याय है।

---

१. काव्यानुशासन–हेमचन्द्र–पृ० ४३५
आशीर्यथा हरविलासे—
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मश्रुतीनां मुखपक्षरम्। प्रसीदतु सतां स्वान्तेष्वेकं त्रिपुरुषीमयम्॥
सुजनदुर्जनस्वरूपं यथा हरविलासे—
इतस्ततो भुषन् भूरि न पतेत् पिशुनः शुनः। अवदाततया किञ्च न भेदो हंसतः सतः॥
२. उणादिसूत्रवृत्ति–उज्ज्वलदत्त, २।२८
३. विद्धि नः षट् प्रबन्धान्, बालरामायण १।१२
४. पाठक कमैमोरेशन वाल्यूम पृ० ३६०
५. —वही— पृ० ३६०
६. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर–एस० के० डे०–भाग १ पृ० ४५५।
७. इन्ट्रोडक्शन टु कर्पूरमञ्जरी–एन० जी० सुरु, पेज ixxxvi

श्री एम० कृष्णमाचारियर ने[1] राजशेखर को "अष्टपत्रदलकमल" ग्रन्थ का तथा प्रो० रैनो ने[2] "रत्नमंजरी नाटिका" का कर्ता वतलाया है । इन दो ग्रन्थों का अन्यत्र उल्लेख उपलब्ध नहीं है ।

डॉ० झाम्वरे ने अपने प्रवन्ध में 'षट् प्रवन्धों' को (छै) छह स्वतन्त्र ग्रन्थ माना है वे वालरामायण, वालभारत, हरविलास, कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, 'भुवनकोष' एवं 'काव्यमीमांसा', को मिलाकर राजशेखर के १३ ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं ।

उपर्युक्त विवेचना से पता चलता है कि राजशेखर की उपलब्ध कृतियों की अपेक्षा अनुपलब्ध कृतियाँ ही अधिक हैं । किन्तु विश्वसनीय जानकारी के अभाव में हमें केवल उनका नाम निर्देश करके ही मौनधारण करना होगा ।

ग्रन्थों का रचना क्रम

उपलब्ध ग्रन्थों के रचना-क्रम के सम्वन्धी में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । नीचे कतिपय प्रमुख विद्वानों के मत प्रस्तुत हैं:—

१—श्री० वी० एस० आपटे एवं डॉ० स्टेनकोनो

१. कर्पूरमंजरी २. विद्धशालभंजिका ३. वालरामायण ४. वालभारत

२—डॉ० ए० बी० कीथ

१. कर्पूरमंजरी २. वालरामायण ३. विद्धशालभंजिका ४. वालभारत

३—श्री० सी० डी० दलाल

१. वालरामायण २. वालभारत ३. विद्धशालभंजिका ४. कर्पूरमंजरी

४—प्रो० रैनो एवं श्री० शास्त्री

१. कर्पूरमंजरी २. विद्धशालभंजिका ३. वालरामायण ४. काव्यमीमांसा

५—डॉ० मिराशी

१. वालरामायण २. वालभारत ३. कर्पूरमंजरी ४. विद्धशालभंजिका ५. काव्यमीमांसा

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—एन० कृष्णमाचारी, पेज ६२७ ६२८ ।

२. द्रष्टव्य —वही—पृ० ६२७-६२८ ।

इस रचना-क्रम से कतिपय तथ्यों की जानकारी मिलती है। पहिली बात- १८८६ में जब श्री० वी० एस० आपटे ने "राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्ज" की रचना की तथा १९०१ ई० में डॉ० स्टेनकोनो ने 'कर्पूरमंजरी' सट्टक की टीका लिखी जब तक 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया था। दूसरी बात यह है कि डॉ० मिराशी और श्री० दलाल को छोड़कर सभी विद्वान 'बालभारत' को कवि की अंतिम रचना मानते हैं। इसका कारण वे बालभारत का अपूर्णत्व बतलाते हैं। केवल इन्हीं दो विद्वानों ने 'बालरामायण' को कवि की प्रथम रचना माना है। अन्य तीन विद्वान 'कर्पूरमंजरी' को प्रथम कृति मानने के पक्ष में हैं।

राजशेखर ने 'बालरामायण' तथा 'बालभारत' में स्वयं को महामंत्री-पुत्र कहकर अपने पिता का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि इन ग्रंथों के रचना-काल तक उनके पिता जीवित थे। अन्य तीन कृतियों में पिता का नाम निर्देश नहीं है। अतः बालरामायण को प्रथम रचना मानना उचित प्रतीत होता है। 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की सुयोजित रूपरेखा देने के पश्चात् भी उसका अपूर्ण रहना कवि की मृत्यु की ओर ही संकेत करता है। अतः काव्यमीमांसा अंतिम रचना मानना न्याय्य होगा।

राजशेखर के नाट्यग्रन्थों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि 'बालरामायण' 'बालभारत' एवं 'कर्पूरमंजरी' की रचना कान्यकुब्ज में तथा 'विद्धशालभंजिका' की रचना त्रिपुरी में हुई थी। 'काव्यमीमांसा' के विषय में दो मत हैं---डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार यह ग्रन्थ कन्नौज में रचा गया था।[1] डॉ० मिराशी का कथन है कि उसकी रचना त्रिपुरी में हुई थी।

संस्करण

इन रचनाओं के निम्नलिखित संस्करण उपलब्ध हैं---

बालरामायण : (१) पण्डित ओल्ड सीरीज ३ के अन्तर्गत श्री० गोविन्ददेव शास्त्री द्वारा बनारस से सन् १९६९ में प्रकाशित।
(२) श्री० जे० विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १८८४ में प्रकाशित।
(३) श्री० लक्ष्मण सूरि द्वारा कलकत्ता से सन् १७६९ में प्रकाशित।

कर्पूरमंजरी : (१) 'पंडित ओल्ड सीरीज ७' के अन्तर्गत श्री० वामनाचार्य द्वारा सन् १८७२-७३ में बनारस से प्रकाशित।

१. साहित्य सुषमा भाग ८ अंक ४

(२) 'काव्यमाला सीरीज नं० ४' के अन्तर्गत वासुदेव व्याख्या समेत श्री दुर्गाप्रसाद तथा श्री पाण्डुरंग परव द्वारा सन् १८८७ में वम्बई से प्रकाशित।

(३) जे० विद्यासागर द्वारा व्याख्या सहित कलकत्ता से १८७९ में प्रकाशित।

(४) आंग्ल भाषा में 'ए लकी वाइफ' शीर्षक के अन्तर्गत श्री वी० एस० इस्लामपुरकर द्वारा वम्बई से १८९० में प्रकाशित।

(५) श्री स्टेनकोनों तथा श्री सी० आर० लॉनमैन द्वारा 'हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज ४' के अन्तर्गत केम्ब्रिज से १९०१ में प्रकाशित।

(६) श्री० मोतीलाल वनारसीदास द्वारा इसी संस्करण का बनारस से पुनः १९६५ में प्रकाशन।

(७) श्री एन० जी० सुरु द्वारा अंग्रेजी और मराठी अनुवाद सहित १९६० में पूना से प्रकाशित।

(८) चौखम्वा संस्कृत सीरीज से आचार्य रामचन्द्र द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन।

इन संस्करणों के अतिरिक्त हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि स्वर्गीय श्री० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कर्पूरमंजरी' का हिन्दी में अविकल अनुवाद किया है।

विद्धशालभंजिका

(१) श्री० वामनाचार्य द्वारा 'पंडित ओल्ड सीरीज' के अन्तर्गत १८७२-७३ ई० में बनारस से प्रकाशित।

(२) श्री जे० विद्यासागर द्वारा सत्यव्रत व्याख्या समेत कलकत्ता से सन् १८७३ में प्रकाशित।

(३) इनके द्वारा सन् १८८३ में पुनः प्रकाशित।

(४) श्री वी० आर० आरते द्वारा (नारायण दीक्षित की व्याख्या समेत) पूना से सन् १८८६ में प्रकाशित।

(५) आंग्ल भाषा में प्रथमतः अनुदित, जे० ए० ओ० एस० में लुई एच० ग्रे (Louis H. Gray) द्वारा सन् १९०६ में प्रकाशित।

काव्यमीमांसा

(१) 'गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज १' के अन्तर्गत श्री सी० डी० दलाल एवं श्री० आर० ए० शास्त्री द्वारा बड़ौदा से सन् १९१६ में प्रकाशित।

(२) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से सन् १९५४ ई० में श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत द्वारा प्रकाशित ।

(३) 'हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला १४' के अन्तर्गत वाराणसी से सन् १९५८ में मधुसूदन मिश्र द्वारा प्रकाशित ।

(४) डॉ० गंगासागर राय द्वारा संपादित ।

(५) डॉ० गंगानाथ झा ने कवि शिक्षा प्रणाली विषय पर व्याख्यान दिए थे। उन व्याख्यानों का संकलन 'कविरहस्य' रूप में हिन्दुस्तानी अकादमी ने सन् १८२८-१८२९ में प्रकाशित किया था। यह 'कविरहस्य' पुस्तक काव्यमीमांसा के कविरहस्य का ही अनुवाद है।

बालभारत

'बालभारत' का स्वतन्त्र संस्करण उपलब्ध नहीं है। 'काव्यमाला सीरीज ४' के अन्तर्गत कर्पूरमंजरी के संस्करण से संलग्न इस ग्रंथ का एकमेव संस्करण उपलब्ध है।

राजशेखर की रचनाओं के इतने अधिक संस्करण उनकी लोकप्रियता के प्रतीक हैं।

सम्मान-प्रतिष्ठा

राजशेखर के समकालीन कवि मित्र कृष्णशंकर वर्मा की राजशेखर के विषय में यह प्रशस्ति प्रसिद्ध है—

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचःसतांसम्मता
व्युत्पत्ति परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः।
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद् भ्रातः श्रुणु राजशेखरकवेः सुक्तोःसुधास्यन्दिनीः ॥

अर्थात् यदि कानों को रसायनपान कराना चाहते हो, सज्जन-सम्मत वचनों की रचना करने के इच्छुक हो, विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने की लालसा रखते हो, रस-स्रोत की पराकाष्ठा चाहते हो, जीवन-रूपी वृक्ष के मधुर फल का आस्वादन करना चाहते हो तो हे भाई, राजशेखर की अमृतवर्षिणी सूक्तियों को सुनो।'

वार-बार उनकी काव्यमाधुरी का पान करने पर भी को रसिकों तृप्ति नहीं होती थी। उनके दूसरे मित्र अ्रापराजित ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

वालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः।
इत्यस्य परम्परया अ्रात्मा माहात्म्यमारुढः।
सोऽस्य कविः श्रीराजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति
हरिणांक प्रति पङ्वित सिद्धया निष्कंलका गुणा यस्य ।।

अ्रर्थात् वालकवि, कविशिरोमणि, निर्भयराज के उपाध्याय अ्रादि का गौरव इन्होंने पाया है। इनके निष्कलंक गुणों से त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। मृगांक-कथाकार अ्रापराजित के इन वचनों से प्रमाणित होता है कि राजशेखर अ्रपने युग के मूर्धन्य कवि थे। जिनकी कीर्ति उनके समक्ष ही दिग्दिगन्त में फैल गई थी। अ्रपने जीवन-काल में इतनी अ्रधिक कीर्ति शायद ही किसी कवि को मिली हो। उनकी मृत्यु के पश्चात् साहित्यकारों ने उन्हें स्तुतिकुसुमाञ्जलि अ्रर्पित की है, वह पठनीय है। सोड्ढल का कथन है—

यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितः सूरिसमाज वर्यः।
नृत्यत्युदारं भणिते रसस्था नटीव यस्योढ़रसा पदश्रीः ।।

(अ्रर्थात् रसमयी नटी के नृत्य के समान जिसकी कविता में पदों की शोभा नृत्य करती हुई दिखाई देती है, ऐसे राजशेखर गुणज्ञ सुधीजनों द्वारा प्रशंसित हैं) तिलक-मंजरीकार धनपाल का कथन है कि मुनियों की वृत्ति धारण करने वाले यायावर कवि की कविता समाधिगुणशालिनी तथा प्रसादगुण से परिपक्व होती है—

समाधि-गुण-शालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
यायावर-कवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः ।

राजशेखर ने साहित्यकारों में एवं विद्वत्समाज में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उससे कहीं अ्रधिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान उन्हें राजदरवार में प्राप्त था। राज-शेखर नवीं शती के अ्रद्भुत पराक्रमी एवं प्रख्यात सम्राट गुर्जर प्रतिहार महेन्द्रपाल के राजगुरु थे। यह कितना भव्य सम्मान था। इस प्रकार इस उभयमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार ने द्विविध-साहित्यिक तथा राजकीय-गौरव प्राप्त किया था।

मृत्यु

क्षेमेन्द्र ने राजशेखर के विषय में कहा है कि—

कर्णाटी-दशांक्तिः सितमहाराष्ट्री-कटाक्षाहतः
प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनी भ्रूभंग वित्रासितः ।
लाटीवाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः
सोऽयं सम्प्रति राजशेखर-कविर्वाराणसीं वाञ्छति ।।

(अर्थात् पहले जो कर्नाटक देश की वनिताओं के दन्तक्षतों से चिह्नित हुआ, फिर महाराष्ट्र की गोरी ललनाओं के कटाक्षनिक्षेप का शिकार हुआ, बाद में आन्ध्र की प्रौढ़ सुन्दरियों के स्तनों के भार से दब-सा गया, फिर प्रेयसी की कुटिल भृकुटि से भयभीत हुआ, वाद में लाट देश की कामिनियों के बाहुपाश में आबद्ध हुआ, और मलय-नितम्बिनी की तर्जनी से तर्जित भी हुआ, वही कविशिरोमणि राजशेखर आज वाराणसी जाने की स्पृहा कर रहा है'।

क्षेमेन्द्र के इस कथन में सत्यता या प्रामाणिकता का अभाव होने के कारण यह विश्वसनीय नहीं है। राजशेखर ने वत्सगुल्म को अपने जन्म से पुनीत किया था, किन्तु वह क्षेत्र जन्मस्थली तक ही महत्वपूर्ण रहा। उनकी कर्म भूमि कान्यकुब्ज थी। त्रिपुरी पर भी उनका प्रभाव था। महेन्द्रपाल नरेश के आश्रय में इस तरुण कवि ने पहले वालरामायण की रचना की और तत्पश्चात् कर्पूरमंजरी की। जव वे महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी पुत्र महीपाल की छत्रच्छाया में वालभारत को पूर्ण कर रहे थे, उसी समय उन पर दुर्दिन के वादल मण्डराने लगे। पिता की मृत्यु एवं आश्रयदाता के जंगल-जंगल में भटकने से कवि पर दोहरी विपत्ति आ पड़ी और वे इसी दशा में कन्नौज से त्रिपुरी पहुँचे। वहाँ 'विद्धशालभंजिका' की रचना की। पुनः महीपाल के स्थिर हो जाने पर कन्नौज लौटे। तव तक वे वृद्धावस्था में पदार्पण कर चुके थे और अपने प्रौढ़ पांडित्य एवं जीवन की सम्पूर्ण-साहित्यिक निधि को काव्यमीमांसा में एकत्र करना चाहते थे किन्तु जराजर्जरित देह उनकी साधना में वाधक हुई। वे काव्यमीमांसा ग्रन्थ को प्रारंभ ही कर पाये कि उनकी मृत्यु हो गई। इस समय वे नब्बे वर्ष के थे। भारत तथा भारती दोनों ही इस महापुरुष के निधन से होने वाली क्षति को आज तक पूर्ण नहीं कर पाये।

सामयिक परिस्थितियाँ

समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार की रचनाओं में यत्र- तत्र दृष्टिगत होता है। साहित्य युग का निर्माण करता है, और युग साहित्य का। साहित्यिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थितियों से उद्‌भूत प्रेरणा साहित्यकार को

प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में, सामयिक साहित्य, देश, धर्म, समाज और जीवन ही साहित्य-निर्माता की पृष्ठभूमि होते हैं।

राजशेखर नवम शताब्दी के साहित्यकारों की कोटि में अग्रणी कहे जा सकते हैं। वे साहित्य-नायक थे। जनरुचि के अनुकूल साहित्यिक पृष्ठभूमि तैयार करना ही उनका परम लक्ष्य था। अतः साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ने का इन्होंने प्रशंसनीय प्रयास किया। शताब्दियों से चली आने वाली साहित्यशास्त्रीय परम्परा को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने में उनकी वैखरी प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई। अतः राजशेखर कालीन स्थितियों का अवलोकन, उनकी रचनाओं के अनुशीलन के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

नाटककार राजशेखर के पूर्व विद्यमान नाट्य-परम्परा का प्रभाव उनकी नाट्य-कृतियों में स्पष्ट झलकता है। अतः इस पूर्ववर्ती नाट्यपरम्परा का विहंगावलोकन यहाँ आवश्यक होगा।

नाट्य-परम्परा

संस्कृत साहित्य में नाटकों की सजीव एवं मूर्त परम्परा का प्रवर्तन भास के साथ होता है। भासकृत नाटकों की संख्या तेरह है। ये नाटक हैं—दूतवाक्य, कर्णभार, दूत-घटोत्कच, उरुभंग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, अभिषेक, बालचरित, अविमारक, प्रतिमा, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता और चारुदत्त। इन रचनाओं का आधार महाभारत, रामायण, उद्दयन कथा एवं काल्पनिक है। दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरुभंग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र और बालचरित महाभारताश्रित है। प्रतिभा और अभिषेक का उपजीव्य रामायण है, और अविमारक एवं चारुदत्त के कथानक काल्पनिक है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत उद्दयन की जीवन-घटना से सम्बन्धित हैं।

नाटकों की निर्माण-परम्परा में भास के बाद कालिदास का क्रम आता है। नाटकों के क्षेत्र में इस महाकवि ने (१) मालाविकाग्निमित्र (२) विक्रमोर्वशीय एवं (३) अभिज्ञान शाकुन्तल—इन तीन कृतियों का प्रणयन किया है। मालविकाग्निमित्र की गणना नाटिका-भेद में की जाती है, विक्रमोर्वशीय की त्रोटक एवं अभिज्ञान शाकुन्तल की नाटक में।

कालिदास के बाद अश्वघोष का नाम उल्लेखयनीय है। अश्यघोष के नाटक का नाम 'शारिपुत्र प्रकरण' है। अश्वघोष के पश्चात् शूद्रक उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मृच्छकटिक की रचना की थी। राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से यह

नाटक महत्वपूर्ण है। शूद्रक के वाद हर्षवर्धन आते हैं। प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द ये तीन कृतियाँ हर्षवर्धन के नाम से प्रचलित हैं। हर्ष ने नाटक के क्षेत्र में एक सर्वथा नये प्रयोग की—नाटिका लेखन की—प्रथा प्रारम्भ की। रत्नावली एवं प्रियदर्शिका वस्तु-विन्यास, कलासंवर्धन और रस परिपाक की दृष्टि से अनन्य हैं। संस्कृत साहित्य में कालिदास की भाँति भवभूति भी जनप्रिय साहित्यकार हुए। नाटककार के रूप में इनका परिचय महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित इन तीन कृतियों द्वारा मिलता है। रामकथा पर आधारित नाटकों में उत्तर-रामचरित सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भवभूति के आश्रयदाता नृपति यशोवर्मा भी साहित्य-सर्जक थे। उन्होंने रामाभ्युदय नामक नाटक (रामकथा पर आश्रित) की रचना की। विशाखदत्त अपनी रचना मुद्राराक्षस के कारण प्रथम श्रेणी के नाटककारों में परिगणित किये जाते हैं। इनके पश्चात् नारायणभट्ट ने वेणीसंहार नामक नाटक की रचना की थी। शास्त्रीय परम्परा पर आधारित यह नाटक हर्ष की रत्नावली से अत्यधिक प्रभावित है। नारायण-भट्ट के पश्चात् मुरारि ने नाट्यपरम्परा को आगे वढ़ाया। उन्होंने राम-कथाश्रित अनर्घराघव की रचना की। मुरारि के पश्चात् अनंगहर्ष मातृराज, मायुराज एवं शक्तिभद्र उल्लेखनीय हैं। अनंगहर्ष की कृति 'तापस वत्सराज' है। मायुराज ने रामायण की कथा के आधार पर उदात्तराघव नाटक की रचना की। शक्तिभद्र अपनी कृति आश्चर्य चूडामणि (रामकथा पर आधारित) के कारण स्मरणीय है। भास से शक्तिभद्र पर्यन्त चली आती हुई नाट्यपरम्परा में राजशेखर के आगमन के साथ एक और कड़ी जुड़ गई।

राजशेखर के पूर्व नाट्यसाहित्य का जो रूप मिलता है उसका अध्ययन हमें कतिपय तथ्यों से अवगत कराता है। भास से शक्तिभद्र तक नाटककारों ने अपनी कृतियों के लिए प्रायः रामायण एवं महाभारत इन दो महनीय ग्रन्थों का आश्रय लिया है। उन्होंने रामकथा के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को अपनी रचनाओं का आधार बनाया था। रामकथा पर आश्रित नाटकों से यह स्पष्ट हो जाता है। भवभूति का ही अवलोकन कीजिए। उनका महावीरचरित राम के पूर्व जीवन से (आरम्भ से राज्याभिषेक तक) संबन्धित है। उत्तररामचरित में रामकथा के उत्तरांश की अभिव्यक्ति हुई है। भवभूति के पूर्ववर्ती एवं पश्चाद्वर्ती नाटककारों ने इसी परम्परा का निर्वाह किया है। महाभारताश्रित नाट्यकृतियाँ अपेक्षाकृत कम हैं। काल्पनिक कथानकों के माध्यम से जनरञ्जन की प्रवृत्ति—नाटिकाओं में अभिव्यंजित होती है।

राजशेखर को उत्तराधिकार के रूप में भास से मुरारि तक की नाट्य परम्परा उपलब्ध थी। इन सम्पूर्ण कृतियों को हम कथानक की दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते हैं:—(१) रामायण पर आश्रित–प्रतिमा, अभिषेक, उत्तररामचरित, महावीरचरित एवं अनर्घराघव (२) महाभारत पर आश्रित—दूतवाक्य, कर्ण-भार, दूतघटोत्कच, उरुभंग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, बालचरित एवं वेणीसंहार, (३) कल्पित या उत्पाद्य—मालविकाग्निमित्र, अविमारक, चारुदत्त, रत्नावली, प्रियदर्शिका, मालतीमाधव आदि। कल्पित कथावस्तु का मुख्य उद्देश्य रामायण और महाभारताश्रित नाटकों से भिन्न था। स्वाभाविक है कि उत्पाद्य कथावस्तु पर आश्रित नाट्यकृतियाँ जनमत के अधिक समीप रही होंगी। घिसीपिटी कथा-वस्तु में लाख प्रयत्न करने पर भी नये प्राण उडेलना कठिनथा। जनसामान्य के लिए इन कथाओं में तब तक कोई विशेष रुचि नहीं हो सकती थी, जब तक कि उनमें कोई विशेष कलाप्रयोग न किया गया हो। भवभूति को इसी कारण, नवीन रस मार्ग का वरण करना पड़ा। दूसरी ओर कल्पित कथायें छोटे-छोटे राजपरिवारों के अन्तरंग स्नेह संबंधों का उद्घाटन करती, और प्रकारान्तर से लोगों की अपरि-तृप्त शृंगार भावना की पुष्टि में सहायक होती थी। इनमें दर्शक की उत्सुकता बनी रहती थी, क्योंकि वे उनके कथानक से पूर्वपरिचित न होते थे। अपने दर्शकों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए, उत्पाद्य वस्तु के नाटककारों ने अपनी कृतियों में प्राकृत को अधिक महत्व दिया था।

राजशेखर ने समर्थ कलाकार की भाँति अपने पूर्व से चली आती हुई चारों शैलियों का वरण किया और अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से उनमें नवीन प्राणों का संचरण किया। उन्होंने रामायणीय कथानक पर नवीन प्रयोग करते हुए, बाल-रामायण लिखा, और महाभारत के आधार पर बालभारत की रचना की। शिष्ट, अधीत, मध्यवर्ग के लिए विद्धशालभंजिका का निर्माण किया, तो सामान्य समाज को कर्पूरमंजरी के लावण्य कौशल से चमत्कृत करने का प्रयास किया। राजशेखर का वैशिष्ट्य उनकी समग्र ग्रहणशीलता में है। इन कृतियों के सम्बन्ध में उनके नवीन कला-प्रयोगों की चर्चा हम विशेष प्रसंग पर करेंगे।

शास्त्र-परम्परा

जिस प्रकार राजशेखर को उत्तराधिकार में भास से मुरारि तक की नाट्य-परम्परा प्राप्त थी उसी प्रकार उन्हें आचार्य भामह से आचार्य आनन्दवर्धन तक काव्यशास्त्र की विकसित प्रणाली पृष्ठभूमि के रूप में उपलब्ध थी। उन्होंने

काव्यमीमांसा ग्रन्थ में प्रायः सभी पूर्ववर्ती आचार्यों—(भरत, वामन, उद्भट, लोल्लट, आनन्दवर्धन) के मतों का उल्लेख किया है। साथ ही उन पूर्वगामी आचार्यों की नामावली भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है, जिनसे पूर्ववर्ती आचार्य नितान्त अपरिचित थे। इन पूर्वगामी आचार्यों में अमर[1] उक्ति गम[2], उतथ्य[3], उपमन्यु[4], अवर्ष[5], प्रचेतायन[6], मंगल[7], रूप[8], श्यामदेव[9] सुरानन्द[10], और सूर[11] केवल नाम शेष हैं। इनकी कृतियों अथवा इनका स्वयं का परिचय राजशेखर के शब्दों में ही मिलता है।

काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य मेधाविरुद्र का उल्लेख आलंकारिक के रूप में मिलता है। स्वयं भामह[12] ने अपने काव्यलंकार में मेधाविरुद्र को दो स्थलों पर उद्धृत किया है। रुद्रट के काव्यालंकार की टीका लिखने वाले नमि-साधु ने[13] इनके अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्देश किया है। अतः इनका अस्तित्व निर्विवाद है। राजशेखर इनकी मौलिक प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस प्रतिभा के कारण ही जन्म से अन्धे होने पर भी मेधाविरुद्र, कुमारदास आदि को समस्त विषय प्रत्यक्षवत् भासित होते थे।

"प्रतिभावतः पुनरपश्यतोऽपिप्रत्यक्ष इव। यतो मेधाविरुद्र कुमारदासादयो जात्यन्धाः कवयः श्रूयन्ते।[14] आचार्य दण्डी ने इनका उल्लेख मेधावी नाम से किया[5] है।

कालक्रमानुसार मेधावी के पश्चात् आचार्य भामह का स्थान है। काव्यशास्त्र के ये आद्य आलंकारिक हैं। इनकी अलंकारशास्त्र से संबंधित एकमात्र कृति काव्यालंकार है। इन्होंने इस ग्रन्थ में काव्य-शरीर (काव्य के प्रयोजन, लक्षण आदि) अलंकार, दोष, न्यायनिर्णय, शब्दशुद्धि आदि का विवेचन किया है। राजशेखर ने इनके सिद्धांतों का उल्लेख 'आचार्यः' नाम से किया है।

---

१. काव्यमीमांसा अध्याय १० पृ० ५५५, (२), (३), (४) वही अ. १ पृ० १, (५) वही अध्याय १० पृ० ५५, (६) वही अध्याय १ पृ० १ (७) वही अध्याय ४ पृ० ११, १४ अध्याय ५ पृष्ठ १६, २०, (८) वही अध्याय १० पृ० ५५, (९) वही अध्याय ४ पृ० ११, १३, अध्याय ५ पृ० १७ (१०) वही अध्याय १३ पृ० ७८, (११) वही अ. १३ पृ० ७८
१२. काव्यालंकार—भामहः २—४०, २-८८
१३. काव्यालंकार—रुद्रटः १:२
१४. काव्यमीमांसाः अध्याय ४ पृ० ११-१२

भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी का नाम आता है। इन्होंने काव्य तथा शास्त्र दोनों ही क्षेत्रों की श्री-वृद्धि की। अलंकार-शास्त्र को उनकी अमूल्य देन है—काव्यादर्श। तीन परिच्छेदों में विभक्त इस ग्रन्थ में काव्यलक्षण, काव्यभेद, गद्य के दो भेद, आख्यायिका, कथा, रीति, गुण तथा कवि के आवश्यक गुण, अलंकार, अलंकारों की परिभाषायें, उनके उदाहरण, यमक, चित्रबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र और वर्ण-नियम आदि सोलह प्रकार की प्रहेलिकाओं और दस प्रकार के काव्य-दोषों का विशद विवेचन किया है। काल की दृष्टि से दण्डी के उपरान्त उद्भट और वामन का स्थान है। ये दोनों प्रायः समकालीन थे तथा काश्मीर-नरेश जयापीड के सभापण्डित थे। राजशेखर ने उद्भट और वामन के विचार औद्भटाः[1] एवं वामनीयाः[2] नाम से व्यक्त किए हैं। आचार्य उद्भट के ग्रन्थ का नाम 'अलंकारसारसंग्रह' है। नामानुसार इस ग्रन्थ का प्रमुख विवेच्य विषय अलंकार है। रीति को काव्य की आत्मा वर्णित करने के अतिरिक्त इन्होंने काव्य के प्रयोजन, काव्य के अधिकारी, रीति के प्रकार, काव्य के प्रकार, पद-वाक्य, वाक्यार्थों के दोष, अलंकार, गुण, गुणों के दस भेद, काव्यसमय, संदिग्ध शब्दविवेचन तथा शब्दशुद्धि का विवेचन किया है।

आचार्य रुद्रट काव्यालंकार के कारण अलंकार-क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रन्थ में काव्य प्रयोजन, भाषा, रीति, रस तथा वृत्ति का वर्णन होने पर भी प्रमुखता अलंकारों के विवेचन को दी गयी है। इन्होंने अलंकारों का प्रथमतः वैज्ञानिक विभाजन किया है। राजशेखर ने वक्रोक्ति की शब्दालंकारता के विवेचन के अवसर पर इनका उल्लेख किया है।

रुद्रट के पश्चात् आनन्दवर्धन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ये ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इनकी एकमात्र कृति 'ध्वन्यालोक' ध्वनि विरोधी मतों, ध्वनि के भेद-प्रभेदों एवं उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालती है। राजशेखर ने कहीं इनका निर्देश 'कश्चित्' शब्द द्वारा और कहीं 'आनन्द'[3] नाम से किया है।

आनन्दवर्धन के पश्चात् काव्यक्षेत्र में राजशेखर का पदार्पण हुआ। हम देखते हैं कि काव्य के शास्त्रीय क्षेत्र में भी नाट्यक्षेत्र के समान राजशेखर के सम्मुख प्रचुर

---

१. काव्यमीमांसा : अध्याय ६ पृ० २२, अध्याय ६ पृ० ४४
२. वही—अध्याय ४ पृ०, १४,
३. वही—अध्याय ५ पृ० २०

सामग्री विद्यमान थी। उन्होंने उपस्थित सामग्री का यथावत् अध्ययन कर अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से उसे और विकसित एवं समृद्ध किया। न केवल विचारों और सिद्धांतों की दृष्टि से, अपितु निरूपण–शैली की दृष्टि से भी उन्होंने साहित्य-समीक्षा को एक नई दिशा प्रदान की और मौलिक सर्जन के साथ-साथ आचार्य के रूप में भी प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हुए। उनकी काव्यमीमांसा के विवेचन के समय इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला जायगा। यहाँ उनके नाट्य-ग्रन्थों एवं काव्यशास्त्र की पृष्ठभूमि का एक चित्र देना आवश्यक है, जिससे उनकी कृतियों की समीक्षा करते समय उनके सम्मुख प्रस्तुत साहित्य सामग्री के परिप्रेक्ष्य में हम उनके उचित मूल्यांकन में समर्थ हो सकें।

संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा और उसके आश्रयदाता

संस्कृत नाट्य-परम्परा एवं काव्य-परम्परा का अनुशीलन-तत्कालीन संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध होता है। राजशेखर से पूर्व-भास से मुरारि पर्यन्त एवं भामह से आनन्दवर्धन तक (नाट्य एवं काव्य) वाङ्मय को गतिशीलता प्रदान करने वाले दो प्रमुख वर्ग थे—कवि और आचार्य; साहित्य-कार एवं साहित्य सेवी। यहां साहित्य सेवी से तात्पर्य समाज के साहित्यानुरागी राजगणों से है। भारत में कवियों एवं विद्वानों को सब प्रकार की सहायता एवं सम्मान प्रदान करने की परम्परा राजपरिवारों के इतिहास में प्रारम्भ से ही पायी जाती है। चालुक्य वंश के विष्णुवर्धन, श्रीधरसेन एवं मातृगुप्त ने क्रमशः भारवि, भट्टि एवं भर्तृमेण्ठ जैसे महाकवियों को प्रश्रय दिया था। स्थाण्वीश्वर के वर्धन कुल की छत्रच्छाया में बाणभट्ट, मयूर, मातंग दिवाकर जैसे प्रथितयशस्क साहित्य-कार पल्लवित हुए। कन्नौज का वर्धन वंश भवभूति एवं वाक्पतिराज के संरक्षण का श्रेयोभागी रहा। काश्मीर के उत्पल राजघराने के आश्रय ने शिवस्वामी, रत्नाकर, मुक्ताकण और आनन्दवर्धन जैसे कलाकारों की प्रतिभा को मुखरित किया। इसी देश के जयापीड नृपति ने वामन, उद्भट जैसे आचार्यों को अपना संरक्षण प्रदान किया। राजकुलों के संरक्षण में प्रतिभाशाली व्यक्ति पनपते रहे। राजशेखर ने इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है:—

"राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिम्।"

ये साहित्यकार अपनी कृतियों के साथ-साथ अपने आश्रयदाता नरेशों को भी अमर कर गए। इसकी पुष्टि 'राज्ञश्च नास्ति कविना सदृशः सहायः' इस वाक्य से हो जाती है। राजा एवं साहित्यकार दोनों ने मिलकर संस्कृत को जो प्रतिष्ठा प्रदान की, उसकी प्रतीति तत्कालीन ग्रन्थवैभव से हो जाती है। राजशेखर के युग में

संस्कृत भाण्डागार समृद्ध था। वह भारतीय इतिहास के चतुर्मुखी विकास एवं उसकी सर्वांगीण प्रगति के लिए अपना विशिष्ट स्थान रखता था।

कनकसेन वादिराज कृत यशोधर चरित, अभिनन्द रचित कादम्बरी कथा-सार, वसुदेव निर्मित युधिष्ठिर विजय, सौरी–कथोदय एवं त्रिपुरदहन, धनंजय कृत द्विसन्धानकाव्य एवं पद्मगुप्त परिमल रचित नवस हसांक चरित, आनन्दवर्धन रचित देवीशतक, दामोदरगुप्त कृत कुट्टिनीमत, रविदेव कृत कीचकवध, बुधस्वामी-संकलित 'कवीन्द्रवचन समुच्चय', त्रिविक्रम भट्ट का नलचम्पू, मैत्रेयरक्षित प्रणीत तंत्रप्रदीप, एवं शाकटायन का शब्दानुशासन, अभिधानरत्नमाला—ये सारी साहित्य सम्पदा इसी ओर इंगित करती है कि उस युग में भाषा एवं साहित्य को अत्यधिक राजकीय एवं सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। प्रश्न यह है कि साहित्य के इतनी अधिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न होने पर भी उचित वातावरण की खोज में यह कवि वत्सगुल्म से कान्यकुब्ज तक की लम्बी दूरी नापने के लिए क्यों बाध्य हुआ? इस प्रश्न का उत्तर तत्कालीन साहित्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। फिर भी यह स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक संक्रान्ति ने ही हमारे काव्यनायक को दक्षिण से उत्तर की दूरी नापने को विवश किया होगा। राजशेखरकालीन भारत का राजनीतिक मानचित्र संभवतः इस प्रश्न का उत्तर दे सकेगा।

सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत में विघटन की लहर चल पड़ी। प्रायः सर्वत्र अराजकता फैल गई। कन्नौज के अधीनस्थ राजगण स्वतंत्र हो गए और विद्रोह के लिए अपना सिर उठाने लगे। प्रबल एवं दृढ़ शासक के अभाव में हर्ष की गौरवशालिनी राजधानी कान्यकुब्ज का इतिहास भी अंधकारमय रहा। सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में मौखरिवंश के साहसी शासक यशोवर्मन ने इस राज-धानी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ से इनके घनिष्ठ संबंध थे। इन दोनों ने मिलकर तिब्बत, अरब, और चीन के आक्रमणों से भारत के सीमाद्वारों को सुरक्षित किया। कुछ समय पश्चात् इन नरेशों में भी वैमनस्य उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप काश्मीर नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ ने यशोवर्मन से युद्ध कर कन्नौज शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। ललितादित्य के पश्चात् ७७० ई० से ८१६ ई० तक आयुधवंश के तीन शासक-वज्रायुध इन्द्रायुध और चक्रायुध-कान्यकुब्ज के सिंहासन पर आरूढ़ रहे। ललितादित्य के पुत्र जयापीड़ ने कन्नौज से वज्रायुध को हटाकर इन्द्रायुध को राज्य-सत्ता पर प्रतिष्ठित किया। पश्चात् पालवंशीय धर्मपाल (७७० ई० से ८१० ई०) ने इन्द्रायुध को परास्त कर चक्रायुध को कान्यकुब्ज का शासक घोषित किया।

चक्रायुध के समय तीन तुल्यबल सम्राटवंशों की लोलुप दृष्टि कन्नौज नगरी पर जा टिकी। ये अदम्य साहसी शासक थे——बंगाल के पाल, राजपूताना के गुर्जर-प्रतिहार, एवं मालखेड़ के राष्ट्रकूट। अतः दुर्बल शासकों से छुटकारा पाते न पाते कन्नौज को इन तीन दिग्गजों की गृध्रदृष्टि का पात्र बनना पड़ा। आठवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में तथा नवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में इस नगरी में युद्ध की रणभेरी रह रहकर बजती रही। अन्तराल देकर पाल प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट एक दूसरे से तलवारों के सहारे मिलते रहे। पिता के हाथ से तलवार छूटती नहीं कि पुत्र उसे थाम कर रणभूमि में उतर पड़ता।

श्री० एच० रायचौंधरी, कालिंकिकर दत्त एवं आर० सी० मजूमदार ने तत्कालीन उत्तर भारत के राजनीतिक केन्द्र कन्नौजं का वर्णन इस प्रकार किया हैः—

"पश्चिम एशिया की सैनिक जातियों के लिए जिस प्रकार बैबिलोन था, ट्यूटौनिक बर्बरों के लिए जिस प्रकार रोम था, पूर्वी और दक्षिणी यूरोप के लिए मध्ययुग में जिस प्रकार बाइजेंण्टियन था उसी प्रकार आठवीं और नवीं शताब्दियों के नवोदित राजवंशों के लिए 'महोदय' अर्थात् कन्नौज था।[1]

भारत के इस त्रिकोण संघर्ष में भाग लेने वाले नवोदित राजवंशों, पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट—का परिचय निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा।

पाल	प्रतिहार	राष्ट्रकूट
धर्मपाल (७७० ई. से ८१० ई.)	वत्सराज (७८० ई. से ८०५ ई.)	ध्रुव (७७९ ई. से ७९३ ई.)
देवपाल (८१० से ८५० ई.)	नागभट्ट द्वितीय (८०५ ई. से ८३३ ई.)	गोविन्द तृतीय (७९४ ई. से ८१३ ई.)
विग्रहपाल (८५० ई. से ८५४ ई.)	रामभद्र (८३३ ई. से ८३६ ई.)	अमोघवर्ष (८१४ ई. से ८७७ ई.)
नारायणपाल (८५४ ई. से ९०८ ई.)	मिहिरभोज (८३६ ई से ८८५ ई.)	कृष्ण द्वितीय (८७८ ई. से ९१४ ई.)
राज्यपाल द्वितीय (९०८ ई. से ९२५ ई.)	महेन्द्रपाल (८८५ ई. से ९१० हे.)	इन्द्र तृतीय (९१४ ई. से ९२२ ई.)
गोपाल द्वितीय (९२५ ई. से ९५० ई.)	भोज द्वितीय (९१० ई. से ९१३ ई.)	अमोघवर्ष द्वितीय (९२२ ई. से ९२३ ई.)
विग्रहपाल (९५० ई. से ९७६ ई.)	महीपाल (९१४ ई. से ९४५ ई.)	गोविन्द चतुर्थ (९२३ ई. से ९३६ ई.)

१. प्राचीन भारतः (भारत का वृहद् इतिहास) भाग-१
हेमचन्द्र राय चौधरी, कलिंकिकर दत्त, आर० सी० मजूमदार—पृ० १७४

आयुधवंशीय इन्द्रायुध को कन्नौज के आसन से हटाना और चक्रायुध को उस स्थान पर प्रतिष्ठित करना धर्मपाल के लिये चिर अभिशाप वन गया। ८१५ ई. में गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट्ट एवं राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की सेनाओं द्वारा उसे करारी हार ही न मिली, प्रत्युत लोहा लेते लेते धराशायी होना पड़ा। नाग भट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर गुर्जर प्रतिहारों के प्रभुत्व की स्थापना की। प्रतिस्पर्धी राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय से परास्त होने पर भी उसने कन्नौज को अपने हाथों से जाने नहीं दिया। नागभट्ट के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी रामभद्र अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, अतः धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल ने उसे सहज ही उखाड़ दिया। देवपाल उत्तरी भारत के वड़े भाग का निष्कण्टक स्वामी वन गया। देवपाल की मृत्यु के वाद उसके उत्तराधिकारी विग्रहपाल की शान्तिवादी नीति से प्रतिहार नरेश भोज (रामभद्र का उत्तराधिकारी) को स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। उसने देवपाल की गद्दी पर बैठे हुए विग्रहपाल को बुरी तरह पराजित किया। उसने दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय को नर्मदा तट पर विजित कर मालव भूमि पर भी अपना कब्जा कर लिया। इस प्रकार दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों पर विजय पा जाने के पश्चात् भोज को पंजाव, अवध और अन्य प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कोई कठिनाई न हुई। भोज ने कश्मीर, सिन्ध, विहार, बंगाल के पाल राज्य और जवलपुर प्रदेश के कलचुरि राज्य को छोड़कर सारे उत्तरी भारत को प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। यह महान् सम्राट् इस विस्तृत क्षेत्र पर कन्नौज से निष्कण्टक राज्य करता रहा। ८८५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने वेटे और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल के लिये एक सुसंगठित साम्राज्य छोड़ गया। इसी काल में राजशेखर कन्नौज आये।

राजशेखर कालीन राजनीतिक स्थिति

त्रिकोण संघर्ष का अवसान प्रतिहार साम्राज्य की विजय एवं महेन्द्रपाल के राज्याभिषेक में हुआ। इस शासक के काल में प्रतिहार साम्राज्य अपनी सफलता एवं समृद्धि की चरम सीमा पर था। कान्यकुब्ज की हर्षकालीन गरिमा पुनः लौट आई। महेन्द्रपाल केवल तलवार का ही धनी न था, अपितु साहित्यकारों का आश्रयदाता भी था। ऊना,[१] दिघवा-दुवोली[२] और रामगया[३] के भिन्न भिन्न

१. एपिग्राफिका इण्डिका—भाग ९, पृष्ठ ६, टिप्पणी।
२. इण्डियन एण्टिक्वेरी—भाग १४, पृष्ठ ११२।
३. आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, कनिंघम—भाग ३, पृ० १२३।

अभिलेखों में उसके लिये महेन्द्रायुध, महेन्द्रपालदेव, महीन्द्रपाल आदि उपाधियों का प्रयोग किया गया है। मगध और उत्तर बंगाल पर विजय प्राप्त कर उसने पिता मिहिरभोज की साम्राज्यसीमा और भी विस्तृत कर दी। महेन्द्रपाल के दो अभिलेख ऊना (मालवा) में प्राप्त हुए हैं। इनमें क्रमशः चालुक्य नरेश बलवर्मन् और उसके पुत्र अवनिवर्मन् द्वितीय द्वारा एक सूर्य मंदिर को दिये गये दो गावों के दान का उल्लेख है। ये दोनों सामन्त इन अभिलेखों में परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुध अथवा महेन्द्रपाल के सामन्त कहे गये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि (काटियावाड़) सौराष्ट्र भी महेन्द्रपाल के आधीन था। पेहवा, दिघवा, दुबौली एवं सियदौनी अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि उसका साम्राज्य पश्चिम में पूर्वी पंजाव, पूर्व में पश्चिमी मगध, उत्तर में नैपाल की तराई तथा दक्षिण में ग्वालियर प्रदेश तक विस्तृत था। राजशेखर के ग्रन्थों में इस दानी, साहित्यसेवी, आश्रयदाता के लिये निर्भयराज, निर्भय नरेन्द्र, रघुकुलतिलक एवं रघुकुल चूड़ामणि, विरुदों का प्रयोग उपलब्ध होता है। सियदोनी अभिलेख में महेन्द्रपाल की अन्तिम तिथि ९०७ ई० मिलती है। अतः सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ९१० ई० में महेन्द्रपाल की मृत्यु हो गई होगी।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात् सम्भवतः उनके दो पुत्रों, भोज द्वितीय और महीपाल प्रथम में युद्ध छिड़ गया। महेन्द्रपाल की अनेक रानियां थीं। उनमें से एक के पुत्र का नाम भोज और दूसरी के पुत्र का नाम महीपाल था। युद्ध के आरंभ में भोज की विजय हुई। भोज की इस जीत में उसके एक सामन्त चेदि नरेश कोक्कल प्रथम ने वड़ी सहायता की थीं। उधर चन्देल नरेश हर्षदेव ने महीपाल का पक्ष लिया। इस समय सामन्त कोक्कल की मृत्यु हो चुकी थी। अतः महीपाल को पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया। इस युद्ध से छुटकारा पाते ही उसे राष्ट्रकूटों का मुकावला करना पड़ा। खम्भात[1] ताम्रपट के अनुसार राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय और महीपाल के युद्ध में महीपाल की पराजय हुई, किन्तु इन्द्र तृतीय के वापस चले जाने के पश्चात् महीपाल ने कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया तथा वंश की खोई हुई गरिमा पुनः प्राप्त की। अरब यात्री अलमसूदी ने प्रतीहार-राष्ट्रकूट-संघर्ष का उल्लेख किया है। उसने कन्नौज के प्रतिहार राजा को वऊर तथा राष्ट्रकूटों को वहुलर कहा है। उसका कथन है कि वहलर से रक्षा करने के लिये बऊर ने दक्षिण ने एक सेना स्थापित कर रखी थी। अरव यात्री सुलेमान का वर्णन भी उल्लेखनीय है। वह लिखता है कि "जुञ्ज के पास

१. एपिग्राफिका इण्डिका भाग ६, पृ० २६ टिप्पणी।

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चार दिशाओं में चार सेनायें सदा तैयार रहती थीं । पश्चिम की सेना विशेष सुसज्जित थी । इसका कारण यह था कि उक्त राज्य की पश्चिमी सीमा अरबों के सुल्तान राज्य से मिली हुई थी । अरब वाले हिन्द पर आक्रमण करने के लिये सदा सुसज्जित रहते थे । दक्षिण की सेना (बलूहारा) राष्ट्रकूट का सामना करने के लिये तत्पर थी, क्योंकि वह अरबों का मित्र और सहायक था । पूर्व और उत्तर की सेनाओं का अधिक काम नहीं था । ये सेनायें इधर उधर भी जाती थीं । कन्नौज की प्रधान सेना घुड़सवारों की थी, तथा सेना में विशेष रूप से मारवाड़ी क्षत्रिय थे ।"

९४५ ई० के लगभग महीपाल की मृत्यु हो गई । महीपाल एवं भोज द्वितीय के आन्तरिक कलह में भोज की सहायता देने वाले चेदिवंशज कोक्कल के १८ अठारह पुत्र थे । कोक्कल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र शंकरगण ने पिता का अधिकार प्राप्त किया । उसके उपरान्त उसके बड़े पुत्र बालहर्ष ने अल्पकाल तक शासन किया । बालहर्ष के पश्चात् उसका छोटा भाई युवराज प्रथम कलचुरि सत्ता का स्वामी बना । यह अपने काल का शक्तिशाली शासक था । युवराज ने अपनी पुत्री कन्दुकदेवी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्प तृतीय के साथ कर राष्ट्रकूटों से रक्त-संबंध स्थापित किया । इस दम्पति से कृष्ण तृतीय का जन्म हुआ यह ९४९ ई० के लगभग राष्ट्रकूट सिंहासन पर आसीन था । इसने अपने पिता की नीति का त्याग कर कलचुरि वंश से शत्रुता कर ली, तथा अपने नाना युवराज देव प्रथम पर आक्रमण किया । बिलहरी अभिलेख से पता चलता है कि युवराज ने (कर्नाटों) राष्ट्रकूटों को पराजित किया था । राजशेखर इस नरेश के दरबार में भी रहे थे ।

राजशेखर के समय की राजनीतिक स्थिति का यह पर्यवेक्षण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि राजशेखर के उदय के पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति डाँवा-डोल थी । उत्तर में अरबों का जोर था, उसी प्रकार पाल, प्रतीहार एवं राष्ट्रकूट अपनी शक्ति की प्रतिष्ठा के लिये आन्तरिक शक्ति की नींव खोखली कर रहे थे। लगभग डेढ़ शताब्दी तक यह आन्तरिक संघर्ष विकराल रूप धारण किये रहा, किन्तु संघर्ष की सुखद परिणति गुर्जर प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की प्रभुता में समाहित हो गई । राजशेखर महेन्द्रपाल के राजगुरु थे । उन्होंने महेन्द्रपाल के शक्तिशाली पिता मिहिरभोज के ऐश्वर्य, महेन्द्रपाल की सार्वभौमता एवं महीपाल के सामयिक पतन की अनुभूति एक साथ की । इस राजनीनितिक उत्थान पतन

ने उनके जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डाला जिसकी अभिव्यक्ति अपूर्ण बालभारत एवं बालरामायण के प्रसंगों में हुई है ।

राजशेखर युगीन धार्मिक स्थिति : यह युग हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की उन्नति का काल था । सम्प्रदायों में वैष्णव, शैव, शाक्त एवं सूर्य सम्प्रदाय प्रमुख थे ।

वैष्णव सम्प्रदाय : इस समय विष्णु की उपासना अनेक नामों––गरुड़ासनदेव, चक्रस्वामिदेव, त्रैलोक्यमोहन, माधव, वामन, स्वामिदेव आदि––से की जाती थी । समाज में उनके अनेक अवतारों की भलीभाँति प्रतिष्ठा हो चुकी थी । मंदिरों और मूर्तियों की स्थापना पुण्य कर्म समझा जाता था । ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में अल्लनामक एक व्यक्ति ने विष्णुमंदिर का निर्माण कराया था । पेहोवा अभिलेख तोमरों द्वारा निर्मित एक विष्णु मंदिर का उल्लेख करता है । मंदिरों के लिये दानदाताओं की कमी न थी । बहुसंख्यक विष्णु मूर्तियों का निर्माण इसी युग में हुआ था । जोधपुर अभिलेख में शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुए चर्तुमुखी पारमेश्वरी प्रतिमा का उल्लेख है । शेष-शायी रूप में भी विष्णु अनेकों मंदिर में प्रतिष्ठित हुए ।

शैव सम्प्रदाय : वैष्णव सम्प्रदाय की भाँति शैव सम्प्रदाय भी लोकप्रिय था । शिव भगवान्, महादेव, रुद्र, शंकर, शम्भु, सर्व, पशुपति, योगस्वामी आदि अनेक नामों से प्रख्यात थे । देश के अधिकांश भागों में शिव के मंदिरों और प्रतिमाओं की स्थापना की गई थी । मंदिरों की आर्थिक व्यवस्था दान द्वारा सुकर हो जाती थी । देश में बहुसंख्यक शैवाचार्य और शैव-पाशुपत सन्यासी थे । उनके बहुत से मठ थे ।

शैव और वैष्णव मतों का संबन्ध : धार्मिक सहिष्णुता के कारण वैष्णवों और शैवों के पारस्परिक संबन्ध अच्छे थे । शिव मंदिर में प्राय: विष्णु की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की जाती थी । कभी कभी शैवाचार्य शैव मंदिरों के साथ वैष्णव मंदिरों की देखभाल करते थे । राष्ट्रकूट नरेशों की मुहरों में इन दोनों देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं ।

इन दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त तान्त्रिक सम्प्रदाय भी देश में प्रचलित था । उसकी चरमाभिव्यक्ति कौल मत से हो रही थी । कौल सिद्धों की साधना अत्यन्त विकृत तथा भीषण आचारों से भरी हुई थी । यह धीरे धीरे अपने हाथ पैर फैलाती जा रही थी । कौलों ने मांसाहार, सुरापान तथा यौन-संपर्क को साधना

के रूप में स्वीकार कर लिया था । आचरण से पतित होते हुए भी वे राजमहल से समाज तक को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर प्रलोभित करते थे । इस प्रकार की साधना समाज को दूषित करने का गर्हणीय कार्य कर रही थी ।

बौद्ध धर्म : बौद्ध धर्म अपनी अवनत अवस्था में था । इसके अनुयायी अल्पसंख्यक थे, किन्तु उन्हें पूर्णतया धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी । पाल नरेश धर्मपाल एवं देशपाल स्वयं बौद्ध थे ।

जैन धर्म : इस समय दक्षिण में जैन धर्म का प्रचार था। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम, कृष्ण द्वितीय, इन्द्र तृतीय तथा चतुर्थ ने इस धर्म को राजाश्रय दिया था ।

पूजा : हिन्दुओं में बहुदेवोपासना और मूर्ति-पूजा का प्रचलन था । मूर्ति पूजा के अनेक विधि-विधान विद्यमान थे । शक्ति की पूजा पार्वती, काली, दुर्गा, चामुण्डा, भगवती आदि अनेक नामों से होती थी । सूर्य पूजा को भी पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी । प्रतिहार नरेश रामभद्र और विनायकपालदेव आदित्यभक्त कहे गये हैं। विनायक पूजा का भी प्रचार था । विनायक गणेश के नाम से प्रख्यात थे ।

धार्मिक स्थिति के अवलोकन से पता चलता है कि इस युग में अनेक धार्मिक थे। जिनमें वैष्णव, शैव, (कौल) प्रधान थे। इनके अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार भी था। देवी देवताओं की साकार भक्ति का महत्व अधिक था । फिर भी इन धर्म साधनाओं में पारस्परिक विरोध न था । एक ही वंश के राजगण भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते थे । प्रतिहार वंशी नागभट्ट द्वितीय और भोज प्रथम भगवती के उपासक थे तो रामभद्र और विनायक पालदेव आदित्य भक्त । राष्ट्रकूट नरेश जैनावलम्बी थे, किन्तु उनके वंश में उत्पन्न दन्तिदुर्ग ने ब्राह्मणधर्म का अवलम्बन किया था । पाल नरेश बौद्ध धर्म के प्रचारक थे । उन्होंने परम सौगत पदवी धारण की थी किन्तु धर्मपाल द्वारा नरनारायण तथा विनायकपाल द्वारा शिवमंदिर के निमित्त दान का उल्लेख मिलता है । संक्षेप में इस युग में धार्मिक सहिष्णुता पराकोटि की थी ।

राजशेखर की रचनाओं पर प्रभाव : राजशेखर की रचनायें सामयिक एवं पूर्ववर्ती वातावरण से अछूती न रह सकीं । उन पर प्राचीन नाट्य एवं शास्त्र परम्परा का प्रचुर मात्रा में प्रभाव दिखाई देता है ।

बालरामायण नाटक पर प्रत्येक दृष्टि से भवभूति कृत महावीरचरित का प्रभाव लक्षित होता है। भावसाम्य एवं शब्द-साम्य के अनेकों उदाहरण इस कथन को पुष्ट करते हैं। जिसका विवेचन नाटकों के प्रसंग में किया जायगा।

बालरामायण पर कालिदास की कृतियों का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। गर्भाङ्क में प्रस्तुत 'सीतास्वयंवर' कालिदास के इन्दुमती स्वयंवर की प्रतिकृति है। रावण का सीता को प्रतिलक्षित कर विलाप, पुरूरवा द्वारा व्यक्त किये गये उर्वशी के प्रति विलाप से समानता रखता है। इसके अतिरिक्त यह विलाप 'मालती माधव' के इसी प्रसंग का स्मरण दिलाता है।

तत्कालीन युद्धविभीषकाओं की झलक भी कवि ने तीव्रता से व्यक्त की है। राजशेखर ने राष्ट्रकूटों एवं प्रतिहारों का भीषण संघर्ष अपनी आँखों से देखा था। रक्त की बहती नदियाँ, उग्र अस्त्रों का संचालन, युद्धभूमि में मृतकों की गीधादि द्वारा की जाने वाली दुर्दशा ये सारी घटनायें राजशेखर ने राम-रावण युद्ध के माध्यम से चित्रित की है। प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूटों एवं प्रतिहारों का युद्ध राजकीय रंगमंच पर पुनः प्रदर्शित किया जा रहा है। इस नाटक में शिव के लिये प्रयुक्त सैकड़ों नाम तत्कालीन शैव सम्प्रदाय की स्थिति का दिग्दर्शन करते हैं। सीताहरण की वार्ता सुनकर दशरथ द्वारा पावनसंगम में प्राण-विसर्जन करने की इच्छा जैन धर्म के सिद्धांतों से प्रभावित लक्षित होती है। इस नाटक में रावण को अतिशृंगारी बतलाना भी साभिप्राय है। राजशेखरकालीन सामन्तवादीयुग में सत्ताधारियों में विलासी एवं शृंगारी प्रवृति की भावना स्वाभाविक थी, जिसकी अभिव्यक्ति खलनायक के चरित्र में अंकित है।

राजनीतिक विप्लव में कवि का राजाश्रय के लिये कन्नौज से त्रिपुरी चल पड़ना, भवभूति नामक पात्र के गुरू अन्वेषणार्थ किये जाने वाले भ्रमण से स्पष्ट हो जाता है।

कवि की दूसरी नाट्यकृति, बालभारत अपूर्ण है, किन्तु प्रस्तावना में वर्णित भ्रातृकलह महीपाल एवं भोज के आन्तरिक कलह का स्मरण दिलाता है।

कौलाचार की वरिष्ठता तथा सामान्यजनों से राजपरिवार तक उसकी पहुँच कर्पूरमंजरी सट्टक में दिखाई देती है। चैत्र-गौरी, हिंडोला-चर्तुर्थी और वट-सावित्री के व्रत उस समय मनाये जाने वाले सामाजिक पर्वों का संकेत करते हैं। इनकी दोनों कृतियों—कर्पूरमंजरी एवं विद्धशालभंजिका—के नायक उस युग के अकर्मण्य, विलासरत राजगणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नाटिकाओं में

रत्नावली एवं मालविकाग्निमित्र की छाप पूर्ववर्ती नाट्य के प्रभाव को सूचित करती है ।

काव्यमीमांसा में पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का अविच्छिन्न प्रभाव लक्षित होता है। राजशेखर ने आचार्य, वामनीय, औद्भट, भरत आदि शब्दों से इसी तथ्य को दिग्दर्शित किया है । तत्कालीन साहित्यिक धारा भी इसमें प्रवाहित है । कवियों की पाठप्रणाली, कवियों की चर्चा आदि के प्रसंग सामयिक प्रभाव से परिनिष्ठित हैं। इन कृतियों के पृथक् पृथक् अनुशीलन से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

———

द्वितीय खण्ड

राजशेखर के नाटक

वल्मीकजन्मा स कविः पुराणः कवीश्वरः सत्यवतीसुतश्च ।
यस्य प्रणेता तदिहानवद्यं सारस्वतं वर्त्म न कस्य वन्द्यम् ॥
वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवरपत्त्रसंघटितम् ।
रसनासु च सुकवीनां निवसति सारस्वतं चक्षुः ।

राजशेखर के नाटक

राजशेखर के दो नाटक उपलब्ध हैं—वालरामायण और बालभारत। इन नाटकों के मूल स्रोत हैं रामायण एवं महाभारत। राजशेखर के पूर्व भी इन दो काव्यकथाओं के आधार पर निर्मित काव्यों तथा नाटकों की संस्कृत में बहुलता थी। राम साहित्य की परम्परा से महाकाव्य क्षेत्र में कालिदास तथा नाट्यकला में भवभूति का नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजशेखर ने इस साहित्य परम्परा को उत्तराधिकार में पाया था। वालरामायण की रचना करते समय वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त भवभूति का महावीर-चरित राजशेखर के सामने था। जसका पर्याप्त प्रभाव इस नाट्यकृति पर परिलक्षित होता है।

संस्कृत साहित्य में महाभारत के कथानक को लेकर अनेक नाटकों की रचना हुई। पंचरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, दूतवाक्य, उरुभंग, कर्णभार एवं वेणीसंहार महाभारत पर ही आश्रित हैं। राजशेखर ने बालभारत के कथानक का चयन इस महाकाव्य से किया। किन्तु इस कृति के केवल दो अंक उपलब्ध हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से वालरामायण को रूपक के अन्तर्गत नाटक भेद में रखा जा सकता है। यह नाटक दस अंकों में विभक्त है। इसमें सीता-स्वयंवर से रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है।

प्रथम चार अंकों की घटनायें बालकाण्ड पर आधारित हैं। पांचवें अंक का मूलाधार अरण्यकाण्ड है। छठे अंक में अयोध्याकाण्ड एवं अरण्यकाण्ड के प्रसंग हैं। सातवें अंक की घटनायें सुन्दर एवं किष्किन्धा काण्ड पर आश्रित है। तथा आठवें और दसवें अंकों तक युद्धकाण्ड से संबन्धित घटनायें वर्णित हैं। इस नाटक में रामायण के उपाख्यान के अतिरिक्त कई नवीनतायें भी हैं जो कि राजशेखर की मौलिक प्रतिभा का परिचय देती हैं।

कथानक : दस अंकों में विभाजित वालरामायण का कथासूत्र इस प्रकार है :—
प्रथम अंक में शुनःशेप रंगमंच पर आता है। उसके कथन से ज्ञात होता है

कि विश्वामित्र, राक्षसरक्षौपधि रूप रामचन्द्र को लाने के लिये सिद्धाश्रम से अयोध्या जा रहे हैं, तथा उन्होंने अपने प्रतिनिधि के रूप में शुनः शेप को जनक-यज्ञ में उपस्थित होने के लिये भेजा है । उसी समय राक्षस का तापसवेष में आगमन होता है । राक्षस के स्वगत कथन से तीन बातों की जानकारी प्राप्त होती है । एक तो यह कि धनुरारोपण से सीता का विवाह होने वाला है तथा सीतार्थी रावण सीतास्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये शीघ्र ही मिथिला जाने वाला है । दूसरी बात यह कि उसने मायामय को परशुमार्गण के लिये परशुराम के पास भेजा है, और तीसरी बात यह है कि माल्यवान् ने मिथिला नगरी की बातें जानने के लिये इस तापसवेशी राक्षस को मिथिला में गुप्तसंचरण करने की आज्ञा दी है । परस्परालाप के पश्चात् शुनःशेप और तापस चले जाते हैं । प्रमुख दृश्य में पुष्पक विमान द्वारा रावण और प्रहस्त जनकमंदिर में पहुँचते हैं । प्रहस्तक रावण के आगमन की जानकारी जनक और शतानन्द को देता है । दोनों उसके स्वागत के लिये अग्रसर होते हैं किन्तु सीतार्थी रावण को देखकर दोनों ही व्यथित होते हैं । रावण के कहने पर शिवधनुष मँगवाया जाता है । जनक की आज्ञा से सीता अपनी सखियों सहित उपस्थित होती है । रावण रोषपूर्वक धनुष को ग्रहण करता है किंतु प्राकृत जन के समान रावण भी पण द्वारा सीता का वरण करे यह बात उसे अपमानजनक प्रतीत होती है । अतः वह अवज्ञा से धनुष को फेंक देता है । शिवधनुष के अपमान से क्रुद्ध होकर जनक शस्त्र ग्रहण करते हैं किंतु शतानन्द उन्हें रोक लेते हैं । शाप देने के लिये तत्पर जनक को वे पुनः रोकते हैं । फलस्वरूप रावण संकल्प करता है कि सीता का भावी पति उसका आमरण शत्रु होगा । नेपथ्य से माध्यन्दिनी संध्या की सूचना पाकर रावण अपने शिविर में लौट आता है । सम्पूर्ण अंक की प्रमुख घटना रावण की प्रतिज्ञा होने के कारण इस अंक का नाम प्रतिज्ञापौलस्त्य है ।

द्वितीय अंक में राम-रावण के वाक्कलह की घटना वर्णित है । इस अंक के आरंभ में शिवगण भृंगिरिटि तथा कलहकुतुहली नारद के वार्तालाप से पता चलता है कि रावण और परशुराम में परशु के पीछे युद्ध होने वाला है । प्रमुख दृश्य में रावण और प्रतीहारी प्रवेश करते हैं । रावण सीता का स्मरण कर व्याकुल हो रहा है । इसी बीच मायामय यह खबर देता है कि परशुराम परशु देने में असमर्थ हैं । परशुराम अपने शिष्य माठर को लेकर रावण के पास जाते हैं । आरम्भ में दोनों एक दूसरे की प्रशंसा करते हैं किन्तु क्रमशः उनका वार्तालाप वाक्कलह में परिवर्तित हो जाता है । अन्त में दोनों युद्ध के लिये तत्पर होते हैं ।

किन्तु भृंगिरिटि दोनों को युद्ध से रोकते हैं । राम और रावण का प्रसंग ही प्रमुख होने के कारण इस अंक की अभिधा रामरावणीय है ।

तीसरे अंक में गृध्रमिथुन के कथोपकथन से दो बातें विदित होती हैं । पहली यह कि राम और लक्ष्मण ने (यज्ञ में बाधा उत्पन्न करने के कारण) ताड़का, सुबन्धु और मारीच का वध कर दिया है। दूसरी, सीता के विरह में विक्षिप्त रावण के विनोदार्थ "सीतास्वयंवर" नामक नाटक का अभिनय होने वाला है । प्रमुख दृश्य में रावण को "सीतास्वयंवर" के दर्शक के रूप में दिखाया गया है । राम, लक्ष्मण और विश्वमित्र स्वयंवर कक्ष में अपना उचित स्थान ग्रहण करते हैं । सीता के अप्रतिम सौंदर्य पर सारे राजगण मुग्ध हैं । सीता, धात्रेयिका, जनक, शतानन्द और प्रतीहारी रंगमंच पर दिखाई देते हैं, । प्रतीहारी घोपणा करता है कि शिवधनुप को भंग करने वाला व्यक्ति ही सीता का पाणिग्रहण कर सकेगा। सब नरेशों के द्वारा इस कार्य में असमर्थता प्रकट कर देने पर राम सहज ही धनुर्भंग करते हैं । परिणामतः जनक राम से सीता का पाणिग्रहण कराते हैं । नाटक देखते हुए रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है । किन्तु शीघ्र ही प्रतीहारी उसे बताता है कि वह नाटक देख रहा है । इसी समय वैतालिक सन्ध्या की सूचना देते हैं । रावण अपने प्रासाद से लौटता है । लंकेश्वर के विलक्षण आचरण का प्रदर्शन ही इस अंक की प्रमुख घटना होने से, इस अंक का शीर्षक है "विलक्षण लंकेश्वर" ।

चतुर्थ अंक में उपाध्याय और बटु के संवाद से पता चलता है कि राम के द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर उग्रकोपी परशुराम अध्यापन कार्य छोड़कर प्रतिशोध लेने के लिये शीघ्र ही मिथिला की ओर प्रस्थान करने वाले हैं । प्रमुख दृश्य में दशरथ, विमान द्वारा मिथिला पहुँचते हैं किन्तु दौवारिक उन्हें बतलाता है कि समस्त विवाह-विधि हो चुकी है और राम आयोध्या के लिये प्रस्थान करने वाले हैं । बिदाई समारोह में सीता को गुरुजन कुलवधू धर्म की शिक्षा प्रदान करते हैं । इसी समय घोर गर्जना करते हुए परशुराम विवाहमंडप में आ खड़े होते हैं । वे राम पर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं । राम विनयपूर्वक क्षमा याचना करते हैं किन्तु परशुराम किंचित् भी द्रवित नहीं होते। अन्त में राम और परशुराम युद्ध के लिये तैयार होते हैं । इस अंक का अभिधान है 'भार्गवभंग' ।

पाँचवें अंक में मायामय और माल्यवान् की चर्चा से विदित होता है कि राम और परशुराम के युद्ध में राम विजयी हुए हैं । दुर्बुद्धि रावण सीता में अनुरक्त है, तथा उसका हरण करना चाहता है । इसलिये मन्दोदरी के पिता मायामय

ने रावण के कृत्रिम परितोष के लिये यन्त्र-जानकी का निर्माण किया है । प्रमुख दृश्य में विरही रावण के दर्शन होते हैं । वह सीता के लिये अत्यन्त व्याकुल है । प्रहस्त यन्त्र-जानकी और उसकी सखी सिन्दूरिका को रावण के समक्ष उपस्थित करता है । कतिपय प्रणयोद्‌गार के पश्चात् रावण सीता के आलिंगन के लिये बढ़ता है, किन्तु छूते ही ज्ञात हो जाता है कि वह यंत्र-जानकी है । वह प्रहस्त को आदेश देता है कि उसे प्रमोदवन का मार्ग दिखाया जाय । कामसंतप्त रावण के लिये 'षड्ऋतु चक्रवाल' की योजना की जाती है किन्तु उसे शांति नहीं मिलती है । वह कामदेव से ऐसे प्रहार की प्रार्थना करता है जिससे वह और उसकी प्रिया जानकी मरने के पश्चात् पुनः स्वर्ग में मिल सकें । उसकी कामशांति के लिये गिरिपत्नियाँ अप्सरायें, नदियाँ, लक्ष्मी, वारुणी एवं सरस्वती उसकी विविध सेवायें करती हैं किन्तु उनसे कोई लाभ नहीं होता । वह हाथी, सर्प, हरिण, चन्द्र, वायु, लता आदि पर प्रिया के विभिन्न अवयवों का सौंदर्य हरने का आरोप लगाता है । प्रभंजिका उसे वस्तुस्थिति का बोध कराती है। इसी बीच छिन्ननासा शूर्पणखा, सीता का हरण करने के प्रयास में असफल होकर लौटती है । रावण की क्रोधाग्नि भड़क उठती है । सम्पूर्ण अंक में दशानन की उन्मत्तावस्था का वर्णन होने के कारण इस अंक का नाम 'उन्मत्त दशानन' है ।

छठे अंक के आरंभ में माल्यवान् के कथन से पता चलता है कि बहन की दुर्दशा के प्रतिशोध के लिये रावण राम की राजधानी की ओर जा रहा था किंतु उसे रोका गया । उसके दूत ने खबर दी कि वैदेही ने रावण के साथ रहने का निश्चय किया है । इसके पश्चात् मायामय और शूर्पणखा आती है ।

उन दोनों के वार्तालाप से चौदह वर्ष के लिए राम के निर्वासन का रहस्य उद्‌घाटित होता है। जिस समय दशरथ कैकयी सहित इन्द्र की सहायता के लिये स्वर्ग गये हुए हैं मायामय शूर्पणखा एवं उनकी परिचारिका क्रमशः दशरथ, कैकयी एवं मंथरा के छद्म रूप में अयोध्या पहुँचे । छद्म-कैकयी ने दशरथ से दो वरों की याचना की---राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास एवं भरत का राज्याभिषेक । वामदेव के रोकने पर भी पितृपरायण राम ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और वन के लिये प्रस्थान कर दिया । सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये । दशरथ और कैकयी के आगमन के भय से नकली कैकयी और दशरथ जनसमूह में मिल गये । प्रमुख दृश्य में दशरथ और कैकयी जब अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो राजधानी को सुनसान और उदास देखकर उन्हें कुशंका उत्पन्न होती है । वामदेव जब रावण के छल प्रसंग का वर्णन करते हैं तब दशरथ और कैकयी अत्यन्त

शोकाकुल हो उठते हैं । राम का समस्त परिवार शोक-संतप्त दिखाई देता है । इसी समय सुमन्त्र आते हैं । वे राम के वन जीवन, तथा नर्मदा तक के प्रवास का करुण वर्णन करते हैं । तत्पश्चात् जटायु का दूत चित्रशिखण्ड भी आकर सीता के हरण तथा उन्हें छुड़ाने के प्रयास में गृध्रराज जटायु की मृत्यु का दुःखद संवाद सुनाता है। यह सुनकर व्यथित हुए दशरथ, गंगा यमुना के संगम में शरीर त्याग करने की इच्छा प्रकट करते हैं । राम-निर्वासन में दशरथ एवं कैकयी को निर्दोष प्रदर्शित करने के कारण इस अंक की संज्ञा है—"निर्दोषदशरथ" ।

सातवें अंक का आरम्भ कर्पूरचण्ड और चन्दनचण्ड नामक वैतालिकों द्वारा नेपथ्य में गायी गई प्रभात-भोगावली से होता है । वे राम के पुनीत जीवनक्रम का वर्णन करते हैं । प्रतीहार प्रवेश करके उन्हें शौर्य-गुण के गान करने से मना कर देता है क्योंकि रामचन्द्र ने पिता की मृत्यु से दुःखी होकर रावण के वध तक अपने यशोगान पर नियंत्रण लगा दिया है । प्रतीहारी एवं वैतालिकों की चर्चा से राम के विनय करने पर भी समुद्र द्वारा मार्ग न देने की घटना का पता चलता है । अन्ततः राम को क्रुद्ध होकर अग्निवाणों की वर्षा करनी पड़ती है । राम, विभीषण और सुग्रीव मंच पर दिखाई देते हैं । हनूमान् नामक नवीन पात्र का आगमन होता है । हनूमान् राम को यथोचित प्रणाम करता है—समुद्र अपनी पत्नियों सहित आकर राम से क्षमा याचना करता है । वह सेतु बाँधने के लिये राम से आग्रह करता है । सेतु-निर्माण का कार्य प्रारंभ होता है । राम मलयपर्वत पर चढ़कर सेतुनिर्माण के कार्य का अवलोकन करते हैं। एकाएक भीषण गर्जना होती है। रावण द्वारा भेजी गई राक्षस सेना सेतुबन्ध में विघ्न डालने का प्रयास करती है । परिणामस्वरूप बानर और राक्षसों के बीच घमासान युद्ध छिड़ जाता है । राक्षस-सैन्य पराजित होकर भाग जाता है । पुनः बाधा उत्पन्न करने के लिये रावण विमान से सीता का कटा मस्तक फेंकता है । उसे देखकर राम और लक्ष्मण शोकविह्वल हो जाते हैं । किन्तु शीघ्र ही सारिका मायासीता के नकली होने की सूचना देती है। अब राम द्वि-गुणित उत्साह से युद्ध के लिये आगे बढ़ते हैं। राक्षसदल पुनः घोरगर्जन करता हुआ रणक्षेत्र में उतरता है और राम को भी चेतावनी देता है । दोनों सेनायें युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं । इस अंक का नाम है 'असमपराक्रम' ।

आठवें अंक के आरम्भ में सुमुख और दुर्मुख इन दो राक्षसों के वार्तालाप से पता चलता है कि रावण ने 'तुलाद्यूत' प्रस्ताव की सम्मति के लिये, शुक और सारण को राम के पास भेजा है । शर्त यह थी कि इस तुलाद्यूत में जिसकी जीत होगी

उसे---सीता और लंका दोनों मिल जायँगी। सबके निषेध करने पर भी राम अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। इस कार्य में राम का प्रतिनिधि अगंद विजयी होता है, किन्तु रावण तुलाद्यूत की शर्त वापिस ले लेता है। त्रिजटा नामक राक्षसी, सीता को युद्ध विषयक समस्त घटनाओं की जानकारी देती रहती है,। प्रमुख दृश्य में रावण सोकर उठता है। वह राम और लक्ष्मण से युद्ध करने के लिये क्रमशः कुम्भकर्ण और मेघनाद को भेजता है। मेघनाद और कुम्भकर्ण मारे जाते हैं। इस अंक में वीरों के वीरत्व का वर्णन है। अतः अंक का शीर्ष है 'वीरविलास'।

नवें अंक के आरम्भ में यम पुरुष दिखाई देता है। उसके कथन से पता चलता है कि उसने लंका में हुई मृत्यु-संख्या की जानकारी के लिये चित्रगुप्त के पास अपने सेवक को भेजा है। मृत्यु की संख्या अत्यधिक होने के कारण चित्रगुप्त काम के भार से आक्रान्त हैं। तथापि वे मृत्यु-लेखा प्रस्तुत करते हैं। इन्द्र और दशरथ राम-रावण के द्वंद्वयुद्ध के अवलोकन के लिये तैयार हैं। दो चारण युद्ध का वर्णन करते हुए कहते हैं कि युद्ध को राम यथासंभव शांतिपूर्वक निपटाना चाहते हैं किन्तु रावण को यह स्वीकार नहीं है। दोनों योद्धाओं में पहले तो वचनों का आदान प्रदान होता है, तत्पश्चात् बाणों की वृष्टि। अनेक प्रकार के अस्त्रों के चालन से युद्ध की विभीषिका बढ़ जाती है। राम द्वारा रावण के मस्तक छिन्न करने का प्रयास सफल होता है, क्योंकि रावण के कटे हुए सिर के स्थान पर दूसरा सिर उत्पन्न हो जाता है। अन्त में राम विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त मायाहर नामक अस्त्र का प्रयोग करते हैं, जिसमें वे रावण के दसों सिरों का उच्छेद करने में सफल हो जाते हैं। देवगण रावण वध से प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करते हैं। अतः इस अंक का नाम 'रावण वध' है।

अन्तिम अंक में राम के जीवन का सुखमय पक्ष वर्णित है अतः अंक का शीर्षक 'राघवानन्द' है। सशोका लंका एवं अलका के कथन से ज्ञात होता है कि सीता की अग्निपरीक्षा की गई जिसमें से वे अक्षत निकल आईं। राम अयोध्या गमन के लिये तत्पर हैं। प्रमुख दृश्य में राम, लक्ष्मण, सीता, त्रिजटा, सुग्रीव और विभीषण विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं। जिन स्थलों पर युद्ध की महत्वपूर्ण घटनायें घटी थीं उन स्थलों का निर्देश करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ते हैं। विमान समुद्र सतह से ऊपर आकाश की ओर पहुँचता है। हिमालय, कैलाश, मानस, मन्दर, मेरु आदि पर्वत को पार करते हुए यान चन्द्रलोक में पहुँचकर पुनः रोहणगिरि, मलयगिरि, ताम्रपर्णी एवं अगस्त्याश्रम से होता हुआ लोपामुद्रा के पुनीत आश्रम में रुकता है। तत्पश्चात् द्रविड़, आंध्र, कावेरी, महाराष्ट्र, नर्मदा,

लाट, मालवा, उज्जयिनी, पांचाल, महोदय, प्रयाग, वाराणसी एवं मिथिला को पार करते हुए वे लोग अयोध्या में आते हैं । राम के राज्याभिषेक के सुखद चित्रण के साथ नाटक की समाप्ति होती है ।

राजशेखर ने बालरामायण नाटक में रामायण की कथा को आधार माना है किन्तु उन्होंने कतिपय नूतनताओं की उद्भावना की है, जिससे महाकाव्य नाटक के कलेवर में परिणत किया जाने योग्य हो सके । स्वयं राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में इसका स्पष्ट संकेत किया है यथा—

पारिपार्श्विकः—वाल्मीकिना मुनिवरिष्ठेन दृष्टनिबन्धनस्य रामचन्द्रचरितस्य कः पुनः स विशेषो यमेष कविदर्शयिष्यति ।

सूत्रधारः—मारिष ! क्वचित्कश्चित्प्रगल्भते नहि सर्वः सर्वं जानाति ।

पारिपार्श्विकः—भाव! ननु भणामि प्रत्यक्षीकृतसकल सर्गशब्दार्थात् तत्रभवतो महर्षेरतिक्रम्य किमेष चर्मचक्षुः प्रेक्षिष्यते ।

सूत्रधारः—मारीष मा मैवम्

वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवर पत्रसंघटितम् ।
रसनासु च सुकवीनां निवसति सारस्वतं चक्षुः ॥[1]

जिन प्रसंगों में नाटककार ने अपनी मौलिकता प्रकट की या प्रचलित कथा से भिन्नता प्रदर्शित की है, वे हैं:—१—सीतास्वयंवर, २—विवाहोपरान्त दशरथ का आगमन, ३—स्वयंवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति, ४—ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध, ५—राम-परशुराम संघर्ष, छद्म मस्तकों के प्रसंग, ६—यंत्रजानकी, ७—शूर्पणखा प्रकरण, ८—कैकयी का दोषनिवारण एवं ९—दशरथ मरण ।

सीतास्वयंवर : वाल्मीकि-रामायण में सीता स्वयंवर के प्रसंग में कहा गया है कि जब अनेक राजा शिव के धनुष को उठाने में असमर्थ रहे तो उन्होंने मिथिला पर आक्रमण कर दिया[2] किन्तु उस घटना के वर्षों बाद राम ने धनुर्भंग करके सीता का पाणिग्रहण किया ।[3]

बालरामायण में सीता-स्वयंवर प्रसंग दो बार वर्णित है । प्रथम अंक में सीता स्वयंवर की घोषणा के पश्चात् रावण मिथिला को प्रस्थान करता है किन्तु

१. बालरामायण अंक १ पृष्ठ ६।७
२. वाल्मीकि रामायण १—६६
३. वही—२—११८

धनुष ग्रहण करने के पश्चात् वह धनुष परीक्षा को अस्वीकार कर देता है ।[1] इस नाटक के तृतीय अंक में पुनः सीता स्वयंवर के आयोजन का वर्णन मिलता है । शिव का धनुष भंग करने का अनेक राजाओं ने प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे । अन्ततः राम धनुष-भंग करते हैं । सीता-स्वयंवर के गर्भांक में रावण सम्मिलित होता है किन्तु दर्शक के रूप में ।[2]

विवाह के उपरान्त दशरथ का आगमन वाल्मीकि-रामायण के अनुसार विश्वामित्र जनक के यज्ञ के अवसर पर राम-लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं । राम धनुष-भंग करते हैं । दशरथ को निमंत्रित किया जाता है । तत्पश्चात् उनके पुत्रों का विवाह होता है ।[3] बालरामायण में दशरथ को निमंत्रित नहीं किया जाता वे स्वयं रामविवाह का समाचार सुनकर मिथिला पहुँचते हैं लेकिन तब तक विवाह का कार्य सम्पन्न होकर वरवधू की बिदाई का आयोजन हो रहा होता है ।[4]

स्वयंवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति : रामायण के अनुसार स्वयंवर के समय विश्वामित्र स्वयं उपस्थित थे[5] जबकि बालरामायण में विश्वामित्र के स्थान पर उनके प्रतिनिधि शुनःशेप उपस्थित हैं ।[6]

ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध (वध की स्थान-भिन्नता) : वाल्मीकि रामायण के अनुसार सिद्धाश्रम में पहुँचने के पूर्व ही राम ताड़का का वध करते हैं[7] तथा आश्रम में यज्ञ-रक्षा करते समय वे सुबाहु और मारीच का वध करते हैं । लेकिन बालरामायण में सिद्धाश्रमवासियों को अपने उत्पातों से त्रस्त करने से राम वहीं उसका वध करते हैं ।[8] उसी प्रकार मिथिला जाने में विघ्न उत्पन्न करने के कारण वे मारीच सुबाहु का वध करते हैं ।[9]

राम-परशुराम संघर्ष : वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम के पराक्रम तथा उनके द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर परशुराम उनसे द्वंद्वयुद्ध करना चाहते

१. बालरामायण अंक १—५०।५१
२. वही अंक ३ पृ० ६०।८५
३. वाल्मीकि रामायण १—६६
४. बालरामायण ४:४१:४२
५. वाल्मीकि रामायण १—३१—५० ।
६. बालरामायण १—२३:२३
७. वाल्मीकि रामायण १—२६ वही—१—४० ।
८. वाल्मीकि रामायण ३—६ ।
९. बालरामायण ३।७—८ ।

हैं । विवाह के पश्चात् अयोध्या की ओर प्रस्थान करते समय वे राम को चुनौती देते हैं, किन्तु ज्यों ही वे विष्णु-चाप चढ़ाते हैं, परशुराम निष्प्रभ होकर उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में पहचान कर प्रणाम करते हैं। राम चढ़े हुए बाण से परशु राम के तपोबल द्वारा संचित पुण्य नष्ट करते हैं और परशुराम महेन्द्र पर्वत की ओर चले जाते हैं ।[1]

बालरामायण में धनुष-भंग का समाचार सुनकर परशुराम मिथिला पहुँचते हैं । अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे राम का वध करने की बार बार धमकी देते हैं । अन्त में दोनों युद्ध के दृश्य के उद्देश्य से रंगमंच से चले जाते हैं ।[2]

यन्त्र-जानकी (छद्म-मस्तकों के प्रसंग) : रामायण में रावण प्रहस्त द्वारा सीता के पास राम के वध का समाचार सुनाता है तथा विद्युज्जिह्व के द्वारा सीता को राम का मस्तक तथा धनुष दिखाता है । रावण के चले जाने पर राम का मायावी मस्तक और धनुष दोनों अदृश्य हो जाते हैं ।[3] दूसरी घटना माया-सीता के वध से संबन्धित है । इन्द्रजीत लंका के पश्चिमी द्वार से निकलकर हनुमान तथा अन्य वानरों के सामने अपने रथ पर बैठी सीता का सिर काट लेता है । राम-सीता-वध का समाचार सुनकर विलाप करने लगते हैं किन्तु विभीषण राम को विश्वास दिलाता है कि रावण सीता का वध नहीं कर सकता । अवश्य ही यह कोई माया-सीता होगी ।[4]

बालरामायण में रावण सेतु निर्माण के समय विमान द्वारा राम के शिविर के पास आकाश में पहुँचता है तथा राम के सम्मुख यन्त्रजानकी का वध करके उसका मस्तक समुद्रतट पर फेंककर लंका लौट जाता है ।[5] इस प्रकार ग्रन्थों में मायाशीर्षों के प्रसंग में अन्तर है ।

शूर्पणखा प्रकरण (शूर्पणखा के प्रसंग में समय का अन्तर) : वाल्मीकि-रामायण में शूर्पणखा राम के पास वन में जाकर यह इच्छा प्रकट करती है कि वह सीता तथा लक्ष्मण का भक्षण करके उनकी पत्नी बनना चाहती है । राम उसको अविवाहित लक्ष्मण के पास भेज देते हैं । राम की अस्वीकृति जानकर शूर्पणखा सीता पर आक्रमण करने के लिये उद्यत होती है, किन्तु राम की आज्ञा से लक्ष्मण

१. वाल्मीकि रामायण १–७४–७५–७६ ।
२. बालरामायण ४:८१:८३ ।
३. वाल्मीकि रामायण ६–३१ ।
४. वही–६–८१ ।
५. बालरामायण ७–७१–७९ ।

उसके कान और नाक काट लेते हैं ।[१] वालरामायण में शूर्पणखा वनवास के पूर्व ही अयोध्या के राम तथा लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत और विरूपित की जाती है ।[२] वाल्मीकि-रामायण के अनुसार शूर्पणखा विरूपित हो जाने के वाद जन्मस्थान में अपने भाई के पास पहुँचकर विलाप करती है । वालरामायण में वह रावण के पास जाकर कहती है कि मैंने सीता को तुम्हारे योग्य समझकर उसका अपहरण करना चाहा, फलस्वरूप राम-लक्ष्मण ने यह दुर्गति कर दी ।

उक्त प्रसंग में रामायण तथा वालरामायण के काल में वर्षों का अन्तर है ।

कैकयी का दोष-निवारण : वाल्मीकि ने पहले तो कैकयी की दुष्टता का चित्रण किया है ।[३] फिर कैकयी के दोष-निवारण का भी प्रयत्न किया है । किन्तु वालरामायण ने प्रारम्भ से ही कैकयी को निर्दोष दिखाया है । जव दशरथ कैकयी के साथ इन्द्रलोक में गए हुए थे तभी दोनों की अनुपस्थिति में मायामय, शूपर्णखा तथा एक परिचारिका क्रमशः दशरथ, कैकयी तथा मंथरा का रूप धारण करके राम निर्वासन की अभिसंधि में सफल होते हैं ।

दशरथ-मरण : रामायण में राम-वनगमन के पश्चात् सुमंत्र से राम का संदेश सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं तदनन्तर शोकाकुल अवस्था में उनकी मृत्यु हो जाती है ।[४] वालरामायण में दशरथ सीताहरण के समाचार से अत्यन्त व्याकुल होकर गंगा यमुना के संगम में डूब कर प्राण त्याग देते हैं ।[५]

नाटक में इन वड़े परिवर्तनों के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे परिवर्तनों अथवा नावीन्य का विन्यास भी लक्षित होता है जैसे—

१—आठवें अंक में नरान्तक और अंगद का तुलाद्यूत प्रसंग तथा उसमें विजयी व्यक्ति को सीता तथा लंका का स्वामी होने की कल्पना नवीन है ।

२—रामायण में कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् नरान्तक का वध वर्णित है ।[६] नाटक में यह मृत्यु कुम्भकर्ण-वध के पूर्व होती है ।[७] नाटक में कुम्भकर्ण और

१. वालरामायण ७–७१–७९ ।
२. वालरामायण ४–७८ ; ७९ ।
३. वाल्मीकि रामायण २–४५ ।
४. वाल्मीकि रामायण २–५९:६० ।
५. वालरामायण ६–६२ ।
६. वाल्मीकि रामायण ६-६९
७. वालरामायण ८-८१-८२

मेघनाद राम और लक्ष्मण के साथ प्रायः एक ही समय में युद्ध करते हैं।[1] जबकि महाकाव्य में इन दोनों के युद्ध के बीच अनेक दानवों के युद्ध का वर्णन है।[2] सेतुबन्ध के समय में सिंहनाद राम के पास जाकर उनका युद्ध के लिए आह्वान करता है।[3] रामायण में इसका उल्लेख नहीं है। रामायण में रावण की मृत्यु ब्रह्मास्त्र द्वारा वर्णित है।[4] बालरामायण में रावण के नव सिरों का उच्छेद मायाहर द्वारा तथा दसवें का उच्छेद ब्रह्मास्त्र द्वारा दिखाया गया है।[5] रामायण के अनुसार राम वन गमन के समय भरत नन्दिग्राम में रहे[6] जबकि नाटक के अनुसार वे अयोध्या में ही रहे। राम के साथ चलने का उन्होंने आग्रह भी किया था।[7]

परिवर्तन का उद्देश्य : राजशेखर ने कई प्रसंगों में अपनी मौलिकता सकारण प्रदर्शित की है। यथा—सीता-स्वयम्वर प्रसंग में रावण की विद्यमानता इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि सीता-हरण का मूल कारण केवल राम के प्रति रावण की विद्वेष-भावना ही नहीं है अपितु उसके मन में सीता के प्रति अनुराग है। इससे रावण के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। यही घटना बालरामायण का मुख्य वर्ण्य विषय है। नाटककार का लक्ष्य रामविवाह का वर्णन नहीं है। राम-विवाह में वे धनुभंग प्रसंग को मुख्य स्थान देते हैं। अतः इस समय दशरथ के वहाँ होने या न होने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए उन्होंने विवाह के समय दशरथ की अनुपस्थिति बतलायी है। यही भावना विश्वामित्र की उपस्थिति के विषय में भी उचित प्रतीत होती है।

राजशेखर ने ताड़का, मारीच एवं सुबाहु-वध के प्रसंगों में रामायण की कथा का अनुसरण न करके जो काल-भेद दिखाया है वह इसलिए कि अभिनेयता की दृष्टि से इन प्रसंगों का महत्व गौण था। हाँ, इस दिशा में नाटककार से अवश्य ही थोड़ा प्रमाद हो गया है।

राम के देवत्व की अपेक्षा उनके श्रेष्ठ मनुष्यत्व की प्रतीति के लिए नाटककार ने परशुराम-राम के संघर्ष का आयोजन किया और एक को विजयी घोषित किया। यंत्र-जानकी का आयोजन नाटकीय आकर्षण की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है।

---

१. बालरामायण ८-२०
२. वाल्मीकि रामायण ६-६०-६८-८८-९२
३. बालरामायण ७-४०
४. वाल्मीकि रामायण ६-१०२-४-६-८
५. बालरामायण ९-४९-५०-५४-५५
६. वाल्मीकि रामायण २-७१
७. वही—बालरामायण ६-३३-३४

राजशेखर ने नाटक के आरम्भ में ही रामायणीय कथा में विशिष्टता प्रदर्शित करने का संकल्प किया। उस संकल्प की पूर्णता इन परिवर्तित दृश्यों में दृष्टिगत होती है।

पूर्ववर्ती साहित्यकारों का प्रभाव : यह नितान्त सत्य है कि साहित्यकार अपनी रचना में मौलिकता की सृष्टि करता है तथापि पूर्ववर्ती साहित्य एवं समकालीन वातवारण के प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। नाटककार दृश्य काव्य का सृजन करता है। उसका काव्य दर्शकों की विवेकशीलता से ही मंडित या खण्डित होता है। कतिपय साहित्यकार परीक्षकों (दर्शकों) के समक्ष स्वयं ही वस्तुस्थिति का उद्बोधन कर देते हैं। राजशेखर का भी इसी तरह का प्रयास निम्न पंक्तियों में प्रतिफलित हो रहा है।

ब्रह्मभ्य: शिवमस्तु वस्तु विततं किञ्चिद् वयं ब्रूमहे,
हे सन्तः शृणुतावधत्त विधृतो युष्मासु सेवाञ्जलिः।
सत्यं किं विनयोक्तिभिर्मम गिरां यद्यस्ति सूक्तामृतं
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्या परं दैन्यभूः।[1]

उनकी "वभूव वाल्मीकभवः पुरा कविः स्थितः पुनर्यो भवभूति-रेखया"—पंक्तियाँ पूर्ववर्ती साहित्यकारों के प्रभावातिशय की द्योतक हैं। इन दो साहित्यकारों के अतिरिक्त अपनी प्रतिभा से राजशेखर को प्रभावित करने वालों में कवि कुल गुरु कालिदास विशेष स्मरणीय हैं। भवभूति की रामकाव्य से संवन्धित कृति उत्तर-रामचरित है। इसमें राम के जीवन का उत्तरार्द्ध वर्णित है। यद्यपि बालरामायण में राम के जीवन का पूर्व पक्ष चित्रित है, तथापि जहाँ कहीं भी राजशेखर को उत्कृष्ट भावाभिव्यक्ति का अवसर मिला उन्होंने उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लिया। ऐसे साम्यस्थल अनेक हैं। उदाहरणार्थ उत्तररामचरित में राम के पुत्र लव की राम के प्रति भर्त्सना-पूर्ण उक्ति—

१— वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते।
सुन्दरस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते॥
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन् खरायोधने।
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः।[2]

और वालरामायण में रावण के पुत्र सिंहनाद की राम के प्रति व्यङ्ग्योक्ति—

१. वालरामायण १-१०
२. उत्तररामचरित ५:३५

स्त्रीमात्रं ननु ताडका भृगुभवो रामश्च विप्रः शुचि
र्मारीचो मृग एष भीतिभवनं वाली पुनर्वानरः।
भा काकुत्स्थ। विकत्थसे कथय किं वीरो जितः कस्त्वया
दोर्दर्पस्तु तथापि ते यदि ततः कोदण्डमारोपय।[1]

इन दोनों में उल्लेखनीय भाव-सादृश्य है।

राजशेखर राम के विषय में कहते हैं—

त्वया तु क्षीरकण्ठेन वनवासो निषेव्यते।[2]

भवभूति ने भी इसी प्रकार के उद्‌गार प्रकट किये थे—

धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यक-व्रतम्।[3]

बालरामायण में रावण के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग सुनकर सिंहनाद करता है:

रे रे क्षत्रिय तातमधिक्षिपसि, तदेष शितमुखैः शिलीमुखैरवकीर्यसे[4]
उत्तररामचरित में राम की निन्दा सुनकर चन्द्रकेतु क्रोधसंतप्त होकर कहता है
आःतातापवादिन्। भिन्नमर्याद। अति हि नाम प्रगल्भसे।[5]

भवभूति सत्संगति की महिमा का गान करते हैं—

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।[6]

इसी भाव की अभिव्यक्ति राजशेखर ने निम्न शब्दों में की है—

समप्रेमरसं समरूपयौवनं समविलासविशिष्टम्।
समसुखदुःखं च जनं समपुण्यैर्जनो लभते।[7]

ऋषियों के प्रति भवभूति की उक्ति—

नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि[8]

राजशेखर के वचनों को प्रभावित करती है। वे कहते हैं

---

१. बालरामायण ७:८८
२. उत्तररामचरित १-२२
३. वही—१-२५
४. बालरामायण ७:८०:८१
५. उत्तररामचरित ६:३४:३५
६. उत्तररामचरित २-१
७. बालरामायण २-१२
८. उत्तररामचरितः १-२५

यद्वाचंयमवृत्तयः किमपरं नीवारमुष्टिम्पचाः ।[1]

राम के शोक से पत्थर भी आँसू बहाते हैं—

भवभूति—अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।[2]

राजशेखर-ग्रावग्रन्थीनां परं यदि न दलति हृदयम् ।[3]

भवभूति के इसी भाव का ग्रहण राजशेखर की उपरि पंक्तियों में दिखायी देता है—

राजशेखर ने भवभूति के समान कालिदास के ग्रन्थों से भी भाव ग्रहण किया है। इस दृष्टि से रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल, एवं विक्रमोर्वशीय उल्लेखनीय है। सीता-स्वयंवर की कल्पना का आधार रघुवंश-वर्णित इन्दुमती स्वयंवर है। विरही रावण के उन्मत्त प्रलाप क्षण भर के लिए विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा एवं मालती-माधव के माधव का स्मरण दिलाते हैं जो उर्वशी एवं मालती के विरह में पशु पक्षियों से प्रिया का पता पूछने लगते हैं।

सीता की विदाई के प्रसंग में जनक उसे गार्हस्थ्य धर्म का उपदेश देते हैं। शकुन्तला को विदा करते समय यह कार्य कण्व मुनि ने किया था। दोनों के उपदेशों में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है।

कालिदास— शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी-वृतिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।।[4]

राजशेखर— अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम् ।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतौ जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि । निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा अमी ।।

निर्व्याजा दयिते, ननान्दृषु नता, श्वश्रूषु भक्ता भव ।
स्निग्धा वन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि ।।
पत्युर्मित्रजने सनर्मवचना, खिन्ना च तद्द्वेषिषु
स्त्रीणां संवननं नतभ्रु । तदिदं श्रेष्ठौषधं भर्तृषु ।।[4]

---

१. वालरामायण १०-९२
२. उत्तररामचरित १-२८
६. अभिज्ञान शाकुन्तल ४:१८
४. वालरामायण ४:४३:४४

यों इन दोनों का ही मूलस्रोत वात्स्यायन का काम सूत्र है। राजशेखर के वालरामायण पर महावीरचरित का भी प्रभाव लक्षित होता है। दोनों के कथानक में पर्याप्त साम्य है। भवभूति ने सीता स्वयंवर से राज्याभिषेक तक की घटनाओं को नाट्य-रूप में स्वीकृत किया है। राजशेखर ने इन्हीं प्रसंगों को अपने नाटक में मान्यता दी है। इस नाटक में कथानक के साम्य के अतिरिक्त भाव-साम्य एवं शब्द-साम्य के अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जिनका संकलन एक लघुपुस्तिका का रूप ग्रहण कर सकता है। नीचे निदर्शनमात्र प्रस्तुत किया जा रहा है :

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
१—वीराद्भुतप्रायरसे प्रधाने १-२	१—वीराद्भुतप्रियतया १-६
२—वालरामायणम् नाटयितव्यम् १-५।६	२—महावीरचरितं प्रयोक्तव्यम् १—३।४
३—उक्तं तेन महामन्त्रिपुत्रेण १-८।८३	३—उक्तं च तेन श्रोत्रियपुत्रेण १-६।७
४—तदामुष्यायणस्य १-१३।१४	४—तदामुष्यायणस्य १—४।५
५—अथास्य शिष्यःकिल याज्ञवल्क्य स्तस्यापि राजा जनकः स योगी १-२१	५—याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ। १-१४
६—अनमात्यायतसिद्धेर्धिङ् मन्त्रित्वम्। १-२४।२५	६—साचिव्यंनाम महते सन्तापाय ६-२।३
७—स्वेच्छया कुरुतेस्वामी यत्किंचन यतस्ततः। तत्तत् प्रतिचिकीर्षन्तो दुःखं जीवन्ति मन्त्रिणः। १।२५	७—यत्किंचित्दुर्मदाः स्वैरमाद्रियन्ते निरर्गलम् तत्र तत्र प्रतिकारश्चिन्त्यो साधु विधावपि। ६।३
८—यस्य भगवतस्त्रैशङ्कवं शौनः शेपं रम्भास्तम्भनं १।१०।११	८—मेनकाकामुकस्य, त्रिशङ्कुयाजिनः क्षत्रियब्राह्मणस्य—— १-२५।२६
९—निषेद्धा विन्ध्यस्य वैखानस वृषा १-२८	९—तदस्मिन्—— ——वताम् १-११ तथा——अयं विषयः ७-१४
१०—क्वनुपुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः १।३६	१०—अम्भो न वसन्त्येकत्र सर्वे गुणाः १।३३
११—स्फूर्जद्वज्राहत १।४१	११—स्फूर्जद्वज्रसहस्त्र १-५३
१२—कैलासमुद्धृतवतः १।४४ तथा——कैलासोद्धारधीरम् १।४७ एकः कैलासमद्रिं करतलमकरोत् २।१५	१२—कैलासोद्धारसाद २-१६
१३—अस्मद्दोर्दण्डचण्डाञ्चन १।४६	१३—दोर्दण्डाञ्चितम् १।५४
१४—पृथ्वि स्थिरा भव १।४८	१४—यावत्फणीन्द्रशिरसि ७।२६
१५—वहति भुवनश्रेणींशेषःफणाफलकस्थितां ७-४०	१५—यावत्फणीन्द्रशिरसि ७।२६

बालरामायणम्		महावीरचरितम्	
१६–माहेश्वर	१-५१।५२	१६–माहेश्वर	१।९।१०
१७–तेनाभ्युत्सहते ममैष युगपच्चापाय शापाय च	१।५२	१७–प्राक्संस्कारवशेन चापमितरः पाणिर्ममान्विष्यति	३।४३
१८–हस्तालम्बितमक्षसूत्रलयम्	१।५३	१८–पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयम	१।१८
१९–ब्रह्मैकतानहृदया	१।५६	१९–ब्रह्मैकतान मनसो	३।११
२०–जनकविरम कोपात्	१।५७	२०–विरम नरपते कथम्	३।३०
(२)			
१–इत्यपरमप्यपरिमेयं चित्रं चरित्रजात माचक्षते	२-३।४	१–इत्यपरिमेयमाश्चर्यजातमाख्या -नविद आचक्षते	१-१०।११
२–त्रिःसप्तावधि बाधिता	२।१३	२–त्रिःसप्तवारानविकल	२-१७
एकविंशतिमिदं वारान्—		त्रिःसप्तावधि—	३।१३
एष त्रिः सप्तकृत्वः	४।३९	एकविंशत्यवधि	२।४८
३–चिच्छिदे क्रौञ्चमन्यो	२।१५	३–क्रौञ्चस्य मैक्षत	२।१७
४–तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा	२।१५	४–मुखं यदि किमिन्दुना । सा दृष्टिर्यदि हारितं कुवलयैः	२।१७
यदि चलाञ्चले लोचने किमुत्पल कदम्वकम्	६।९		
५–पौलस्त्यःप्रणयेन याचत इति	२।२०	५–पौलस्त्यो विनयेन याचत इति	१।५९
६–काश्यपाय ऋतुविधिगुरवे दक्षिणीकृत्य पृथ्वीं—	२।२३	६–काश्यपाय मुनये दत्वाश्वमेधे महीम्	२।१९
दत्वा पृथ्वीं जलधिरशानामर्थिने ब्राह्मणाय	४।४१		
भूतधात्र्या ऋतुषु गुणवते काश्यपाय प्रदाता	४।३९		
७–कन्दर्पकण्डूलभुजदण्डमडलम्	२।२४।२५	७–दर्पकण्डूलदोष्ण	२।२७
८–कार्तिकेयो विजेयः		८–कार्तिकेयोवजेयः	२।१९
९–संक्रन्दननन्दनः	२।४८	९–संक्रन्दननन्दन	५।३९
१०–लोकोत्तरं चरितमर्पयति	२।५१	१०–लोकोत्तरकर्माणि	५।२३
		लोकोत्तराणि रामस्य कर्माणि	५।२३
११–त्वां–स्थितः	२।४८	११–कैलासे तुलिते	५।३७
१२–जे कैलासे कलिन्दे—	७।११	१२–भृगुप्रसवात्पराजय	३।३७।३८
मानुषेण रावणपराजय	२-३८।३९		
१३–विद्युत्पुञ्जरित दृष्टि	१।४४।४५	१३–विद्युत्पुञ्जपिञ्जर—नयने	२।५८।५९
१४–कालानिरुद्रातिथिः	२।६२	१४–कालरुद्रानलत्वं	२।२५
१५–पुत्रभाण्डम्	२।६३	१५–पुत्रभाण्डम्	२।४४, २।२, २।६०-६१

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
(३)	
१—भगवान् विश्वस्य मित्रं विश्वामित्रः ३।२।३	१—विश्वामित्रात्प्राप्य विश्वस्य मित्रात् १।५०
२—स्त्रीवध विचिकित्सामुद्रः ३।३।४ स्त्रीति किं विचिकित्ससे	२—प्रमाथाय स्त्रैणेन विचिकित्सति ३।३७
३—साकं लेभे जृम्भकास्त्रैः समन्त्रे ३।७	३—सरहस्य जृम्भक प्रयोगसंहार १।४७
४—नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन ३।२७	४—आरोपणेन पणप्रतिकार्यमार्यं त्रैयम्बकस्य धनुषे १।२७
५—ओङ्कारः ३।७९	५—एष तावदोङ्कारः १।४०।४१
(४)	
१—दोर्दण्डाद्वितयाञ्चितोन्नतधनुः ४।२०	१—दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुः १।५४
२—इष्टापूर्तपवित्रमाश्रमपदं ४।३४	२—इष्टापूर्तं विधेः ४।३४
३—महावीरचरितावलोकनपरायते चिते नकिंचित्प्रतिभाति ४।४१।४२	३—वस्तुकिंचित्प्रतिभाति ५।३४।३५ महावीरे सौत्कण्ठमिव मानसम् ५।३६
४—सज्जातिथेयो भव। भार्गवोऽ तिथि भवति— ४।५१।५२	४—त्वं नःपूज्यतमोऽतिथिर्यदि भवेः सज्जातिथेया वयं २।५०
५—द्वाविंशोऽपि ममैष ४।५३	५—पुनर्द्वाविंशोऽपि ३।४१
६—लूनक्षत्रियकण्ठमण्डलगलत्की ४।५८ लालकुल्याभृतः	६—कृत्तक्षत्रियकण्ठकंदरसरत्की लालनिर्वापित ३।४८
७—भोः विदेहेश्वरशुद्धान्त चारिणः ४।५७	७—भोः विदेहनगरीगता राजकुल चारिणः २।१५।१६
८—विधायधरणीवन्धमराममपलक्षमणम् ४।८३	८—अरामां जानिःसीरध्वमदशरथी कृत्यजगतीम् ३।२४
९—किं वीरस्य विकत्थनया ४।८४	९—तत्र का विकत्थना २।४८।४९
(५)	
१—माल्यवान् उन्मुच्यवाचयति ५।३।४ 'स्वस्ति'	१—माल्यवान् गृहीत्वा वाचयति 'स्वस्ति' २।९।१०
२—भुव्यद्दोर्दण्ड ५।७९	२—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ३।३२ तुण्डप्रोतशिरः ५।१९
(६)	
१—वृद्धो दशरथः सोऽयमुपास्ते गृहमेधिताम्। त्वया तु क्षीर कण्ठेन वनवासो निषेव्यते ६।३०	१—पुत्रसंक्रान्त लक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकु भिर्घृतम् त्वया तत्क्षीरकण्ठेन प्राप्तमारण्यक व्रतम् ४।५१
२—एषोऽहम् ६।५६	२—एषोऽस्मि ५।१५
(७)	
१—ज्यावद्धं—कार्तवीर्यार्जुनः ७।५	१—हैहयमतिः ४।१९
२—लंङ्घितो गोष्पदवत् समुद्रः ७।१८।१९	२—गोष्पदवद्विलङ्घ्य ६।१७

बालरामायणम्		महावीरचरितम्	
३–धूम्रो विजृम्भण०	७।२२	३–ज्याजिह्वया	३।२९
४–वारां मध्याद्	७।३४	४–ततश्च—उपविष्ट:	६।१२।१३
(८)			
१–लंका दुर्गो जलधिपरिखा	८।५	१–दुर्गो यं चित्रकूट	६।७
२–सलिले शिलाभिरुन्तीर्यतेऽलाबूभिर्वा निमज्जयते ।	८।३१।३२	२–अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि ग्रावाण: प्लवन्ते	१।३९।४०
(९)			
१–तदित्थमभिदधानमपवित्रं वक्त्रम्	९।४६।४७	१–यत्किंश्चद्वादिनो मुखं सस्कुर्यात	६।२१।२२
२–यत्पौलस्त्यगृहोषिता	१०।८	२–दशकन्धरगृहनिवास	७।३।४
३–पतिव्रतामयं ज्योति:	१०।८।९	३–पतिव्रताभयंज्योति पतिव्रतामयं ज्योति:.	७।३।४ ६-६
४–निसर्गत: पवित्रस्य किमन्यत्पावनंतव	४।२७	४–शुद्धाया: क इवात्र शोधनविधि:	१०।१३
५–युद्धं कचाकचि तलातलि च प्रवृत्तम्	१०।१९	५–मुष्टामुष्टि कचाकचि	६।३१
६–एतत्सुन्दरि देवदारुविपिनं	१०।३१	६–एष ते सुरसिन्धु:	७।२७
७–एह्येहि वत्स रघुनन्दन रामभद्र चुम्बामि तेऽद्यवदनम्	१०।६५	७–एह्येहि वत्स रघुनन्दन रामचन्द्र चुम्बामि तेऽद्यवदनम्	१।६५
८–श्रोत्रपथावतारिणि	१०।७८	८–यत्रालोकपथावतारिणी	२।४५
९–भरत-शत्रुघ्नाभ्यांतिष्ठति	१०।९५।९६	९–भ्रान्तप्रकृतिसहितोऽभ्येति भरत: ।	७।३०

अभिज्ञान शाकुन्तल, उत्तररामचरित एवं महावीरचरित आदि दृश्य काव्यों से अनेक भाव ग्रहण करने पर भी वालरामायण में कवि की मौलिक प्रतिभा अप्रतिहत ही प्रतीत होती है। वालरामायण के पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय धरातल पर चलते हैं। वे जन मानस के समीप प्रतीत होते हैं। इसीलिए ६७ पात्रों से युक्त यह नाटक पात्रों का जंगल प्रतीत नहीं होता।

बालरामायण का कथावस्तु

संविधान-शिल्प शिल्प की दृष्टि से इस नाटक में एक न्यूनता दिखाई देती है और वह है—नाटक का अत्यधिक विस्तार। इससे वस्तु-निर्माण में शैथिल्य आ गया है। अनावश्यक विस्तार के कारण नाटक में गति का अभाव लक्षित होता है। प्राय: प्रत्येक अंक में ऐसे गति-प्रवाह-हीन स्थल पाये जाते

हैं। किन्तु दूसरा दृष्टिकोण इस न्यूनता को गुण की संज्ञा भी प्रदान कर सकता है। नाटक श्रव्यकाव्य भी है। उसमें प्रगीतात्मक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। इससे रंगमंच की अपेक्षित सजावट की कमी की पूर्ति तो होती ही है साहित्यकार को साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन का सुन्दर अवसर भी मिलता है। अतः हमारे काव्य नायक ने षड्ऋतु-चक्रवाल, सायंकाल, मध्याह्न, सूर्योदय एवं सूर्यास्त का सरस वर्णन साहित्यिक सृजनात्मकता से अनुप्रेरित होकर किया है।

राजशेखर की वस्तुविन्यास-कला उनकी निजी विशेषता से युक्त है। असंवद्ध प्रतीत होने वाली घटनायें आधिकारिक कथा की परिपोषक हैं। प्रथम अंक में शुनःशेप एवं तापस का संवाद, द्वितीय अंक में भृंगिरिटि एवं नारद का कथोपकथन, तृतीय अंक में गृध्रमिथुन-वार्तालाप, चतुर्थ में गुरु-शिष्य (भवभूति) वार्ता, नवम में यम का मृत्युलेखा-वर्णन, एवं दशम में अलका एवं लंका की समवेदनाभिव्यक्ति मूलकथा की परिपोषक प्रमाणित होती है।

कथा : नाटक में दो प्रकार की कथा होती है। आधिकारिक एवं प्रासंगिक। बालरामायण में आधिकारिक कथा रावणवध से संवद्ध है। प्रासंगिक अथवा गौण रूप में तीन छोटी वड़ी सहायक उपकथायें निवद्ध हुई हैं। इसमें शुनःशेप राक्षस-संवाद गृध्रमिथुन एवं गुरु-शिष्य संवाद तथा सीतास्वयंवर संवाद को प्रकरी कहा जा सकता है। ये कथायें आधिकारिक कथावस्तु के विकास में सहायक हुई है। अतः जिस अंक में ये प्रदर्शित की गयी हैं उसी अंक के पश्चात् ये सदा के लिए तिरोहित कर दी गयी हैं। सुग्रीव और विभीषण का कथा-प्रसंग "पताका" कहा जा सकता है। क्योंकि कथायें प्रधान वृत्त के साथ दूर तक (सेतुबन्ध से रामराज्याभिषेक तक) समानान्तररूप से चल रही हैं।

प्रासंगिक वृत्तों में शुनः शेप और तापस संवाद को नाटक से हटा दिया जाय तो दर्शकों को रावण की तीव्र उत्कंठा और सीतास्वयंवर में सम्मिलित होने की उसकी अभिलाषा का पता नहीं चल सकता। यह कथा खलनायक की पृष्ठभूमि को ठीक तरह से समझने के लिए सहायक है। दूसरे अंक में भृंगिरिटि और नारद का वार्तालाप राम रावण के भावी युद्ध के कारण पर प्रकाश डालता है अन्यथा दोनों के युद्ध का रहस्य प्रकट नहीं हो पाता। गृध्रमिथुन, सुवेग एवं चित्रशिखण्ड के वृत्त प्रासंगिक होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसमें खलनायक के मानसिक संघर्ष की पृष्ठभूमि का पता चलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस नाटक की सम्पूर्ण प्रासंगिक कथा में आधिकारिक वस्तु का निर्दोष गुंफन है।

इस नाटक के प्रथम अंक में जनकमंदिर में तिरस्कृत रावण संकल्प करता है—

ससंरम्भम्—शृणुत भोः! शृणुत! निशाचरपतेः प्रतिज्ञाम्
कुर्वन् मौर्वीनिवेश-क्रम-नमदटननि-स्पष्ट-टङ्कारटङ्कं,
शम्भोः कोदण्डदण्डं वधिरितभुवनं मूर्भूवःस्वस्त्रयोऽपि ।
यस्तामेनां वरीता रसयति तदसृक् चन्द्रहासो ममासिः
कण्ठास्थि-ग्रन्थिशुक्लीकरण-भवरणत्कार-वाचालधारः ॥

राक्षसराज की इस प्रतिज्ञा में नाटक का वीज वर्तमान है। "यस्तामेनां वरीता रसयति तदसृक् चन्द्रहासो ममासिः"

जो सीता का वरण करेगा उसे चन्द्रहास (तलवार) का भी वरण करना होगा। इस कथन में ही नाटक के भावी संघर्ष एवं विपत्ति के संकेत गर्भित हैं।

द्वितीय अंक में रावण-परशुराम का वाक्युद्ध मूल कथा-प्रवाह को कहीं विच्छिन्न न करदे इसलिए सीतास्वयंबर नामक गर्भांक का आयोजन और उसमें रावण की क्रोधपूर्ण उक्ति कहलाई गई हैं। इस दृश्य-प्रधान कथा का पूर्ण विच्छेद नहीं होने पाता और कथानक पुनः सुगति धारण कर लेता है। इसे नाटकीय भाषा में विन्दु कहा जा सकता है। नाटक का मुख्य लक्ष्य खलनायक की मृत्यु द्वारा स्थायी शान्ति है। सीताहरण के कारण नायक और प्रतिनायक का मानसिक संघर्ष बढ़ जाता है। इस संघर्ष की परिणति राम रावण युद्ध में होती है। संघर्ष का अन्त रावण वध तथा राम-राज्याभिषेक के द्वारा होता है। यही उसका 'कार्य' समझना चाहिए।

इस नाटक के सातवें अंक में वैतालिक राम का यशोगान करते हैं। उसी समय प्रतीहार आकर उन्हें ऐसा करने से वर्जित करता हुआ कहता है—"कथम् ननु रामदेवेन निषद्धमात्मोपवर्णनम् अ दशरथस्वर्गारोहणश्रुते रादशकण्ठवधम्" इस कथन से कार्य की "आरम्भ" अवस्था होती है। इसी संदर्भ में "यत्न" की अवस्था भी प्रारम्भ हो जाता है। फल-प्राप्ति के लिए राम-रावण युद्ध का आयोजन तथा लंका में पहुँचने के लिए सेतुवन्ध का वर्णन कथा को इसी दिशा की ओर प्रवृत्त करता है क्योंकि यत्न में फलप्राप्ति के लिए सत्वर उद्योग लक्षित होता है। यत्न की अवस्था भी क्रमशः आठवें अंक तक चलती है। "प्राप्त्याशा" का प्रारम्भ भी इसी वीच होता है। सेतुनिर्माण के समय सीता के कटे मस्तक को देखकर राम शंका-कुशंकाओं से शोकाकुल हो जाते हैं। अपने प्रयासों पर खिन्न होते हुए उनका यह कहना है कि" धिक् निष्फलं हनुमतः प्लवनं तदव्धौ, धिक् निष्फलः स ममाचल-सेतुवन्धः" प्राप्त्याशा की चरम सीमा है।

इसी अंक में कटे हुए मस्तक के कृत्रिम होने का पता चलने पर राम-पक्ष में जो उल्लास उत्पन्न होता है--वह "नियताप्ति" का प्रारम्भ है। द्विगुणित उत्साह से सेना शत्रुपक्ष का विनाश करती हुई आगे बढ़ती है जहाँ राम दशकण्ठ का मस्तक काट देते हैं वहाँ 'नियताप्ति' 'फलागम' के निकट आ जाती है। सीता की प्राप्ति, राम-निर्वासन अवधि की समाप्ति तथा राज्याभिषेक के साथ 'फलागम' हो जाता है।

रावण की सीता के प्रति आमरण शत्रुत्व की भावना तथा राम के द्वारा रावण की मृत्यु तक अपने यशोगान पर पाबन्दी "मुख" सन्धि को सूचित करती है। रावण पक्ष में सीताहरण एवं रामपक्ष में सीता-प्राप्ति के यत्न के स्वरूप सेतु-निर्माण तक का कथा भाग' 'प्रतिमुख' सन्धि का निर्देश करता है। गर्भ-संधि का आरम्भ एवं निर्वाह राम-रावण के मानसिक संघर्ष द्वारा होता है। रावण द्वारा फेंके गए माया सीता के कटे सिर के कारण राम के मन में जो शोक उत्पन्न हो गया था वह सही तथ्य को जानकर प्रतिशोध की उत्कट भावना में बदल जाता है। अनवरत युद्ध और अंततः रावण वध 'अवमर्श' सन्धि को प्रकट करता है। सीता-प्राप्ति तथा रामाभिषेक में 'उपसंहृति' संधि की व्याप्ति लक्षित होती है।

विष्कम्भक : भूत और भावी अर्थों की सूचना देने वाला विष्कम्भक होता है। इसका विस्तार अंक की अपेक्षा कम होता है। इसके दो प्रकार हैं : प्रथम वह है जिसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं, जिसमें मध्यम प्रकृति के पात्र वृत्तवर्तिष्यमाण कथांश की सूचना देते हैं। मिश्र विष्कम्भक में नीचे और मध्यम प्रकृति के पात्रों द्वारा भूत और भावी अरंजक घटनायें सूचित की जा सकती हैं।

बालरामायण में शुद्ध तथा मिश्र दोनों प्रकार के विष्कम्भकों की योजना की गई है। प्रथम अंक में शुनः शेप तथा तापस के वार्तालाप से सीतास्वयंबर की तथा विश्वामित्र के राम एवं लक्ष्मण को लाने के लिए जाने की घटना का संकेत मिलता है। दोनों पात्र संस्कृतभाषी हैं। अतः शुद्ध विष्कम्भक के आयोजन से यह कार्य सफल होता है। द्वितीय अंक में राम (परशुराम) तथा रावण के युद्ध की सूचना नारद एवं भृङ्गिरिटि के संवाद से दी गयी है। दोनों संस्कृत का व्यवहार करते हैं। अतः यहाँ भी शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग उपलब्ध हैं। तृतीय अंक में मिश्र विष्कम्भक प्रस्तुत है क्योंकि सुवेग प्राकृतभाषी है। चतुर्थ अंक में उपाध्याय एवं शिष्य के संवाद में वटु प्राकृत भाषा के माध्यम से व्यवहार करता है। अतः पुनः मिश्र विष्कम्भक की आवृत्ति लक्षित होती है। प्रथम अंक में शुद्ध विष्कम्भक का आविष्करण है। अतः मायामय और माल्यवान् का कथोपकथन संस्कृत में है। षष्ठ अंक में विष्कम्भक शब्द शुद्ध विष्कम्भक का द्योतक है। किन्तु इसमें शूर्पणखा स्त्रीपात्र होने के कारण

प्राकृत का अवलम्बन करती है। सातवें अंक में भावी घटना की सूचना प्रतीहारी एवं कर्पूरचण्ड के वक्तव्य से दी जाती है। यहाँ शुद्ध विष्कम्भक का आयोजन है। आठवें अंक में सुमुख एवं दुर्मुख में दुर्मुख की भाषा प्राकृत है। अतः यहाँ मिश्र-विष्कम्भक प्रयुक्त है। नवें अंक की घटनाओं को जोड़ने का कार्य चित्रगुप्त ने शुद्ध विष्कम्भक द्वारा किया है। दशमअंक के कथोपकथन में शुद्ध का प्रयोग है।

प्रत्येक अंक में विष्कम्भक का विधान सराहनीय प्रतीत नहीं होता क्योंकि जिस वस्तु का ज्ञान चक्षुष् द्वारा संभव है उसे श्रवण द्वारा सूचना मात्र के रूप में पाकर दर्शक संतुष्ट नहीं हो सकते।

कथानक के अभिनय प्रसंग में स्वगत, आकाश-भाषित एवं नेपथ्य का भी महत्व-पूर्ण स्थान है। राजशेखर के स्वगत भाषण पात्र की अवस्था को प्रकट करते हैं। सम्पूर्ण नाटक में पचास स्थल हैं जहाँ स्वगतोक्ति का प्रयोग किया गया है[1]। राजशेखर के शिल्प विधान की एक विशेषता नेपथ्य-योजना में है। सम्पूर्ण नाटक में सैंतीस[2] वार नेपथ्य का प्रयोग लक्षित होता है जो दर्शकों को निषेध्य दृश्यों से अवगत कराता है। सम्पूर्ण नाटक का आकर्षण उसमें दर्शित गर्भांक के प्रयोग में है। वालरामायण के तृतीय अंक में सीतास्वयंवर नामक नाटक के विधान को परवर्ती आचार्यों ने सौन्दर्यसाधक गुण माना है। उपर्युक्त विश्लेषण से प्रतीत होता है कि राजशेखर के रूपकों की कथावस्तु में प्रकृति, अवस्था, सन्धि का सुयोजन एवं विष्कम्भक, स्वगत, आकाश-भाषण एवं नेपथ्य का प्रयोग कुशलता-पूर्वक हुआ है। शास्त्रीय मानदण्ड पर सही उतरने वाले उक्त रूपक नाटककार के समर्थ शिल्प-विधान का परिचायक है।

बालभारत

राजशेखर के युग में एक विशेष राजनीतिक संक्रान्ति का आविर्भाव हुआ था। इसकी प्रतिच्छाया उनकी "बालभारत" नामक द्वयङ्कीय नाट्यकृति में दृष्टिगत होती है। इस अपूर्ण नाटक का कथानक दो राज-परिवारों —कौरव एवं पाण्डवों—

---

१. बालरामायण पृ० १३, १४, १५, २०, २२, २४, ११२, २१, ८३, २२, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ६२, ८०, १०३, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७३, ७४, ७५, ७५, ७६, ७७, ८३, १२१, १३६, १४४, १४४, २४४, २४८, १३२, १३९, १४४, २२०, २२९।

२. वालरामायण पृ० १९, २४, २७, २८ ५२, ५८, ५२, ५२, २८, ५९, ८४, ८८, १०४, १२५, १५१, १७८, १७८, १७९, १८०, १८०, १८२, १९२, १९९, २२१, २२५, २२६, २२७, २२८, २३३, २३४, २५२, २५३, २७४, २७९, २८३, २८४, २८५, २८६।

के कलह को लेकर चलता है। महाभारत पर आधारित होने पर भी कथानक नाटककार के समसामयिक युग की समस्या से संबन्धित प्रतीत होता है। स्थिति यह थी कि महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्र— महीपाल और भोज द्वितीय—में राज्यारोहण के लिए संघर्ष छिड़ गया। बालभारत की प्रस्तावना में[1] इस गृह-कलह का अप्रत्यक्ष संकेत है। वस्तुतः कौरव-पाण्डवों के व्याज से महेन्द्र-पाल के दोनों पुत्रों के बीच उत्पन्न द्वन्द्व की ओर ही बालभारत में संकेत किया गया है। फिर भी नाटक की अपूर्णता के कारण राजशेखर अपने अभिप्राय का पूरी तरह निर्वाह न कर पाये।

कथानक : इस नाटक के राधावेध नामक प्रथम अंक का प्रारम्भ नान्दी से होता है, जिसमें शिव की स्तुति है। तत्पश्चात् सूत्रधार "बालभारत" अथवा 'प्रचण्डपाण्डव' के विजय का परिचय देता है। यहीं नाटककार का परिचय भी प्राप्त होता है। प्रस्तावना के अन्तर्गत व्यास एवं वाल्मीकि के संवाद से नाटक की पूर्वकथा ज्ञात होती है। प्रमुख दृश्य में युधिष्ठिर भीमसेन आदि ब्राह्मण का वेश धारण कर स्वयंवर के मण्डप में उचित स्थान ग्रहण करते हैं। स्वयंवर मण्डप महर्षियों, ब्राह्मणों एवं राजाओं से भरा है। द्रौपदी स्वयंवरोचित सज्जा करके अपनी सखी के साथ सभामण्डप में आती है। उसके असामान्य सौन्दर्य से पाँचों पाण्डव अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं। सामान्य औपचारिकता के पश्चात् बन्दी घोषित करता है कि जो मत्स्यवेध करेगा, द्रौपदी उसी का वरण करेगी। दुःशासन, शकुनि, जयद्रथ, दुर्योधन, बलभद्र, कामपाल, वासुदेव, सात्यकि, शिशुपाल और जरासन्ध प्रयत्न करने पर भी जब मत्स्यवेध में असमर्थ सिद्ध होते हैं तब एकाएक भीषण कोलाहल से वातावरण गूंज उठता है। ब्राह्मणों की मण्डली से एक युवक कार्मुक पर नजर गड़ाये हुए आगे बढ़ता दिखाई देता है। वह चारों ओर गर्व से दृष्टिपात करता है और एक ही प्रयास में मत्स्यवेध करके सबको चकित कर देता है। द्रौपदी अत्यधिक प्रसन्न होती है किन्तु लक्ष्यवेधी के कुल और शील की जानकारी न होने के कारण मत्स्यवेध करने के पश्चात् भी द्रौपदी के वरण के संबन्ध में बन्दी चिन्तित हो उठता है। उपस्थित राजगण भी ईर्ष्या के कारण अर्जुन के मत्स्यवेध की सफलता पर शंका प्रकट करते हैं। उसे स्वयंवर के लिए अपात्र घोषित

---

१. बालभारत–१-८।९ "भवदनुचराः पञ्च भ्रातरो वयम् पञ्चभिर्नाम समर्थास्तदभिनये। किं पुनरस्माकं पितृव्यपुत्राः शतं सन्ति भरतपुत्राः। ते च तदभिनेतुमिच्छन्ति न च ते शक्नुवन्ति। तन्निमित्तं च महदस्माभिः सह वैरं वर्तते।"

करते हैं; किन्तु अर्जुन तर्ककुतर्कों की अवहेलना करते हुए, द्रौपदी को लेकर, राजवृन्दों को चेतावनी देते हुए निकल जाते हैं।

द्वितीय अंक में द्यूतप्रसंग वर्णित है। विदुर और चण्डातक के वार्तालाप से द्यूतक्रीड़ा की पृष्ठभूमि का पता चलता है। बात यह थी कि राजसूय यज्ञ के समय दुर्योधन विशाल-सम्पदा देखकर उसके लिए लालायित हो गया था। फिर द्रौपदी ने उसका उपहास भी किया था। अतः उसमें द्वेष एवं प्रतिशोध की भावना भड़क उठी थी। तब उसने द्यूत द्वारा पाण्डवों को पराजित करने का षड़यन्त्र रचा। धृतराष्ट्र के माध्यम से उसने युधिष्ठिर को द्यूतक्रीड़ा के लिये आमंत्रित किया। विनयशीलता के कारण अनिच्छा से ही युधिष्ठिर ने आमन्त्रण स्वीकार किया।

प्रमुख दृश्य में द्यूतक्रीड़ा का प्रदर्शन है। अपना कीमती हार पहली बार में हारने पर युधिष्ठिर क्रीड़ा से विमुख हो जाते हैं। परन्तु शकुनि "आहूतो न निवर्तेय द्यूताय च रणाय च" का स्मरण दिलाकर उन्हें खेलने के लिए विवश करता है। युधिष्ठिर इस क्रीड़ा में वारांगना, हाथी, रथ, घोड़े और राज्य को दाँव पर लगाकर खो देते हैं। अन्त में शकुनि के उकसाने पर अपने सहित चारों भाइयों और द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर हार जाते हैं। वे अंतिम दाँव में पूर्णतः पराजित होकर तेरह वर्ष के लिए अरण्यवास का वरण करते हैं। दुर्योधन की आज्ञा से, दुःशासन द्रौपदी को केश पकड़कर घसीटते हुए भरी सभा में लाता है, जहाँ कौरवों के साथ पाण्डव भी उपस्थित हैं। दुःशासन अभद्र वचनों से उसे अपमानित करता है और अन्त में उसे विवस्त्र करने का दुष्प्रयास भी। किन्तु खींचे हुए स्थान पर नूतन वस्त्र के आविर्भाव के कारण वह थक जाता है। द्रौपदी समस्त गुरुजनों से निर्णय की याचना करती है। उसका कथन है कि जब युधिष्ठिर ने स्वयं को दाँव पर लगा दिया और वे पराजित हो गए हैं, तो उन्हें उसे दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं था। उसकी याचना निष्फल हो जाती है। सारी सभा जड़-मूक दिखाई देती है। केवल विकर्ण द्रौपदी की दयनीय दशा से व्यथित होकर कौरव-पक्ष को त्याग देता है। द्रौपदी, दुर्योधन को शाप देती है तथा चेतावनी देती है कि भीम शीघ्र ही इस गर्हणीय कृत्य का भीषण प्रतिशोध लेंगे। भीम भी उत्तेजनापूर्ण शब्दों से सौ कौरवों को मारकर दुःशासन के रुधिर-पान तथा रुधिर-लिप्त हाथों से द्रौपदी की वेणी बाँधने का संकल्प करता है। इस पर शकुनि उन्हें बनगमन का आदेश देता है और अंक समाप्त हो जाता है।

कथानक का स्रोत : इस नाटक के प्रथम अंक में स्वयंबर तथा द्वितीय अंक में द्यूतक्रीड़ा एवं द्रौपदी-वस्त्रापहरण की कथा है। कथावस्तु का आधार व्यासप्रणीत

महाभारत है। द्रौपदी स्वयंवर की घटना आदिपर्व के पाँच अध्यायों में (१७६ से १८०) हैं। नाटक के प्रथम अंक में राधावेध का यही आधार है। द्वितीय अंक की प्रस्तावना का आधार द्यूतपर्व (अ० ४३ से ५२) में मिल जाता है। द्यूतक्रीड़ा भी महाभारत के द्यूतपर्व में ही है। द्रौपदी-वस्त्रापहरण की कथा अनुद्यूतपर्व में वर्णित है। इस प्रकार प्रथम अंक आदि पर्व तथा द्वितीय अंक सभा पर्व पर आधारित है।

बालभारत एवं महाभारत की कतिपय उक्तियों में अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक अध्ययन से हमें निम्न समतायें दृष्टिगोचर होती हैं—

महाभारत	बालभारत
१. न च विप्रेष्वधिकारो विद्यते करणं प्रति। स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रार्थना श्रुतिः। (१-१८०-८०)	१. रे रे! ब्राह्मण मुञ्च विप्लवमुं श्रुत्यर्थवीथीं स्मर। क्षत्रस्याघ ननु स्वयंवर विधावेकाधिकारः स्थितः (१-८२)
२. आहूतो न निवर्तेय (२-७-१३)	२. आहूतो न निवर्तेय कदाचित् (११-५२-१६)
३. एको भर्ता स्त्रियो देवैर्विहितः कुरुनन्दन। ह्ययं, अनेकवशत्वा वन्धकीर्ति विनिश्चिता। (२-६१-३५)	३. पञ्चानां या कलत्रम् (२-३७) हे द्रौपदि, त्वमसि कान्त पतिव्रतानां किं दुष्ट पञ्चपुरुषा वनिता-कलत्रम्
४. महद्धनुः कर्षति तालमात्रम् (२-८६)	४. उत्पाटितमहातालः (१-१८०-१८)
५. जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् या राजसूयावभृथे जलेन। महाक्रतौ मन्त्रपूतेन सिक्ताः (२-६०-२२: २३)	५. पूता या राजसूयावभृथपरिगमं मन्त्रपूतैः पयोभिः—केशेष्वाकृष्य माणाम् (२-३७)
६. सर्वे एवेन्द्रकल्पाः गुरुस्थेमानः गुरुदेव सर्वे। तेषामग्रे नोत्सहेस्थातुमेव।	६. कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरतः संचरिष्ये (२।३९-४०)
७. आकृष्यमाणे बसने द्रौपद्यास्तु विशाम्पते। तद्रूपमपरं वस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः २।६१।४१ यदा तु वाससां राशिः सभामध्ये समाचितः। ततो दुःशासनः श्रान्तो व्रीडितः समुपाविशत् (२।६१।४८)	७. यावडेकं द्रुपददुहितुः कृष्यते वस्त्रमस्यास्तत्स्थानेऽन्यद्भवति पिदधत्तावदङ्गं ततश्च। खिन्नं चतैन्मम करतलं वाससां चैष राशिस्तन्मन्येऽसौ त्रिभुवनमनोमोहिनीं वेत्ति विद्याम् (२-४०)
८. भव याज्ञसेनि एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा (२।६०।२७)	८. नन्वपनयाम्येकवस्त्रतां कोटवीकरणेन (२।३९।४०)
९. कृष्णा ममेवेत्यभिभाषमाणा नृपाग्रनेभ्यः सहसोपतस्थुः। (१-१७८-३	९. समन्ततः समुत्तरति वृन्दं नरेन्द्राणाम् कथंमहंपूर्विकया सर्व एव धनुरारोपयितुं संरभन्ते। १।३३

महाभारत और बालभारत :

बालभारत के नाटककार ने महाभारत के कथानक में निम्न परिवर्तन किये हैं :—

१—महाभारत में राजपुरोहित निमंत्रित अतिथियों का सत्कार और गुणगान करता है।[1] जबकि नाटक में धृष्टद्युम्न इस कार्य को सम्पन्न करता है।[2]

२—महाकाव्य में धृष्टद्युम्न सीमित शब्दों में अतिथियों के कुल शील का परिचय देता है। वही घोषणा भी करता है।[3] बालभारत में बन्दी यह कार्य बड़े विस्तार से सम्पन्न करता है।[4]

३—महाभारत में अर्जुन जब लक्ष्यवेध के लिए जाने लगते हैं तो कुछ राजागण उनका विरोध करते हैं। कुछ उसे धनुर्विद्या में अज्ञ समझते हैं किन्तु अर्जुन नम्रता से बाण ग्रहण करके एक क्षण में लक्ष्यवेध कर देता है। प्रसन्नता से देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं।[5] बालभारत में यह घटना परिष्कृत रूप में उपलब्ध है। अर्जुन गर्व से चारों दिशाओं में दृष्टि डालते हुए आगे बढ़ता है। उसकी चेष्टाओं से लगता है कि उसमें धनुष को चूर-चूर करने की क्षमता है। जैसे ही वह धनुष उठाता है, भीम धरा के विदीर्ण होने के भय से सम्हालते हैं। अर्जुन यशस्वी होते हैं।[6]

४—महाभारत में द्रौपदी के सौन्दर्य से पाण्डवों के कामग्रस्त होने का वर्णन है।[7] नाटक में वे केवल कामानुभव ही नहीं करते, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करते हैं।[8]

५—महाभारत में युधिष्ठिर द्यूत क्रीड़ा में अपनी सम्पत्ति हार जाने के पश्चात् क्रमश नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम को और फिर स्वयं को तथा अन्त में द्रौपदी को बाजी में लगाते हैं। लेकिन नाटक में वे सर्वप्रथम स्वयं को और फिर क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अन्त में द्रौपदी को दाँव पर लगाते हैं।

६—महाभारत में प्रत्येक राजा लक्ष्यवेध के प्रयास में विफल होने पर भूमि पर असहाय होकर गिर पड़ता है। बालभारत में दुःशासन चाप की ओर बढ़ता है,

---

१. महाभारतः आदिपर्वः १७६　　　२. बालभारत १।२५।२६
३. महाभारतः आदिपर्वः १७६-७७　　४ बालभारत १।३२-३४
५. महाभारत आदिपर्व १७८　　　६. बालभारत १।७५।७६।७८
७. महाभारत आदिपर्व १७८　　　८. बालभारत १।२७।२८।२९।३०।३१

किन्तु तीन चार पग चलने पर लज्जित होकर लौट आता है। कुछ नरेन्द्रगण चाप को स्पर्श करने से भी कतराते हैं और कुछ प्रयत्न तो करते हैं किन्तु असफल हो जाते हैं।

७—महाभारत में कर्ण को चापग्रहण किये देखकर द्रौपदी कहती है कि वह सूत से विवाह नहीं करेगी।[१] परन्तु राजशेखर के नाटक में इस घटना का उल्लेख नहीं है। वन्दी कर्ण की सफलता के प्रति आशंकित होकर द्रौपदी को आगे बढ़ने के लिए कहता है।[२]

८—महाभारत में उक्त पण को मत्स्यवेध[३] कहा है तो नाटक में राधावेध।[४]

९—महाकाव्य में, कृष्ण द्रौपदी के वस्त्रापहरण के समय उसकी सहायता करते हैं।[५] नाटक में कृष्ण के स्थान पर त्रिभुवन-मोहिनीविद्या उल्लेख है।

दो अंकों के पश्चात् नाटक अधूरा छूट जाता है। यदि वह पूरा हो पाता तो हमारे सम्मुख अनेक नवीन उद्भावनायें प्रकट हो पातीं।

विद्धशालभंजिका :

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : नवम शताब्दी के शक्तिशाली राष्ट्रकूट-वंश में गोविन्द चतुर्थ नामक एक कायर एवं विलासप्रिय शासक का नाम भी आता है। इस वंश की प्रतिष्ठा को कायम करने के लिए, मंत्रिपरिषद् ने उसे पदच्युत किया तथा उसके स्थान पर उसी वंश के उत्तराधिकारी अमोघवर्ष तृतीय को राज्यसत्ता थमा दी। अमोघवर्ष तृतीय का कलचुरि वंश से वैवाहिक संवन्ध था, क्योंकि उसकी पत्नी कन्दुकदेवी कलचुरितिलक युवराजदेव की पुत्री थी। इस दम्पति से उत्पन्न कृष्ण तृतीय ने इस संबन्ध की ओर दुर्लक्ष्य कर अपने नाना युवराजदेव पर आक्रमण किया, किन्तु स्वल्प पराजय के पश्चात् युवराजदेव ने पुनः अपनी शक्ति दृढ़ बना ली। उनकी यह विजयगाथा वर्षों तक त्रिपुरी के लोगों की जिह्वा पर बनी रही।

राजशेखर इस विजय महोत्सव के अवसर पर त्रिपुरी में ही थे। उनकी विद्ध-शालभंजिका नाटिका इसी प्रसंग में रंगभूमि पर अवतरित की गई थी। राज्य-परिषद् के सभ्यगणों ने जब अपने राजा को काव्य (दृश्य) नायक के रूप में देखा तो वे गद्गद् हो गये। युवराजदेव का मंत्री माकमिश्र स्वयं को भागुरायण की भूमिका

---

१. महाभारत आदि पर्व १७८
२. बालभारत १-३९
३. महाभारत आदिपर्व १७६
४. बालभारत १-२२।२३।३२।३७
५. सभापर्व ६१-४०

में उपस्थित पाकर निहाल हो गया। सारी परिषद् "खरचुलितिलको वर्तते चक्रवर्ती[1] इन शब्दों से गूँज उठी।

यह ऐतिहासिक घटना है जो विद्धशालभंजिका नाटिका के वस्तु-संविधान में संलग्न दिखाई दे रही है। नाटककार ने ऐतिहासिक कथावस्तु को शृंगार-प्रधान संविधान में इतनी कुशलता से गुम्फित किया है कि वस्तुतः विपरीत होने पर भी दोनों घटनाओं में तादात्म्य स्थापित करने के कारण वह अन्त तक आकर्षक बनी रह सकी है।

कथावस्तु : सम्राट् विद्याधरमल्ल के सामन्त चन्द्रवर्मा को पुत्रीरत्न की प्राप्ति तो हुई, किन्तु निष्पुत्र होने के कारण उसने दूतों से सम्राट् को पुत्रोत्पत्ति की सूचना भिजवा दी। सम्राट् विद्याधरमल्ल का मन्त्री भागुरायण अतिकुशल व्यक्ति था उसने उस पुत्री को पुत्रवेश में मँगवा लिया। पश्चात् एक विश्वस्त परिचारिका को अपने विश्वास में लेकर यह वतलाया कि यह पुत्री जिसका नाम मृगांकवर्मा है, मृगांकावली नामक स्त्री है। उसके साथ विवाह करने से युवराज चक्रवर्ती हो जायँगे। अतः वह सर्वप्रथम मृगांकावली की प्रिय सखी बने तथा राजा के इस कार्य को सफल वनाने में सहायता दे। विचक्षणा की स्वीकृति के पश्चात् भागुरायण ने उसे आदेश दिया कि वह मृगांकावली को भवन-भित्ति संचार-गृह में रखे जिससे राजा उसे स्वप्न में देख सके। मृगांकावली ने विचक्षणा के कथन पर विश्वास रखकर राजा के दर्शन होते ही उसे अपना कण्ठस्थित हार चढ़ाकर उसकी अर्चना की, जिससे अनुरूप पति मिले। विचक्षणा की सम्पत्ति से झूले पर राजा को अपने दर्शन दिये, केलिकैलास नामक वासगृह की स्फटिकमय दीवालों पर अपना चित्र चित्रित कराया। पश्चात् स्फटिक की दीवाल की आड़ में पुनः दर्शन दिये। अपने रूप से सर्वथा मिलती हुई शाल-भंजिका निर्मित करायी। रत्न.वली की चौकी पर कन्दुक क्रीड़ा की। अनेक विलासों का प्रदर्शन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर राजा उस पर पूर्ण रूप से आसक्त हो गया, तथा मंत्री भागुरायण का निन्यानवे प्रतिशत कार्य भी सफल हो गया।

इस नाटिका की कथावस्तु इस षडयन्त्र के आधार पर चार अंकों में बँधी हुई है।

प्रथम अंक का आरम्भ वड़ा ही भव्य है। स्वप्नदृष्ट नायिका का स्मरण करते हुए सुप्तोत्थित राजा विदूषक से कहता है "यदि उसका मुख है, तो चन्द्रमा की

१. विद्धशालभंजिका ४।२५

आवश्यकता नहीं है। उसके शरीर की कान्ति की तुलना में सुवर्ण निष्फल है। उसकी भौंहों के सामन कामदेव का धनुष तुच्छ है। अधिक क्या कहें ? इन अनावश्यक वस्तुओं का पुन-निर्माण करने से विधाता का सृष्टिक्रम व्यर्थ सा लगता है। विदूषक राजा की इस अपूर्व भोगावली से विस्मित हो जाता है। राजा पुनः नायिका का स्मरण करता है। दोनों गवाक्ष-द्वार से प्रमोदोद्यान में प्रविष्ट होते हैं। राजा को स्फटिक भित्ति की ओर से नायिका का आभास होता है। वह हिंडोले में झूलती हुई, चन्द्र की भ्रान्ति करती हुई दिखाई देती है। दोनों आगे बढ़ते हैं। स्फटिक की दीवालों में साकार नायिका को देखकर राजा अवाक् हो जाता है। वहीं शाल-भंजिका में उत्कीर्ण नायिका को देखकर वह अपना मोतियों का हार नायिका के गले में डाल देता है। शालभंजिका में लिखी पंक्ति "विधत्ते सोल्लेखं कतरदिह नाङ्गं तरुणिमा" पढ़ता है। उसी समय पुनः उसे नायिका की भ्रान्ति होती है, क्योंकि वह केलिकैलास के पीछे से अस्पष्ट पद-चिह्न छोड़ती हुई निकल जाती है। नेपथ्य में माध्यन्दिनी के सुखकर होने की कामना व्यक्त की जाती है और राजा तथा विदूषक दोनों संध्योपासना के लिए निकल पड़ते हैं।

दूसरे अंक में तरंगिका और कुरंगिका नामक दासियों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि राजा के मन में (राज्यपरिभ्रष्ट चण्डसेन की दुहिता) कुवलयमाला समाई हुई है। अतः सौत के आने की आशंका से रानी उसका विवाह मातुल-पुत्र मृगांकवर्मा से करना चाहती है, जिससे चन्द्रवर्मा की माता का स्नेह भी दर्शित होगा और रानी का लक्ष्य भी पूर्ण होगा। इसी प्रसंग में वह आर्य चारायण का डमरुक (वधू वेश में उपस्थित चेट) से अलीक विवाह कराना चाहती है। प्रमुख दृश्य में अलीक विवाह दिखाया जाता है। मिथ्या विवाह से कुपित होकर विदूषक निकल जाता है। पुनः नायिका को कंदुक क्रीड़ा में मग्न दिखाया जाता है। राजा और विदूषक उस नायिका का अनुसरण करते हैं। उन्हें श्लिष्ट तालपत्र मिलता है जिसमें यौवन का वर्णन है जो सभी अंगों में निखार पैदा करता है, किन्तु नेत्रों में एक विशेष प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है। नेपथ्य में मृगांकावली की सखी उसके परिपक्व प्रणय एवं विरहजन्य व्यथा का वर्णन करती है। राजा को उसकी उन्मादावस्था का बोध होता है। नेपथ्य में सायंकालीन सन्ध्या की सूचना दी जाती है।

तृतीय अंक में विचक्षणा एवं सुलक्षणा के वार्तालाप से मंत्री भागुरायण के रहस्य का उद्घाटन हो जाता है, तथा नायिका की बढ़ती हुई विरह वेदना का भी। इधर मिथ्या विवाह से अप्रसन्न चारायण देवी की धात्री की लड़की को छलना

चाहता है। अतः सायंकाल के समय विदूषक की सखी सुलक्षणा तरुण वन के घने अंधकार में मौलसिरी के वृक्ष के शिखर पर चढ़कर प्रमोदोद्यान के अन्दर आती हुई मेखला से सानुनासिक स्वर में कहती है "मेखले ! इसी वैशाख पूर्णिमा को शाप से तू मर जायेगी।" धात्री उस अशरीरिणी वाक् से भयभीत होकर जीवन प्राप्त करने का उपाय पूछती है। तब उसे वाणी सुनाई देती है कि यदि महती पूजा-अर्चना से गन्धर्व वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को प्रसन्न कर चरणों पर गिरती हुई वह जंघान्तर मार्ग से निकल जाय तो उसे जीवनदान मिलेगा। विदूषक पूर्वयोजित षड्यन्त्रानुसार मेखला को जीवन प्रदान करता है। जब रानी को पता चलता है कि मिथ्या विवाह से तिरस्कृत क्रुद्ध चारायण ने प्रतिशोध के लिए यह कपट-नाटक रचा था तो वह अत्यन्त दुःखी हो जाती है। नेपथ्य में चन्द्रोदय का सरस वर्णन किया जाता है। राजा की व्यथा चन्द्रमा को देखकर द्विगुणित हो जाती है। वह अपने मित्र के साथ कदलीकुंज में पहुँचता है। मृगांकावली और विलक्षणा भी उसी कुंज में प्रेम की दुर्दोली की दुर्भेद्यता का कथन करती हैं। राजा और विदूषक उसी स्थान में जाते हैं। राजा शीतोपचार की सामग्री से स्वयं को पुरस्कृत करता है। वहाँ उसे ताली-पत्र के संपुट में पत्र दिखाई देता है। दूसरी ओर प्रिय की विरहाग्नि से संतप्त नायिका की रोदनध्वनि सुनाई देती है। राजा आगे बढ़कर सुन्दरी से दृष्टिदान की याचना करता है। वह अपने कण्ठ से हार उतार कर नायिका के कण्ठ में डाल देता है। इसी समय नैपथ्य से सूचना मिलती है कि सिद्ध वैद्यों द्वारा दी गई औषधि से जिसमें सहस्त्रों पुष्प खिल गए हैं, ऐसे माधवीमंडप को देखने के लिए सखियों सहित रानी पधार रही है। सभी सेवकों को सावधान हो जाने का आदेश मिलता है नायिका अपनी सखी के साथ चली जाती है।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में सोती हुई बड़बड़ाने वाली ब्राह्मणी के आलाप (विदूषक की पत्नी) से जानकारी मिलती है कि रानी, मृगांकावली और कुवलयमाला दोनों का विवाह राजा से करवाना चाहती है। राजा ग्रीष्म में चित्रशाला के द्वार पर बैठकर नायिका का स्मरण करता दिखाई देता है। उसे कुरंगिका से महारानी का संदेश प्राप्त होता है कि वह विवाह के लिए सज्ज रहें। राजा और मृगांकावली विवाह सूत्र से बँधते हैं। उसी समय लाटाधिपति के पुत्रवान् होने की सुखदवार्ता मिलती है तथा यह सन्देश भी कि मृगांकावली का विवाह किसी उचित वर से कर दिया जाय क्योंकि दैवज्ञों ने उसे चक्रवर्ती गृहिणी होना बतलाया है। रानी कुवलयमाला का विवाह भी राजा से कर देती है। भागुरायण की दाहिनी आँख फड़कती है। उसी समय लेखहस्त प्रतिहारी का प्रवेश होता है। लेख से विदित

होता है कि 'नर्मदा नदी की लहरों से प्रतिध्वनित त्रिपुरी नगरी में केयूरवर्ष महाराज को पश्चिम में गंगाजी के उद्गम से लेकर पूर्व यें ताम्रपर्णी तक, पवित्र दक्षिण प्रदेश से पश्चिम समुद्र तक और शंकर जी की जटाओं से गिरी हुई गंग जी के द्वारा अभिनन्दित क्षीर सागर तक का चक्रवर्ती पद प्राप्त हो गया है।

ब्रह्मा विष्णु और महेश के स्तुतिपरक भरतवाक्य से नाटिका समाप्त होती है।

कथावस्तु की समीक्षा:—विद्याधरमल्ल तथा मृगांकावली की प्रणयकथा इस नाटिका की वस्तु है। उक्त कथा सम्पूर्ण न.टक में व्याप्त है और लक्ष्य-प्राप्ति भी इसी से सम्वद्ध है। आर्य चारायण का मिथ्याविवाह, तथा मेखला का जीवन-दान प्रासंगिक कथावस्तु है।

नाटककार ने सुसंगति के लिए नाट्य-शिल्प में विष्कम्भक एवं प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपकों का भी विधान किया है। प्रथम अंक के 'सुषिरस्तम्भसंचार' 'वासगृह की सूचना' विष्कम्भक द्वारा तथा द्वितीय अंक में 'तरंगिका' एवं 'कुरंगिका' के वार्तालाप में अलीक विवाह-प्रसंग का निर्देश, तृतीय अंक में मंत्री भागुरायण की षड्यन्त्र कथा का उद्घाटन तथा चतुर्थ अंक में मृगांकावली एवं कुवलयमाला के विवाहों की सूचना प्रवेशक द्वारा प्राप्त होती है। नायिका की विरहदशा, सूर्योदय एवं चन्द्रोदय का रंगमंच पर प्रदर्शन न हो सकने के कारण उन्हें नेपथ्य[1] से सूचित किया गया है। प्रसंगानुसार स्वगत[2], प्रकाश[3] एवं अपवारित[4] का भी विन्यास किया गया है। ये समस्त उपकरण नाटिका को अभिनेय बनाते हैं। नाटिका में कार्यवस्थाओं का भी प्रकाशन किया गया है। प्रथम अंक में नायिका के स्वप्न-दर्शन से राजा में अंकुरित प्रणय-भावना "आरम्भ" नामक कार्यावस्था को प्रगट करती है। इसी अंक में नायिका को पहले चित्र में, फिर शालभंजिका में विद्ध, तत्पश्चात् भित्तिगृह की ओट में देखकर राजा का औत्सुक्य उत्तरोत्तर बढ़ता है। द्वितीय अंक में नायिका की प्राप्ति के लिए आर्य चारायण की सहायता से किये गये राजा के सारे प्रयास 'यत्न' नामक कार्यावस्था को सुदृढ़ बनाते हैं। "प्राप्त्याशा" का संकेत तृतीय अंक के नायक-नायिका के मिलन-प्रसंग में दृष्टिगत होता है। चतुर्थ अंक में मृगांकावली सेनायक का विवाह एवं चक्रवर्ती पद

---

१. विद्धशालभंजिका पृष्ठ २, ५, ३१, ५०, ५१, ५३, ७३, ७४, ९०, ९१, ९७
२-३. वही पृष्ठ २४, ४३, ८९, ११०
४. वही पृष्ठ ११४, ११५

की प्राप्ति "नियताप्ति" एवं "फलागम" अवस्थाओं के मधुर संयोग की व्यंजना करती है।

उपरिर्वाणित आरम्भ नामक "कार्यावस्था" में ही 'वीज' तथा यत्नावस्था में 'बिन्दु' के समस्त लक्षण पाये जाते हैं। चारायण के अलीक-विवाह तथा मेखला के जीवन-दान की घटना में प्रकरी नामक अर्थप्रकृति दिखाई दे रही है। "फलागम" में ही कार्य की अभिव्यक्ति हो रही है।

'आरम्भ' तथा 'वीज' के सहयोग से 'मुख' एवं 'यत्न' और 'बिन्दु' से 'प्रतिमुख' "प्राप्त्याशा" एवं "प्रकरी" से 'गर्भ' तथा नियताप्ति और फलागम के कार्य से संयोग होने के कारण उपसंहृति इस संधि-चतुष्टय का सन्निवेश भी स्पष्ट लक्षित होता है।

विद्धशालभंजिका तथा अन्य नाटिकायें :

संस्कृत नाटक का सामान्य विषय प्रणय है। प्रणय को नाटिका में प्रमुख स्थान दिया गया है। इसमें विलासी राजगणों के प्रणय प्रसंगों को उद्घाटित करना ही नाटककार का लक्ष्य है। अतः अन्तःपुर में किसी नवयौवना के प्रणय चक्र में फँसे हुए नायक के विषय में प्रायः यह कहा जाता है कि इस युवती के साथ किया गया विवाह उस नायक को सम्राट् वना देगा। वस इसी आधार पर प्रणय-लीलायें चित्रित की जाती हैं। प्रणय को अग्रसर करने के लिए रति, ईर्ष्या, वियोग और पुनर्मिलन का विधान किया जाता है। अपने प्रेम प्रसंगों में राजा को दूत की भी आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ति विदूषक पात्र पूर्ण कर देता है। इस प्रकार राजा नायिका, विदूषक और राजा की स्वकीया नायिका (रानी), इन पात्रों के सहारे नाटिका की कथा रची जाती है। कालिदास के मालविकाग्निमित्र, हर्ष की रत्नावली और प्रियदर्शिका में इन्हीं पात्रों की तथा प्रसंगों की सृष्टि है। राजशेखर ने भी इसी पथ का अनुसरण किया है। इनका निर्देश 'समानताएँ' शीर्षक के अन्तर्गत तथा जहाँ राजशेखर ने अपनी प्रतिभा से विभिन्नता को प्रदर्शित किया है उसका उल्लेख "विभिन्नताएँ" शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

समानताएँ १—चक्रवर्ती पद की प्राप्ति के लिए नायक का नायिका के साथ विवाह प्रधान महिषी द्वारा संपन्न होता है। विद्धशालभंजिका में प्रधान देवी नायिका मृगांकावली का,[1] मालविकाग्निमित्र में महादेवी धारिणी मालविका

---

१. वि. शा. भा. ४।१-२

का[१], रत्नावली में वासवदत्ता सागरिका का[२] और प्रियदर्शिका में वावसदत्ता प्रियदर्शिका का विवाह नायक के[३] साथ इसलिए करवाती है कि वह चक्रवर्ती पद से गौरवान्वित हो जाय।

२—चारों नाटिकाओं की नायिकाएं राजुकलोत्पन्न है। विद्धशालभंजिका में नायिका मृगांकावली लाटप्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की एकमात्र पुत्री है[४] मालविका राजकुमारी है, भाई के वन्दी हो जाने पर उसे छिपाकर लाया गया है।[५] रत्नावली नाटिका की नायिका सागरिका सिंहलेश्वर नरेश की पुत्री है।[६] प्रियदर्शिका नरेश दृढ़वर्मा की पुत्री है। किन्तु नायिकाओं का यह रहस्य अन्त में ही उद्घटित होता है।

३—मालविकाग्निमित्र को अपवाद माना जाये तो शेष तीनों नाटिकायें चार अंकों की ही है।

४—चारों नाटिकाओं में विदूषक राजा का अभिन्नहृदय मित्र है। विदूषक की सहायता से राजा का प्रणय-व्यापार बाधाओं का अतिक्रमण करता हुआ सफलता की ओर बढ़ता है। नायिका से नायक का मिलन तथा अप्रत्यक्ष रूप में विवाह-प्रसंग विदूषक द्वारा ही सम्पन्न होता है।

विभिन्नताएँ इन समानताओं के अतिरिक्त कतिपय विभिन्नतायें नाटिका में स्पष्ट रूप से लक्षित होती हैं—जैसे विद्धशालभंजिका, रत्नावली एवं मालविकाग्निमित्र में नायिकाओं को भविष्य में योग्य पति मिलने की घोषणा मिलती है। किन्तु विद्ध-शालभंजिका में घोषणा करने वाला व्यक्ति अन्य तीन नाटिकाओं से भिन्न दिखाई देता है। लाटाधिपति का दूत विद्याधरमल्ल राजा की सभा में आकर मृगांकावलीके बिषय में कहता है "दैवज्ञोचित चक्रवर्ति गृहिणिभावा मृगांकावली—देया कस्य चिदिन्दुसुन्दरयशः पूतस्य पृथ्वीपतेः।"[७] इसके विषय में दैवज्ञों ने यह बताया है कि चक्रवर्ती की गृहिणी होगी।

---

१. मालविकानिमित्र-अज्जउत्तो दाणिं इमं पडिच्छदु। ५-१८-१९
२. रत्नावली—उज्जउत्त। एव्वं रअणावलिं पडिच्छ। चतुर्थ अंक १९-२०
३. प्रियदर्शिका—राजा हस्तं प्रसारयति, वासवदत्ता प्रियदर्शिकाहस्तमर्पयति। चतुर्थ अंक १०-११
४. विद्धशालभंजिका—लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतितिलकः तस्य पुत्री। अंक १ श्लोक ८
५. मालविकाग्निमित्र—दायादवशंगते भर्तृदारके माधवसेने तस्यामात्येनायुभूंढ़िमाऽस्मादृश ५।१२।१३
६. रत्नावली—परिजनमुज्झित्वा गूढमानीतैषा पंचम अंक ९।१०
७. विद्धशालभंजिका ४।२०

मालविकाग्निमित्र में यह घोषणा सिद्धादेश के द्वारा मिलती है "सिद्धादेशकेन साधुना मत्समक्षं समादिष्टा आसंवत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः सदृशभर्तृगामिनी भविष्यति।[1] परिव्राजिका मालविका का वृत्त बतलाती हुई कहती है कि सिद्धमहात्मा ने कहा था कि एक वर्ष तक दासी का जीवन विताने के बाद यह योग्य स्वामी प्राप्त कर सकेगी।

रत्नावली नाटिका में भी सिद्ध पुरुष भविष्य बतलाता है। यौगंधरायण :- "देव ! श्रूयतां येयं सिंहलेश्वरस्य दुहिता सा सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्यां पाणिग्रहणं करिष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति" । यौगंधरायण प्रस्तावना में ही स्पष्ट कहता है कि इस सिंहलदेश की राजकन्या के विषय में सिद्ध ने आशीर्वाद दिया था कि जो इसके साथ विवाह करेगा वह समग्र भूमण्डल का राजा होगा।

निष्कर्ष यह है कि मालविकाग्निमित्र और रत्नावली नाटिका में आशीर्वाद देने वाला या भविष्य कथन करने वाला पात्र भी सिद्ध पुरुष है। यह दोनों नाटिकाओं में समानता है। हाँ, विद्धशालभंजिका में दैवज्ञ मृगांकावली के भावी जीवनका स्पष्टीकरण करता है।

विभिन्नतायें : १. विद्धशालभंजिका और रत्नावली में नायिका के विषय में कहा गया है कि वे जिससे विवाह करेंगी वह राजा चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा या समस्त भूमण्डल का राजा होगा किन्तु मालविकाग्निमित्र में चक्रवर्ती पद या सम्राट का उल्लेख नहीं है। केवल नायिका की उचित वर-प्राप्ति का कथन है।

२. इन नाटिकाओं में दूसरी भिन्नता नायिका के प्रथम दर्शन के विषय में है। नायक विद्याधरमल्ल नायिका मृगांकावली को प्रथमतः स्वप्न में देखता है तथा आसक्त हो जाता है।[2]

मालविकाग्निमित्र[3] और रत्नावली[4] नाटिका में नायक अपनी नायिकाओं को

---

१. मालविकाग्निमित्रम् ५-१२।१३
२. सा क्वाऽपि स्वप्नविधौ दृष्टा वि० म० १—१५
३. स जनो देव्याः पार्श्वगते—मालविकाग्निमित्र अंक १—३—४।
४. लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव। रत्नावली २।७

प्रथमतः चित्र में आलिखित पाते हैं जिनके सौंदर्य से मुग्ध होकर उन्हें साक्षात् देखने के लिये उत्सुक हो जाते हैं ।

३. विद्धशालभंजिका में मेखला जीवन दान प्रसंग तृतीय अंक में आयोजित किया है । यह विदूषक की बुद्धिकुशलता का नमूना है । रानी के द्वारा सम्पन्न मिथ्या विवाह से अप्रसन्न चारायण[1] देवी की धात्री की लड़की से उस अवसर पर बदला लेता है ।

मालविकाग्निमित्र नाटिका में चतुर्थ अंक में नायक तथा नायिका समुद्रगृह में मिलते हैं । रानी इरावती को यह खबर मिलते ही वह अपनी सखी निपुणिका के साथ वहाँ पहुँचती है । समुद्र के द्वार पर सोये हुए विदूषक को लाठी से जगाती है । वह साँप साँप कहकर चिल्लाता है । यह सुनकर अन्तगृह से राजा विदूषक को बचाने के लिये निकल पड़ता है साथ ही राजा को रोकती हुई मालविका । दोनों को देखकर इरावती के क्रोध की सीमा टूट जाती है । राजा भी परेशान है। उसी समय पिंगल वानर अपने पिंजरे से निकलकर गेंद खेलती हुई वसुलक्ष्मी को भयभीत कर देता है। वह बेहोश हो जाती है । जब यह वार्ता रानी सुनती है। वह शीघ्र ही लौट आती है। अतः वानर-प्रसंग कथानक विकास में सहायक होता है।

रत्नावली नाटिका में सागरिका राजा के दर्शन के लिये अत्युत्सुक है किन्तु दर्शन न होने के कारण निराश होकर चित्रपटी पर राजा का चित्र तूलित करती है। उसकी सखी सुसंगता उस राजा के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र खींचती है । चित्र दर्शन से ही सागरिका अपना मनोविनोदन करती है । उसी समय समीपस्थ कुंज में राजा और विदूषक मनोरंजन करते हुए दिखाई देते हैं । सागरिका का राजा के प्रति अनुराग तथा उसे न पाकर जीवन त्याग का विचार जिसे वह सुसंगता के सामने शब्दों द्वारा प्रकट कर रही थी, पंजरस्थ सारिका सुनती है । उन्हीं आलापों को राजा के समक्ष दुहरा देती है राजा को सागरिका की विरहव्यथा की अनुभूति होती है । नाटिका में बीज तथा मूल कथा का आरंभ यहीं से हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्धशालभंजिका को गति मेखला-प्रसंग से मिलती है जबकि रत्नावली और मालविकाग्निमित्र में यही कार्य बन्दर के छूटने से सम्पन्न होता है ।

---

१. वि० भ० अलीअविवाहविडम्बिदो वकुद्धो चाराअणो दे पडिकि दिववसिदो-तृतीय अंक ।

४. रत्नावली और मालविकाग्निमित्र की नायिकायें सागरिका और मालवका जन्मतः राजकुमारी होते हुए भी नायक के अन्तःपुर में दासियों का जीवन व्यतीत करती हैं। विद्धशालभंजिका में स्थिति विपरीत है। इस नाटिका की नायिका मृगांकावली (पुत्र रूप में) पुत्र घोषित करके भिजवाई जाती है और नायक के प्रसाद में सम्मानपूर्वक रहती है। महादेवी के मन में इसके प्रति विशेष ईर्ष्याभाव नहीं है। जबकि अन्य दो नाटिकाओं में महादेवी नायिकाओं से सदा ही रुष्ट रहती हैं।

५. रत्नावली और मालविकाग्निमित्र नाटिकाओं के नायक नायिकाओं का विवाह राजनैतिक कारण से संबन्धित है। इसे कार्यान्वित करने में मंत्रियों का प्रमुख हाथ है। वे कार्य को सफल बनाने के लिये षड्यन्त्र की रचना करते हैं और सदा प्रयत्नशील रहते हैं। उनके कार्य की सफलता नायक नायिका के परिणय में होती है। विद्धशालभंजिका में राजनैतिक उलझन नहीं है। रानी मृगांकावली विषयक भविष्य घोषणा को सत्य करने के लिये तथा राजा को अनायास चक्रवर्ती बना देने की लालसा से स्वयं नायक नायिका को प्रणय सूत्र में बाँध देती है।

६. दोनों नाटिकाओं में नायिकाओं का परिचय उनके देश से आया हुआ सेवक देता है। भद्रदेवियाँ उन्हें दी गई यातनाओं का स्मरण करती हुई अतिदुःखित होती हैं तथा पुरस्कार रूप में नायिका को राजा के हाथ सौंप देती हैं। विद्धशालभंजिका में नाययिका मृगांकावली के देश से दूत आता है। वह पुत्रजन्म का शुभ समाचार देता हुआ मृगांकावली के लिये उचित वर की याचना करता है। राजा के लिये अतिरिक्त अन्य उचित वर न मिलने के कारण रानी मृगांकावली का विवाह राजा के साथ विधि-पूर्वक सम्पन्न होता है।

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि नाटककार ने हर्ष की रत्नावली एवं प्रियदर्शिका तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्र को समक्ष रखते हुए भी नाटिका को यथाशक्त मौलिकता प्रदान की है।

कर्पूरमंजरी सट्टक : राजशेखर ने कर्पूरमंजरी सट्टक एवं विद्धशालभंजिका नाटिका की गणना उपरूपकों में की है। यह निर्विवाद है कि सट्टक परम्परा की नींव राजशेखर ने ही डाली है। उनके पूर्व सट्टक शब्द 'साटक' या 'शाडिक' इस विकृत रूप में भरहुतके शिलालेख में अंकित है। राजशेखर ने ही इस शब्द को (अर्थ के साथ मञ्जुल सामञ्जस्य स्थापित कर) प्रथम बार रंगमंच पर अवतरित किया।

कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में स्थापक कहता है—"कथिदं जेव छइल्लेहिं—

"सो सट्टअो त्तिभणइ दूरं जो णाडिआइ अणुहरइ ।
किं उण पवेसविक्खम्भंकाइ केवलं ण दीसन्ति"[1]

विद्वानों का कथन है कि जिस प्रवन्ध में नाटिका का पूर्ण अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक की योजना न हो उसे सट्टक कहते हैं । उपर्युत उदाहरण में स्थापक द्वारा प्रयुक्त 'विद्वान्' शब्द हमारे मान्य कवि राजशेखर के लिये है । अतः स्पष्ट है कि सट्टक एक प्रकार की नाटिका है । नाटिका के संवन्ध में भरत-मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक प्रायः आचार्यों ने अपने अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं । इसमें धनंजय[2] और भरत[3] द्वारा वर्णित नाटिका के लक्षणों को ही विस्तारपूर्वक दिया है और साहित्यदर्पणकार ने पूर्वपरम्परा का अनुसरण करते हुए भरत एवं धनंजय के शब्दों को दोहरा दिया है । इसलिये नाटिका के विषय में 'दर्पणकार' का मत देना यहाँ पर्याप्त होगा । उनके अनुसार—

नाटिका कलृप्तवृता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥
स्यादन्तः पुरसम्वद्धा संगीत-व्यापृताथवा ।
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ॥
सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ।
देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥
पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः ।
वृत्तिः स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ॥

अर्थात् नाटिका वह उपरूपक है, जिसका वृत्त कल्पित होता है । उसमें स्त्री-पात्र ही अधिक चित्रित होते हैं । इसका चार अंकों में समाप्त होना आवश्यक है । इसका नायक प्रख्यात राजवंश का धीर-ललित प्रकृति वाला राजा होना चाहिये । नायिका का नायक के अन्तःपुर से संवद्ध होना अथवा संगीतकला में निपुण होना, राजकुलोत्पन्न होना तथा नवानुरागवती कन्या होना अपेक्षित है । नायक नायिका का पारस्परिक रतिभाव देवी अथवा राजमहिषी के भय से युक्त तथा उनका संगम उसके अधीन होना चाहिये । देवी या राजमहिषी, राजकुलोत्पन्ना, प्रगल्भा, पग पग पर मान करती हुई चित्रित की जाना चाहिये । इसमें 'कैशिकी

---

१. कर्पूरमंजरी १–६ ।
२. दशरुपक : धनंजय ३:४३:४८ ।
३. नाट्यशास्त्र : भरत १८।५७–६१ ।

वृत्ति का प्राधान्य रहना चाहिये । विमर्शसन्धि के अंशमात्र से सन्धि-चतुष्टय की रचना होना चाहिये ।

कर्पूरमंजरी की रचना करते समय राजशेखर के मस्तिष्क में नाटिका के उक्त सभी लक्षण विद्यमान थे किन्तु 'नाटिका' को 'सट्टक' का नेपथ्य-परिधान कराने के लिये उन्होंने जिस सामग्री की सहायता ली, वे ही आगे चलकर सट्टक की निजी विशेषतायें बन गयी । जैसे—

(१) नाटिका में प्रयुक्त 'अंक' के स्थान पर 'जवनिका' शब्द का प्रयोग ।

(२) नायिका के नाम पर ही सट्टक का नामकरण ।

(३) नृत्य का अनिवार्य रूप से प्रयोग ।

(४) सम्पूर्ण पात्रों द्वारा मात्र प्राकृत भाषा का व्यवहार ।

राजशेखर के परवर्ती नाट्यकारों तथा आचार्यों ने उनके द्वारा दी गई 'सट्टक' की परिभाषा का समीक्षण करते हुए अपने अपने ढंग से उसे साहित्य में प्रतिष्ठित किया ।

आचार्यों में अभिनवगुप्त, हेमचन्द्र, सगरनन्दी, शारदातनय एवं विश्वनाथ ने सट्टक के विषय में विचार किया है । अभिनवभारतीकार अभिनवगुप्त के मतानुसार[1] सट्टक, कोहल आदि द्वारा लक्षित 'त्रोटक' एवं रासक के समान ही नाटिका का एक भेद है ।

"उक्त व्याख्याने तु कोहलादिलक्षितत्रोटक सट्टकरासकादिसंङ्ग्रहः फलं नाटिकाया उदाहरणत्वादिति । अतएव न दशसंख्याविभागार्थो येन सट्टकादीनां त्यागः स्यात् ।

हेमचन्द्र ने केवल प्राकृत में ही लिखी गई विष्कम्भक एवं प्रवेशक-रहित नाटिका को सट्टक माना है:—

'सट्टकश्च कैश्चित् । विष्कम्भक-प्रवेश-रहितो यस्त्वेकभाषया भवति असंस्कृतप्राकृतया सट्टको नाटिका-प्रतिमः ।[2]

शारदातनय सट्टक-विषयक विकसित विचार प्रणाली के समर्थक हैं । राजा की भाषा के विषय में परवर्ती आचार्यों में मतभेद हो गया था । इसकी प्रतीति शारदातनय के "नवदेत् प्राकृतीं भाषां राजेति कतिचिज्जगुः" शब्दों में की जा सकती है ।[3] उक्त उद्धरण में शारदातनय ने सट्टक से

---

१. नाट्यशास्त्र भाग २ पृ. ४०७ ।

२. काव्यानुशासन हेमचन्द्र पृ० ४३२ ।

३. भावप्रकाशन शारदातनय नवम प्रकाशन पृ० २६९ ।

समस्त सन्धियों को वहिष्कृत कर दिया है। सगरनन्दी के विचारों में सट्टक नाटिका का ही प्रतिरूप है। इसमें 'कैशिकी एवं भारती' वृत्ति प्रधान होती है। उसमें रौद्र, वीर, भयानक एवं वीभत्स रस, तथा अवमर्श सन्धि का अभाव होता है।[1] अंक के स्थान पर यवनिका शब्द प्रयुक्त किया जाता है। शौरसेनी, प्राच्या और महाराष्ट्री के माध्यम से पात्र वाग्व्यवहार करते हैं। राजा-प्राकृत-भाषी होता है और स्त्री-पात्रों का वाहुल्य होता है।

"सट्टकं नाटिका-भेदो नृत्यभेदात्मकं भवेत्।
कैशिकी भारतीयुक्तहीन-रौद्ररसादिकम् ॥
सर्वसन्धिविहीनश्च नाटिका-प्रतिरुपकम्।
शूरसेनमहाराष्ट्र-प्राच्य-भाषादिकल्पितम्।
अंकस्थानीयविच्छेद-चतुर्यवनिकान्तरम् ॥
छादनस्खलनभ्रान्तिनिह्नवादेरसंभवात्।
न वदेत प्राकृतीं भाषां राजेति कतिज्जिजगुः॥
मागध्या शौरसेन्या वा वदेद्राजेति केचच।
नाटिकाप्रतिरूपं यद्विशेषो रुपकस्य तत् ॥
सट्टकं तेन तस्याहु र्भाषां तां प्राकृतीं परे।
राजशेखर-क्लृप्तं तद् यथा कर्पूरमंजरी ॥

"अन्तर्यवनिकान्तरं यथाऽङ्के यवनिकयावच्छेदा भवति तथात्रापि। शौरसेनी-प्राच्यामहाराष्ट्रीयुक्तम्। स्त्रीवद्राज्ञोऽपि प्राकृतपाठः यद्यपि वादरायण प्रभृति-भिरुक्तं राज्ञः संस्कृतपाठः। कार्यात् प्राकृतपाठः। तत्र रूपकमिवेदंकार्यमिति राज्ञाऽपि प्राकृतपाठ कर्तव्यः। सट्टके स्त्रीप्रधानत्वाद्रूपकस्यानुरोधतः नृपः स्त्रीवत्पठेदेष पाठस्य नियतो विधि:।[2]

विश्वनाथ भट्ट ने संक्षिप्त सारगर्भित शब्दों में सम्पूर्ण सट्टक परम्परा के लक्षणों को उद्घाटित किया है। उनके अनुसार उक्त साहित्यशास्त्रियों के अतिरिक्त घनश्याम, रुद्रदास, नयचन्द्र, विश्वेश्वर और मार्कण्डेय ने भी कर्पूरमंजरी के आदर्श पर क्रमशः 'आनन्दसुन्दरी' 'चन्द्रलेखा' 'श्रृंगारमंजरी' 'रम्भामंजरी' एवं 'विलासवती' की रचना की है।

---

१. नाटक रत्नकोष—सगरनन्दी पृ० १३३–१३४।
२. नाटक रत्नकोष सगरनन्दी, पृ० १३३–१३४।

कर्पूरमजरी के कथानक का स्रोत : राजशेखर द्वारा रचित सट्टक एवं नाटिका की कथावस्तु उत्पाद्य है किन्तु कर्पूरमंजरी सट्टक के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस सट्टक के संविधानक की रचना में उन्हें कदाचित् गुणाढय की वृहत्कथा से सहायता मिली होगी । वृहत्कथा पैशाची भाषा में लिखी गई थी । वह आज अनुपलब्ध है। परन्तु उसका सारांश क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामंजरी विद्यमान हैं । उसमें निम्नलिखित कथा आई है । वृहत्कथामंजरी में राजा नरवाहन दत्त मृगया के लिय चला । रास्ते में उसकी गुलिका गिर पड़ी । राह चलती हुई ऋषि-पत्नी ने उसे उठा लिया । नरवाहनदत्त संतप्त होकर उलटे-सीधे शब्दों में ऋषि-पत्नी की निन्दा करने लगे । उस स्त्री ने राजा से कहा कि हे ! राजन् अभी तुम्हें अपने वैभव का इतना घमण्ड है । यदि कर्पूरमंजरी को पत्नी रूप में पाओगे तो कितना घमण्ड होगा । नरवाहन ने विज्ञासापूर्वक कर्पूरमंजरी के विषय में जानकारी माँगी । जब उसे पता चला कि कर्पूरमंजरी कर्पूरद्वीपवासी राजा कर्पूरचन्द्र की कन्या है । वह शीघ्र ही अपने मित्र गोमुख को लेकर लक्ष्य प्राप्ति के लिय निकल पड़ा । उस द्वीप में पहुँचने के पश्चात् रात्रि के समय दोनों मित्रों ने एक वृद्धा की झोपड़ी में शरण ली । वृद्धा ने कर्पूरमंजरी के पूर्व-जन्म का विवरण दिया जिसमें वह हंसी थी तथा समुद्र की दुष्ट लहरों ने उसके शावकों का भक्षण कर लिया था । अतः अपत्य-शोक में स्वहंस से भी विमुख होकर हंसी ने जल में डूबकर आत्महत्या कर ली थी । इस जन्म में हंस का स्मरण कर वह विवाह से विमुख रहती है। यह कथा सुनकर प्रातः नरवाहनदत्त राजधानी में प्रविष्ठ होकर हा हंसि ! हा हंसि ! ऐसा अन्तःपुर के समक्ष विलाप करने लगा । अन्तःपुर की स्त्रियों ने पूछने पर गोमुख ने ठीक वही कथा वताई जो कि वृद्धा से सुनी थी । उसने नरवाहन को पूर्वजन्म का हंस वतलाया । शीघ्र ही कर्पूरमंजरी निकल आई और उसने नरवाहन को पूर्वजन्म का हंस मानकर विवाह करने की इच्छा प्रकट की । कर्पूरचन्द्र ने उसका विवाह नरवाहन से कर दिया ।

कथासरित्सागर में यही कथा सोमपाल की पुत्री कर्पूरिकी से संबंधित है । नायिका के नाम की भिन्नता के अतिरिक्त सम्पूर्ण कथा एक सी है ।

राजशेखर की मौलिकता : राजशेखर के कर्पूरमंजरी के कथानक में और उपर्युक्त कथानक में साम्य सहजगम्य है । कर्पूरमंजरी एवं चण्डपाल का विवाह होना, ध्यानविमान द्वारा एक पात्र का दूसरे पात्र के देश में पहुँचना, ये बातें समान हैं किन्तु नायिका की प्राप्ति के लिये होने वाले संघर्ष से वैचित्र्य एवं सरसता

का उत्पन्न करना, प्राकृतिक दृश्यों एवं सामाजिक पर्वों के चित्रण द्वारा कथानक को रोचक बनाना, ये सब बातें राजशेखर की कल्पनाशक्ति की उपज हैं ।

नाटिका की सजीव परम्परा का प्रवर्तन श्रीहर्ष की रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटिका से लक्षित होता है । इन नाटिकाओं का उद्देश्य अन्तःपुर की प्रणयलीलाओं का उद्घाटन करना है । अतः नायिका कहीं बाहर से लाई जाती है । किसी सिद्ध या ज्योतिषी का नाम लेकर यह कहा जाता है कि इस नायिका से विवाह करनेवाला पुरुष चक्रवर्ती राजा होगा । मंत्री जानबूझकर नायिका को अन्तःपुर संचारिणी बनाता है । नायिका का प्रथम दर्शन ही राजा को मुग्ध करने के लिये पर्याप्त होता है । प्रणयव्यापार का बीज भी यहाँ लक्षित एवं उत्तरोत्तर वर्धित होता है । रानी नायिका को राजा की दृष्टि से बचाने के लिये प्रयत्नशील रहती है किन्तु विदूषक एवं परिचारिकाओं की सहायता से नायक नायिका की विघ्न-बाधायें परिहृत होती रहती हैं । अन्त में रानी के द्वारा ही दोनों स्थायी प्रणय बन्धन में बँध जाते हैं ।

कर्पूरमंजरी की रूपरेखा भी ऐसी ही है किन्तु कतिपय नवीनतायें लिये हुए ।

कथानक : वसन्त ऋतु के सरस वर्णन से सट्टक के अभिनय का आरम्भ होता है । बीच में ही विदूषक की विद्वत्ता के विषय में चेटी भले बुरे शब्द कह देती है, अतः काव्यसंवाद का स्थान गाली गलौज में परिवर्तित हो जाता है । विदूषक चेटी को दिल खोलकर गालियाँ बकता है । चेटी भी उसे गालियाँ सुनाती है । राजा के आग्रह करने पर विदूषक अपने स्तर का श्लोक पढ़ता है । चेटी विलक्षणा पुनः उसे छेड़ती है । परिणामस्वरूप विदूषक पुनः क्रुद्ध हो जाता है । राजा और रानी विचक्षणा का समर्थन करते हैं जिसे विदूषक द्विगुणित क्रुद्ध होकर राजकुल के लिये भी अपशब्द कहता है । वह बड़बड़ाता हुआ निकलने का अभिनय करता है किन्तु शीघ्र ही भैरवानन्द नामक कौल साधक के आगमन की वार्ता सुनकर लौट आता है । भैरवानन्द का सब स्वागत करते हैं । राजा अद्भुत वस्तु देखना चाहता है । अतः भैरवानन्द ध्यानविमान द्वारा सद्यःस्नाता कर्पूरमंजरी को अवतरित करता है । वह राजपरिवार को आश्चर्य से देखती है । राजा उसके अद्वितीय सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है । रानी के पूछने पर कर्पूरमंजरी स्वयं को कुन्तलदेश के वत्सलराज एवं शशिप्रभा की पुत्री बतलाती है । शशिप्रभा, रानी विभ्रमलेखा की मौसी है । अतः दोनों मौसेरी बहनें प्रेमपूर्वक मिलती हैं । भैरवानन्द को विदाई दी जाती है किन्तु रानी पाँच छह दिन पश्चात् उसी ध्यान-विमान से नायिका कर्पूरमंजरी को उसके स्थान पर पहुँचा देने के लिये भैरवानन्द

से प्रार्थना करती है । कर्पूरमंजरी का नेपथ्यविधान ठीक करने के लिये रानी उसे ले जाती है । नेपथ्य में वैतालिक सुखकर सन्ध्या की घोषणा करते हैं । सब चले जाते हैं ।

द्वितीय जवनिका में नायिका के सौंदर्य का स्मरण करता हुआ राजा दिखाई देता है । वह विरह के कारण मानसरोवर से छूटे हुए हंस के समान उद्विग्न-मना, मदस्राव से दुर्बल हाथी, प्रचण्ड सूर्यताप के द्वारा मुरझाये हुए कमल नाल, दिन में कान्तिहीन दीपक, प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा दृष्टिगोचर होता है । राजा का प्रिय मित्र विदूषक एवं परिचारिका विचक्षणा आती हुई दिखाई देती है । वह कर्पूरमंजरी द्वारा लिखित केवड़े का (प्रणय) पत्र-लेख राजा को देती है । कस्तूरी की स्याही से लिखे उस लेख में राजा को न केवल कर्पूरमंजरी के अपने प्रति प्रेम का आभास मिलता है अपितु उसकी विरह अवस्था की तीव्रता की अनुभूति भी होती है । विचक्षणा और उसकी बड़ी बहन सुलक्षणा उस तीव्रता को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत कर द्विगुणित कर देती हैं । गौरी पूजा के समय कर्पूरमंजरी का नखशिखान्त श्रृंगार किया जाता है । उसका वर्णन भी विचक्षणा सरसता से करती है । पूजा के उपरान्त हिन्दोलन-चतुर्थी के उपलक्ष में कर्पूरमंजरी दोलारोहण करती है । राजा और विदूषक उस दोला-लीला का वर्णन करते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं । नायिका के उतरने से दोनों निराश हो जाते हैं किन्तु राजा पुनः एक बार उसे दोहदक्रीड़ा सम्पन्न करती हुई देखता है । नेपथ्य में सन्ध्याकाल की सूचना मिलती है । सब चले जाते हैं ।

तीसरी जवनिका में राजा और विदूषक अपने अपने स्वप्न का वर्णन करते हैं । राजा को रात दिन नायिका ही दिखाई देती है । स्वप्नदृष्ट नायिका का आंचल पकड़ने के लिये राजा आगे बढ़ता है किन्तु वह छुड़ाकर भाग जाती है । राजा की नींद टूट जाती है । विदूषक भी मनगढ़ंत स्वप्न का वर्णन कर हँसाता है । दोनों प्रेमतत्व की चर्चा करते हैं । नेपथ्य में कर्पूरमंजरी का स्वर सुनाई देता है । शीतोपचार उसे अधिक थकान उत्पन्न कर रहा है । राजा और विदूषक वहाँ पहुँचते हैं । राजा को देखकर नायिका लज्जा का अभिनय करती है । उठने की इच्छा करती है किन्तु राजा उसे रोक लेता है । विदूषक घर्मक्लान्ता नायिका पर वस्त्र से हवा करता है । संयोग से दीपक बुझ जाता है । विदूषक और कर्पूरमंजरी सखी विचक्षणा प्रमदोद्यान की ओर चले जाते हैं । राजा और नायिका मिलते हैं । किन्तु क्षण भर में ही नेपथ्य कोलाहल से गूंज उठता है,

क्योंकि नायिका से राजा के मिलने का समाचार पाकर रानी उसी ओर आती है । कुब्ज, वामन, किरात, वर्षवर और सौविदल्ल शोर मचाते हैं । नायक-नायिका चले जाते हैं ।

चतुर्थ जवनिका में राजा ग्रीष्म की प्रचण्डता और काम की प्रखरता से व्यथित दिखाई देता है । वह ग्रीष्म ऋतु की सेवनीय वस्तुओं का वर्णन करता है । उसे ज्ञात होता है कि कर्पूरमंजरी को भी कारावास के कठोर नियंत्रण में रखा गया है । और दरवाजों को पत्थरों से नीरन्ध्र करके ढँक दिया गया है । पूर्वदिशा में पाँच चँवर डुलाने वाली, चमकती तलवारों से युक्त, हजार पैदल सिपाहियों के साथ रक्षा के लिये नियुक्त की गई हैं । उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में क्रमशः पाँच सैरिन्ध्रियाँ और हजारों धनुष भाले और ढाल तलवारों से लैस पैदल सिपाहियों समेत नियुक्त की गई है । इन सबका अध्यक्ष पद पाँच कुमारी परिचारिकाओं ने, जो कि हाथ में सोने के डण्डे लिये हुए हैं, सम्हाल रखा है । राजा को रानी की ओर से वटसावित्री महोत्सव देखने का निमंत्रण मिलता है । केलिविमान पर चढ़कर राजा और विदूषक इस अवसर पर आयोजित चर्चरीनृत्य देखते हैं । पुनः एक बार भैरवानन्द आते हैं । इस समय वे गौरी-प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा कराते हैं। रानी द्वारा दक्षिणा के लिये प्रार्थना करने पर भैरवानन्द दक्षिणा के रूप में घनसारमंजरी का राजा के साथ विवाह माँगते हैं.। रानी किसी दूसरी कन्या को घनकारमंजरी समझकर विवाह रचाती है, किन्तु घनसारमंजरी कर्पूरमंजरी ही होती है । अतः रानी भ्रम में पड़ती है । कारागार में जाकर देखती है तो उसे कर्पूरमंजरी बैठी दिखाई देती है । चामुण्डा के मंदिर में भी वही स्थिति है, अन्त में भेद खुल जाता है । राजा और कर्पूरमंजरी का विवाह हो जाता है । उसे चक्रवर्ती पद भी अनायास मिल जाता है । भरतवाक्त के साथ कथा कीं समप्ति होती है ।

कथावस्तुः—कर्पूरमंजरी में चण्डपाल एवं कर्पूरमंजरी की प्रणय कथा वर्णित है । वे दोनों फलभोक्ता हैं । विचक्षणा एवं विदूषक की काव्यगोष्ठी, जो कि प्रासंगिक कथा के रूप में रखी गई है, प्रथम जवनिका के पतन तक चलती है। इससे सट्टक का प्रारंभ आकर्षक बनाने में सहायता मिली है । विदूषक की उक्ति कि ऐसे राजकुल का कल्याण हो जहाँ दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है।[1] तत्कालीन राजकुलों की स्थिति पर प्रकाश डालती है ।

१. कर्पूरमंजरी १–२० "इदिअस्स राअउलस्स भद्दं भोदु जहि
चेड़िआ ब्रह्मणेण समं समसीसिआए दीसदि ।"

आधिकारिक कथावस्तु में पाँचों अर्थप्रकृतियों (वीज, विंदु, पताका प्रकरी और कार्य) का निर्वाह हुआ है। फलसिद्धि का प्रथम हेतु वीज होता है। भैरवानन्द की अद्‌भुत सिद्धि द्वारा अद्वितीय सुन्दरी कर्पूरमंजरी के अवतरण से राजा चण्डपाल अत्यन्त विस्मित है। 'चिते लिहज्जदण कस्स वि संजमंती'[1] (यह नायिका किस पुरुष के हृदय पटल पर चित्रित नहीं होती)—"जेणं सोसण-मोहणप्पुहदिणो विज्झंति मं मग्गणा[2] —"। इसे देखकर कामदेव के शोषण और मोहन वाण मुझे व्याकुल कर रहे हैं—राजा के इन उद्‌गारों से "वीज" अर्थ-प्रकृति की स्थापना हो गई है। इसके पश्चात् वीज उत्तरोत्तर विकसित होता है। नायक (राजा) नायिका का पारस्परिक पूर्वानुराग, दर्शनाभिलाषा इत्यादि द्वितीय एवं तृतीय जवनिका के अन्तिम दृश्य तक अविच्छिन्न वनी रहती है। यहाँ तक कथावस्तु के विन्दु का प्रसार लक्षित होता है। चतुर्थ जवनिका में नायिका के कारावास से मूल प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु भैरवानन्द के सफल प्रयास से सट्टक का मुख्य लक्ष्य नायिका (कर्पूरमंजरी) की प्राप्ति एवं परिणय-सिद्ध हो जाता है।

पाँच कार्यावस्थाओं—आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम—से पाँचों अर्थ-प्रकृतियों का संयोग होता है। मुख्य फल की सिद्धि के लिये उत्कंठा को "आरम्भ" कहते हैं। प्रथम जवनिका में वीज अर्थप्रकृति के साथ ही "आरम्भ" की अवस्था भी प्रारंभ हो गयी है। द्वितीय जवनिका में नायिका का प्रणयपत्र कि "अपने से प्रेम करने वाली हंसिनी को कुंकुमराग से सजाकर पुनः भूल से ही उसे चक्रवाकी समझाने वाला हंस उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें देख नहीं पाती हूँ" इस अवस्था को और भी प्रस्फुटित करता है। इसी संदर्भ में "यत्न" की अवस्था का भी प्रारंभ है। नायक के यत्न में विदूषक एवं नायिका के यत्न में विचक्षणा फलागम के लिये प्रत्नशील है। तृतीय जवनिका में विचक्षणा एवं विदूषक के प्रयास द्वारा नायक एवं नायिका के मिलन के 'यत्न' की अवस्था फलागम की सीमा को स्पष्ट करती प्रतीत होती है। इसी समय रानी को वस्तु स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वह नायिका को कठोर नियंत्रण में रखती है। प्राप्त्याशा का यह सही रूप है। फल प्राप्ति की संभावना धूलि धूसरित होती है। किन्तु भैरवानन्द द्वारा माँगी हुई गुरुदक्षिणा 'नियताप्ति' की दशा का आरम्भ सूचित करती है।

१. कर्पूरमजरी १–२७।
२. वही १–३२।

नियताप्ति गूढ़ है । जब तक दर्शक कर्पूरमंजरी को रंगमंच पर नहीं देख लेते, घनसारमंजरी उनके लिये पहेली बनी रहती है । विदूषक की यह उक्ति कि— "प्रिय मित्र मैं दुपट्टे में गाँठ लगाता हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ो" नियताप्ति को स्पष्ट कर देती है । चतुर्थ जवनिका का अवसान फलागम से होता है । राजा को कर्पूरमंजरी तथा चक्रवर्ती पद की प्राप्ति रूप फलागम सुख से सम्पन्न हो जाता है ।

उपर्युक्त पाँच अर्थ प्रकृतियों एवं पाँच कार्यावस्थाओं का क्रमिक संयोग पंचसन्धियों को उद्भूत करता है ।

कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका में नायिका के दर्शन से लेकर नायिका के प्रणयपत्र द्वारा प्रणयनिवेदन पर्यन्त 'मुखसन्धि' का विस्तार माना जा सकता है । द्वितीय जवनिका से तृतीय जवनिका तक 'प्रतिमुख' सन्धि का निर्देशन है क्योंकि नायक और नायिका परस्पर मिलन के लिये प्रयत्नशील हैं । चतुर्थ जवनिका के प्रथम दृश्य में नायिका के बन्दी होने का वर्णन है । यह 'गर्भसन्धि' है । भैरवानन्द द्वारा नायिका को बन्धनमुक्त कर विवाहपीठिका पर आसीन करने के प्रयास-पर्यन्त 'अवमर्शसन्धि' तथा वहाँ से नायक नायिका के विवाह तक निर्वहण सन्धि की व्याप्ति मानी जा सकती है। कथानक का कार्यावस्था, अर्थ-प्रकृति एवं सन्धियों में उचित गुम्फन राजशेखर के शिल्प कौशल का प्रमाण है ।

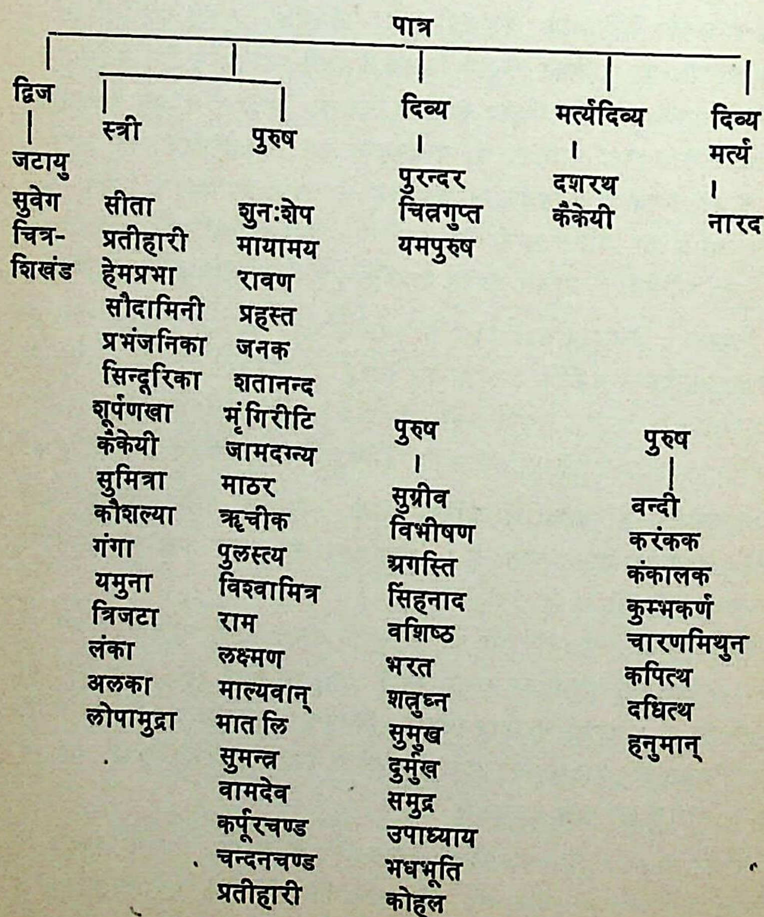
निष्कर्ष : केवल बालरामायण के कथानक में अनावश्यक विस्तार मिलता है जो वस्तु संविधान में शैथिल्य उत्पन्न कर देता है । इस त्रुटि की उपेक्षा की जाय तो राजशेखर का वस्तु-संविधान सभी कृतियों में अच्छा हुआ है । शास्त्रीय पद्धति पर होने के कारण उसमें तत्संबंधी सभी विशेषतायें यथास्थान मिल जाती हैं ।

राजशेखर के रूपकों में चरित्र-चित्रणः—कथानक पात्रों की सहायता से अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है । अतः रूपक का दूसरा तत्व चरित्र-चित्रण भी अवलोकनीय है ।

अन्तःपुर की प्रणयलीलाओं का उद्घाटन करने वाली राजशेखर की दो कृतियों कर्पूरमंजरी एवं विद्धशालभंजिका के पात्रों की संख्या एवं उनके कार्य भी भिन्न नियत हैं । राजा, राजाका सहचर विदूषक, राज्य शासन के कर्मचारी मंत्री, संदेशवाहक दूत, तथा स्त्री पात्रों में महादेवी एवं दूती, प्रतीहारी, परिचारिका ने ही घटनाचक्र को आगे बढ़ाया है ।

बालरामायण : राम-कथाश्रित नाटक होने के कारण राम के जीवन से संबन्धित मर्त्य लोक में स्वर्ग्य पात्रों की सृष्टि दिखाई गई है । बालरामायण के

पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय धरातल पर चलते हैं । वे जन मानस के समीप प्रतीत होते हैं । इसीलिये ६७ पात्रों से युक्त यह नाटक 'पात्रों का जंगल' प्रतीत नहीं होता । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रधान पात्र राम, रावण तथा सीता हैं । इनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण नाटक में बिखरा हुआ है । पात्रों का बहुल्य इस नाटक की विशेषता है । इन तीन पात्रों को छोड़कर शेष पात्र सहायकों की कोटि में रखे जा सकते हैं । नाटक के समस्त पात्रों का वर्गीकरण मानुष एवं दिव्य श्रेणी में किया जा सकता है । दिव्य पात्र यदि मर्त्य लोक में अवतरित होता है तो उसे दिव्यमर्त्य कहा जा सकता है तथा यदि मर्त्य मृत्यु के पश्चात् या कारणवश दिव्य लोक में जाता है तो उसे मर्त्यदिव्य । इस आधार को ध्यान में रखकर पात्रों का विभाजन निम्नानुसार किया गया है ।



नायक : इस नाटक के नायक राम हैं । नायक के समस्त गुण उनमें विद्यमान हैं । वे आत्मश्लाघा की भावना से रहित हैं । क्षमाशील अत्यन्त गंभीर, दुःख सुख में प्रकृतिस्थ, स्वाभिमानी किन्तु विनीत हैं। उनका हृदय कोमल है । वे मृत्यु आदि के अवसरों पर अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं । ऐसे अवसरों पर कोई उनकी स्तुति करे यह उन्हें सहन नहीं व्यक्ति की स्तुति तो तभी उचित है जब कोई अपना पराक्रम दिखाये । अतः वे रावण-वध तक अपनी स्तुति पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं ।[1] आत्मश्लाधा के प्रति उनकी विरक्ति इस प्रसंग में दृष्टिगत होती है। नम्रता तो उनके रोम रोम में विद्यमान है। समर्थ होते हुए भी वे समुद्र से मार्ग देने की अभ्यर्थना करते हैं । परन्तु जब वह मार्ग न देने की धृष्टता कर, उनकी नम्रता को अवहेलित करता है तब विवश होकर उन्हें शस्त्र ग्रहण करना पड़ता है ।[2] परन्तु समुद्र की क्षमा याचना पर वे उसे क्षमादान ही नहीं करते, अपनी ओर से भी उससे क्षमा माँगते हैं ।[3] इस प्रसंग में उनकी विनम्रता, स्वाभिमान, और क्षमाशीलता की चरम सीमा दीख पड़ती है । राम गुरुजनों के प्रति श्रद्धा रखते हैं । यही कारण है कि परशुराम से अधिक शक्तिशाली होने पर भी वे उनके क्रोध के सम्मुख नतमस्तक होकर क्षमा याचना करते हैं ।[4] फिर भी जब परशुराम अहंमन्यता नहीं छोड़ते तो वे द्वंद्वयुद्ध के लिये परशुराम को ललकारते भी हैं । इस प्रकार राम में कोमलता एवं कठोरता का उचित मिश्रण है । रामायण के नायक राम की पितृभक्ति की तुलना में बालरामायण के नायक राम की भक्ति कहीं अधिक है । दशरथ का वेश धारण किये यक्ष की भी वे अवहेलना नहीं करते और चल पड़ते हैं । यह पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा है ।

राम में समस्त गुणों की विद्यमानता देकर राजशेखर ने उनके नायकत्व एवं आदर्श चरित्र को पुष्ट किया है किन्तु राम का परिचय नाटक में अत्यन्त विलम्ब से दिया गया है । दर्शक उनके गुणों का श्रवण प्रथम अंक में के प्रारंभ से करते हैं किंतु उनका प्रत्यक्ष दर्शन चतुर्थ अंक में ही हो पाता है ।

खलनायक : रावण का चित्रण खलनायक के रूप में किया गया है ।

---

१. बालरामायण अध्याय ७।१८३—ननु रामदेवेन निषिद्धमात्मोपवर्णनमादशरथ स्वर्गारोहणश्रुते रादशकण्ठबन्धम् ।

२. वही अध्याय ७ पृ० १८४—स्मृत्वा तदेहि सगरं च भगीरथं च,
दृष्ट्वाऽथ वा मम धनुश्च शिलीमुखांश्च ।

३. वही अध्याय ७ पृ० १८९—सगौरवं भगवान् रत्नाकर नमस्ते नन्वहं प्रशास्यो भगवतः सागरस्य तदैकवारमविनयो नयो वा क्षम्यतां रामस्य ।

नायिका सीता के प्रति अनुराग और उसके भावी पति अर्थात् नायक से स्थायी शत्रुता रावण के खलनायकत्व का प्रमाण है । इसका सारा व्यापार सीतानुराग पर आधारित है । द्वितीय अंक में सीता का स्मरण तृतीय अंक के सीता स्वयंवर गर्भाङ्क में सीता के प्रति उत्सुकता एवं वरण करने वाले के प्रति विद्वेष उसकी इसी भावना को पुष्ट करता है । प्रतिद्वंद्वी राम को देखकर उसका खून खौल उठता है । सीता के लिये वह घोर अपमान भी सह सकता है ।[१] यह बात वह स्वयं अपने मुख से कहता है ।

सीता के विरह में वह पागलों की तरह प्रलाप करता है । प्रकृति की रमणीयता उसे सीता के सौंदर्य का आभास दिलाती है । यन्त्र-जानकी को वास्तविक समझकर वह उससे प्रणयनिवेदन करता है । यन्त्र-जानकी का रहस्य उद्घाटित होने पर वह मनोविनोदन के लिये षड्ऋतुओं का आश्रय लेता है किन्तु उसकी विरहवेदना द्विगुणित होती जाती है । सीता हरण के विचार सदा उसके मस्तिष्क में घूमते रहते हैं । राम के अवरोध को सदा के लिये नष्ट करने की भावना भी उसके मन में स्थायी रूप से बनी रहती है । सेतुबन्ध में सीता के छद्म मस्तक को फेंकने का उद्देश्य भी यही है । रावण अत्यन्त वीर है । वह वर्णाश्रमों का अधिष्ठाता है । उसे अपने पराक्रम एवं प्रभुता का अभिमान है ।

अन्य जनों को वह तुच्छ समझता है । "अविमृश्यकारिता हि पुंसः परं परिभवस्थानम् ।"[३] यह उसका आदर्श वाक्य है । क्रूरता उसकी सामान्य प्रकृति है । अपने स्वार्थ के लिये अपने ही परिवार को बलि देने पर भी वह केवल रोकर ही संतोष कर लेता है । वह खलनायकत्व की कसौटी पर खरा सिद्ध होता है ।

सीता : नायिका सीता नाटक के पहले पाँचवें और फिर दसवें अंक में रंगमंच पर दिखाई देती हैं । वह भी अद्वितीय सुन्दरी हैं । ब्रह्मा ने मानो सारे संसार के सौन्दर्य को निचोड़कर सीता में उडेल दिया है ।

"संसारसारनिचयेन विधाय वेधाः"[४]

रावण उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है । सीता को देखकर उसकी

१. बालरामायण अध्याय १ पृ० २६—अहो सीता स्नेहो मामार्द्रयति यदहमपि दशकण्ठ ईदृशानां वचसां सोढ़ा ।
२. बालरामायण अध्याय १ पृ० २५—मानुषेण रावण-पराजय इत्यहो सुभाषितम्
३. बालरामायण अध्याय १ पृ० २३ ।
४. बालरामायण अध्याय २ पृ० ४३ ।

वाणी मुखरित हो उठती है । इनकी निरुपम रूप-सम्पदा नाटकीय संघर्ष के मूल में है । प्रथम अंक में स्वयंवर के समय चक्रवर्ती राक्षसराज को देखकर वे भय से काँप जाती हैं । शिवधनुष की ओर रावण को बढ़ते हुए देखकर पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि इससे पहले कि रावण धनुष चढ़ाये, वह उसे अपने भीतर समा ले । स्त्रीसुलभ स्नेह से सीता परिपूर्ण हैं । विदाई के समय वह रो पड़ती है, तथा पिता से माण्डवी श्रुतकीर्ति आदि को भी साथ भेजने का अनुरोध करती है । वनगमन प्रसंग में उसके गृहस्थ जीवन का प्रारंभ होता है । पथिक वधुएँ उसे शिक्षा देती हैं ।[१] फलों का भोजन, घने जंगल में निवास, मृग-चर्म की शय्या पर शयन उनकी दैनन्दिनी चर्या है ।

त्वक्तारवी निवसनं मृगचर्म शय्या
गेहं गुहा विपुलपल्लपुटा घनाश्च ।
मूलं दलं च कुसुमं च फलं च भोज्यं ।।[२]
पुत्रस्य जातमटवी गृह मेधिनस्ते

वे पति परायणा एवं गुरुजनों के प्रति श्रद्धालु हैं । रावण-वध के पश्चात् अग्नि-परीक्षा में निष्कलुष सिद्ध होने के पश्चात् अयोध्यागमन के समय उन्होंने भिन्न भिन्न देशों के दर्शन किये किन्तु स्वयंवर प्रसंग में उन्होंने भिन्न-देशीय राजाओं की जो विशेषतायें वतलाई हैं वे न केवल उनके राजनीतिक ज्ञान का दर्शन कराती हैं, अपितु सम्पूर्ण देश के जन-जीवन एवं उसकी राजनीतिक हलचलों से उसका सुपरिचय व्यक्त करती हैं ।

जामदग्न्य : परशुराम की अवतारणा द्वारा राजशेखर के नाटक को वीर रस पूर्ण बना दिया है। पहली बार परशुराम का रावण के साथ तीव्र संघर्ष होता है। और दूसरी बार वे राम के साथ संघर्षरत दीख पड़ते हैं। रामायण में वर्णित परशु-राम के गुण नाटकीय परशुराम में भी विद्यमान हैं। प्रसंगानुसार इनकी जीवन घटनाओं यथा—पिता की आज्ञा से माता का शिरश्छेद,[३] इककीस वार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करना[४], कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन का वध[५] आदि का उद्घाटन किया गया है। वे आजन्म वैखानस है'।[६] वे 'श्रुत्यर्थवीथीगुरु'[७] उपाधि से विभूषित हैं।

---

१. बालरामायण अध्याय ५।३६ २. बालरामायण ६-४० ।
३. कर्ता मातृवधैनसः बालरामायण। २।१३-पृ० ३२ ४. वही २।१३-पृ० ३२
५. त्रिसप्तावधि बंधिता क्षितिभुजा २।१३-पृ० ३२
६. क्षितिभुजामाजन्म वैखानसः स सकलश्रुत्यर्थ वीथीगुरुः २।१३-पृ० ३२ ।
७. " वही " २।१३ पृ० ३२
८. स खलु महर्षिर्भूत्वा समरसमारम्भ-महाग्रहगृहीतः । ४।०-१

वे नित्य धनुर्धारी हैं। चतुर्दशविद्याओं के अध्येता एवं अध्यापक हैं, किन्तु राम द्वारा शिवधनुष के भंग होने की वार्ता सुनते ही वे समस्त अध्यापन कार्य स्थगित कर देते हैं और युद्ध की तैयारी करते हैं।

दशरथ : वे यशस्वी सम्राट् हैं जो इस जीवन ही में स्वर्ग-लोक की यात्रायें करते हैं, तथा मरणोपरान्त स्वर्ग में रहकर भी मर्त्यलोक की सम्पूर्ण गतिविधियों से संपर्क बनाये रखते हैं।

दशरथ को सर्वप्रथम चतुर्थ अंक में राम-सीता-विवाह के पश्चात् मिथिला में दिखाया गया है। षष्ठ अंक में दिखाया गया है कि उनकी स्वर्ग यात्रा के समय नकली दशरथ राम को निर्वासित कर देते हैं। अतः वे इस महान् दुष्कर्म से कलंकित नहीं है। राम वनगमन का समाचार सुनकर भी वे जीवित हैं परन्तु सीताहरण का समाचार सुनकर वे संगम में जाकर प्राण त्याग कर देते हैं। परम वीर दशरथ की जीवितावस्था में ही सीता-हरण जैसी दुःखदायी घटना हो गई और उनमें क्षत्रियोचित वीरत्व के स्थान पर असह्य उत्पीडन क्यों जागा? 'धनुः धनुः' कहकर वे चुप क्यों बैठ गये? लगता है कि नाटककार तत्कालीन पुरुषत्वहीन, अकर्मण्य चरित्रों को दशरथ के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे, किन्तु यदि यही कारण है तो क्या वे उसे अन्य उचित व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त नहीं करा सकते थे? रामायण में दशरथ का स्थान गौरवास्पद है। नाटक में ऐसे पात्रों को इतना गर्हणीय दिखाना संगत प्रतीत नहीं होता। सातवें अंक में दशरथ की मृत्यु का उल्लेख है। नवम अंक में वे दिव्य रूप में राम-रावण-युद्ध का दर्शन करते हैं।

जनक : नाटक में जनक की भूमिका अत्यल्प है। सीता स्वयंवर एवं सीता विवाह प्रसंग में ही वे दिखाई देते हैं। शान्त, दान्त एवं विरक्त होने पर भी वे रावण द्वारा की गई शिवधनुष् की अवज्ञा से क्रुद्ध होकर शस्त्रग्रहण करने एवं उसका निवारण करने के लिए शाप देने तक को तैयार हो जाते हैं। इसका कारण है शिव के प्रति अगाध श्रद्धा और सीता के प्रति अपार स्नेह। सीता की विदाई के समय वे रो पड़ते हैं।

शतानन्द : शतानन्द और जनक एक-दूसरे पर आश्रित हैं। नाटक में दोनों एक साथ आते और जाते दिखाये गये हैं। सीता स्वयंवर एवं सीता विवाह में जनक के कार्य भार को हलका करने की प्रवृत्ति शतानन्द के व्यवहार से प्रकट होती है।

वशिष्ठ : कुलगुरु वशिष्ठ को केवल प्रथम और अंतिम वार राज्याभिषेक के समय दिखाया गया है।

नाटक में रामायण युद्ध प्रसंग से संवन्धित जिन पात्रों की गणना की जा सकती है, वे हैं—हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, दधित्थ, कपित्थ, सुमुख, दुर्मुख, सिंहनाद, कुम्भकर्ण, कंकालक एवं करंक।

हनुमान् के चरित्र में राम के प्रति भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति है। सेतु-निर्माण तथा सेनासंगठन के प्रति वे अत्यन्त उद्योगशील हैं। सेनापतियों को आदेश देते हैं कि वे पर्वत उठाकर लायें। इनका युद्धों के संचालन में विशेष योगदान है।

सुग्रीव एवं विभीषण भी राम के सहायक रूप में दृष्टिगत होते हैं। दधित्थ एवं कपित्थ दो वानर हैं। जिनका सेतु-निर्माण में विशेष महत्व है। सुमुख एवं दुर्मुख राक्षस-पक्ष के दूत हैं, जो त्रिजटा को युद्ध का समाचार देते रहते हैं। करंक और कंकालकइसी कार्य के लिये नियुक्त हैं। वे राक्षसराज को युद्धवार्ता से परिचित रखते हैं।

सिंहनाद और कुम्भकर्ण राक्षसपरिवार के प्रमुख सदस्य हैं। सिंहनाद रावण का पुत्र है। वह राम तथा लक्ष्मण को ललकारता है। किन्तु शीघ्र ही इसके दर्प का दलन हो जाता है। वह राम के द्वारा मारा जाता है। इसी प्रकार कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु क्रमशः राम और लक्ष्मण द्वारा वतलाई गई है।

कतिपय पात्र घटना-निर्देश के रूप में दिखाये गए हैं। प्रथम अंक में शुनःशेप एवं तापस की अवतारणा, द्वितीय अंक में भृंगिरिटि तथा नारद का प्रवेश, तृतीय अंक में गृध्रमिथुन सुवेग तथा चित्रशिखण्ड का प्रदर्शन, चतुर्थ अंक में उपाध्याय शिष्य का दिग्दर्शन, पंचम अंक में मायामय की योजना, छठे अंक में वामदेव, सुमन्त्र एवं रत्नशिखण्ड का प्रवेश, आठवें अंक में सुमुख, दुर्मुख की अवतारणा, नवम अंक में यमपुरुष का अवतरण, तथा दसवें अंक में अलका एवं लंका का मानवीय चित्रण कथानक में समन्वय या संगति की दृष्टि से किया गया है।

परिचारक वर्ग के अन्तर्गत प्रहस्त, प्रतीहार आदि आ सकते हैं। कर्पूरचण्ड तथा चन्दनचण्ड वैतालिक हैं जो प्रहरों की सूचना आश्रयदाता के यशोगान के साथ देते हैं। बन्दी-माध्यन्दिन सन्ध्या एवं प्रभात की सूचना देता है। माठर ऋचीक एवं पुलस्त्य, विद्यास्नातक हैं।

इस नाटक में स्त्री पात्रों का बाहुल्य है। सीता की दो नामरहित सखियाँ, उनके साथ रहती हैं। हेमप्रभा भी उनकी अभिन्नहृदया है। सौदामिनी चामर-धारिणी है। सिन्दूरिका यन्त्र-जानकी की सहेली है। प्रभंजनिका रावण की परि-चारिका है।

राजशेखर ने गंगा और यमुना का तथा लंका के मानवींकरण द्वारा क्रमशः उन्हें समुद्रपत्नियों एवं दशकण्ठपत्नी के रूप में दिखाया गया है। लंका दशकण्ठ की मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करती हुई आत्महत्या के लिए उद्यत होती है किन्तु अलका उसे सान्त्वना देती है।

कैकयी—कैकयी के चरित्र की विशेषता उसके निर्दोष चित्रण करने में है। राम वन गमन से वह अतिदुःखी है। अपने को कोसती रहती है। राम की माता के रूप में सुमित्रा और कौशल्या का भी चित्रण किया गया है।

त्रिजटा—राक्षसी होते हुए भी त्रिजटा सीता के प्रति सद्भाव रखती है। वह सदा सीता का हित चाहती है। वह सुमुख तथा दुर्मुख की सहायता से नरांतक वध, कुम्भकर्ण-जागरण आदि के समाचार सीता को पहुँचाती है। रावण वध के पश्चात् त्रिजटा सीता के साथ पुष्पक पर चढ़कर अयोध्या की यात्रा करती है।

शूर्पणखा—रावण की वहिन है। वह राजकार्य की संपादयित्री भी है। सीताहरण के लिए वह भूमिका बनाती है। कैकयी के वेश में वह सफलतापूर्वक राम-निष्कासन की योजना का क्रियान्वयन करती है। इस नाटक में शूर्पणखा की सक्रिय भूमिका है।

लोपामुद्रा—राम अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के आश्रम में दो मिनट के लिए जाते हैं। आशीर्वाद लेकर पुनः लौट आते हैं। लोपामुद्रा साध्वी है तथा सौजन्य की मूर्ति बतलाई गई है।

राजशेखर ने 'बालरामायण' के पात्रों की विशेषतायें अनेक पूर्ववर्ती राम-काव्यों से चुनी हैं। नवीनता को उद्भूत करने के लिए उन्होंने कतिपय पात्रों में एक विशेषता बतलाई है जैसे रावण के चरित्र में शृंगारिक भावनाओं का प्राधान्य, दशरथ में अपौरुष, कैकयी का निर्दोषत्व, आदि।

विद्धशालभंजिका :

नेता—प्रमुख पुरुष पात्र राजा विद्याधरमल्ल है। यह धीरललित नायक[1] है। धीरललित नायक निश्चिन्त होता है। कलाओं में उसकी आसक्ति रहती है।

१. निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्। साहित्यदर्पण परिच्छेद ३-३३।३४

वह सुखी तथा मृदु स्वभाव का होता है। राजा विद्याधरमल्ल, राज्य की चिन्ता से मुक्त हैं। राज्य का सारा भार उसने अपने योग्य मंत्री भागुरायण को सौंप दिया है। निश्चिन्त होकर वह अपना अधिकांश समय प्रमोदोद्यान में वसन्तग्रीष्मादि ऋतुओं की चर्चा करता हुआ, विविध क्रीड़ाओं में रूचि लेता हुआ व्यतीत करता है। वह नायिका मृगांकावली के सौन्दर्य का रातदिन स्मरण करता है, किन्तु अपनी रानी को भी दुःखी नहीं देख सकता। वह उसे भी यथाशक्ति प्रसन्न रखने का प्रयास करता है। विद्याधरमल्ल कलाप्रेमी है, अट्ठारह लिपियों का ज्ञाता है। "काव्य में गाम्भीर्य, एवं छन्दो-रीति-गुणों का विन्यास" उसे शीघ्र ही प्रभावित करता है।

दशरूपककार ने मृदु का अर्थ––शृंगार-प्रधान एवं सुकुमार सत्वाचार बतलाया है––"शृंगारप्रधानत्वाच्च सुकुमारसत्वाचारो मृदुरिति ललितः।"[1] राजा विद्याधरमल्ल अत्यधिक शृंगारी है––उसके अन्तःपुर में हजारों रानियाँ हैं तथापि स्वप्न-द्रष्टा नायिका के लिए वह दुःखी है।

"अन्तेउरिकासहस्सपरिवारस्स महाराअस्स किं तीए विणा विसूरदिति ?"

चण्डमहासेन नामक कुन्तलनरेश की कन्या कुवलयमाला स्नान करके निकली ही थी कि राजा ने उसे देखा और उस पर मुग्ध हो गया।

"चण्डमहासेणो णाम राआ––तस्स दुहिआ कुललयमाला णाम णम्मदा-भज्जुणुतिण्णा देवदिहा हिअअं च से पविट्टा।"

नाटिका के विषय में धनंजय एवं विश्वनाथ का कथन है "अन्तपुर में नायिका को देखने सुनने से आकृष्ट हुआ नायक नायिका से छिपकर डरता-डरता प्रेम करता है"––विद्याधरमल्ल के विषय में यह बात बिल्कुल सत्य है। वह नायिका का रातदिन चिन्तन करता है किन्तु नायिका जैसे ही उससे मिलने आती है और उसे महारानी के आने की सूचना मिलते ही, वह तुरन्त वहाँ से चल देता है।

विभ्रमलेखा : विद्याधरमल्ल की प्रधान महिषी है। वह ज्येष्ठा प्रगल्भा तथा नृपवंशजा है। राजा के शृंगारी स्वभाव को जानकर वह कुवलयमाला का विवाह राजा से कर देती है। परन्तु वह मानवती भी है। राजा के मुख से अस्वाभाविक और अन्यानुरक्ति विषयक संबोधन सुनकर अन्तःपुर को चल देती है।[2] स्नेह पात्र सखियों के सम्मान का भी वह ध्यान रखती है। विदूषक द्वारा मेखला का मजाक उड़ाये जाने पर क्रुद्ध हो जाती है।[3]

१. दशरूपक प्रकाश–१-२।३
२. विद्धशालभंजिका–१-१८।१९
३. विद्धशालभंजिका अंक १-२

उच्चकुल में उत्पन्न होने के कारण सपत्नी के विषय में भी उसके मन में विद्वेष की भावना नहीं है। अतएव वह राजा के प्रिय को अपना प्रिय मानकर कुवलयमाला का विवाह राजा से कर देती है।

"जदो महाउलप्पूसदानें भत्तुणों प्पिग्रं एव्व अप्पणो पिग्रंति"

नायिका—मृगांकावली—

स्यादन्तः पुरसंवद्धा संगीत व्यापृताथवा
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा।
सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्याः त्रासेन शङ्कितः।[१]
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा॥

नाटिका के धनंजय एवं विश्वनाथ द्वारा निर्देशित लक्षण मृगांकावली में पूर्णतः विद्यमान हैं। जिसके शरीर में यौवन अवतरित हो चुका हो, जिसके मन में काम के उन्मेष का प्रारंभ हो रहा हो, जिसे रतिलीला में झिझक होती हो, जिसका प्रणयकोप कोमलता लिये हुए हो और जो अपनी लज्जाशीलता के कारण प्रेम के प्रकाशन में असमर्थ रहे, उसे साहित्यदर्पणकार ने मुग्धा नायिका कहा है। नायिका मृगांकावली अत्यन्त सुन्दरी है। उसके श्याम नेत्र नील कमल को पराजित कर रहे हैं। चन्द्रमा उसके मुख का और कामदेव का धनुष उसकी भौहों का मित्र है। शरीर रूप का आधार है। दूध से भी वढ़कर स्निग्ध शोभावाला उसका छरहरा अंग है। शंख को लज्जित करने वाला कण्ठ है, नायक विद्याधरमल्ल उस स्वप्न-दृष्टा नायिका का वर्णन करता है:—

तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशि-कथा हा हेम ? सा चेद् द्युति—
स्तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्तच्चेत् स्मितं का सुधा ?
धिक्कन्दर्प धनुर्भ्रुवो च यदि ते किं वा वहु ब्रूमहे
यत् सत्यं पुनरुक्त-वस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः॥

यदि उसका मुख है तो चन्द्रमा की शोभा व्यर्थ है। उसकी शरीरकान्ति की तुलना में सुवर्ण निष्फल है। उसकी भौहों के सामने कामदेव का धनुप क्या है ? अधिक क्या कहें—सचमुच इन उपलव्ध वस्तुओं का पुनर्निर्माण करने से विधाता का सृष्टिक्रम व्यर्थ सा लगता है।[२]

मृगांकावली नायक विद्याधरमल्ल में अनुरक्त है। अतः उससे मिलने के लिए सदा तत्पर रहती है। राजा के विरह में वह महल में उद्विग्न होती है। भवन को भी

१. साहित्य दर्पण अ० ६ पृ० २६९-२७२, दशरूपक तृतीय प्रकाश पृ० ४३।४८
२. विद्धशालभंजिका अंक १-४४

छोड़ देती है। चन्द्रमा की प्रभा से द्वेष करती है। वस्त्राभूषण को विष-सा समझती है। वह नायक के रूप में, ध्यान में, मग्नचित्त होकर कमलिनी के नूतन कोमल पत्रों की शय्या पर पड़ी रहती है।[१]

उसका मुख पके तालीपत्र की भाँति पीला हो गया है, नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगी रहती है। साँसें लम्बी चलती हैं। सारे शरीर ने कदली की सी पीतिमा धारण कर ली है। शरीर दुर्वलता की ओर वढ़ता जा रहा है। इतना होते हुए भी वह लज्जा के कारण अपना प्रेमभाव स्पष्टतः प्रकट नहीं कर पाती।

माधवीलता मण्डप में जव नायक नायिका से मिलता है तव मुग्धा होने के कारण प्रेम के साथ ही वह किंचित् भय भी व्यक्त करती है। सपत्नियों के प्रति उसमें ईर्ष्याभाव नहीं है। कुवलयमाला का राजा से पाणिग्रहण होने के वाद भी वह प्रसन्नता से उसे गले लगाती है।

"कुवलयमाले। परिरम्भसु मं, कलतं भविअ सवती संवुता।"[२]

इस प्रकार नाटिका की नायिका के सारे लक्षण मृगांकावली में पाए जाते हैं।

विदूषक—चारायण—नाट्यशास्त्र में विदूपक का वर्णन है—

"वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः
खलतिः पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः ।।[३]

इसमें विदूपक की शारीरिक वाचिक या मानसिक क्रियाओं का अंकन है। साहित्य दर्पणकार कहते हैं।

कुसुम-वसन्ताद्यमिधः कर्मवपुर्वेष-भाषाभिः
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकःस्यात् स्वकर्मज्ञः।[४]

विदूषक वह है जिसका नाम किसी फूल अथवा वसन्त आदि पर रखा जाता है, जिसमें अपने कर्म, अपने शरीर, अपनी वेशभूषा और अपनी वोलचाल आदि के द्वारा औरों को हँसाने की क्षमता रहती है, जिसे दूसरों से झगड़ने में आनन्द मिलता है, जो कि अपने विदूषण कार्य में कुशल होता है। शृंगारी नायक के सहायकों में यह प्रमुख है।

इस नाटिका में विदूषक का नाम चारायण है। राजा के सहायक के रूप में इसने अपनी भूमिका कुशलता से निभाई है। इसके अतिरिक्त यह नायक का अन्तरंग मित्र भी है। राजा को विक्षिप्त देखकर सहानुभूति-पूर्वक उसके मन की

---

१. विद्धशालभंजिका—३।२
२. विद्धशालभंजिका—४-२२।२३
३. नाट्यशास्त्र—३५-५७
४. साहित्यदर्पण—३।४२

वात जानने का प्रयत्न करता है। राजा भी उसे अपना रहस्य प्रकट कर मन हल्का कर देता है।

विदूषक !—अहो अस्स हिअअक्खेवो ता किं णु खु एदं—

ता जथापत्[illegible]युथं आचक्खं—तो कज्जरहस्सेण संभावेदु मं पिअवअस्सो।'
राजा—अये चारायण। सखे। कथं न कथयाभि, लघूभत्सुहृत्संचारितरहस्यं हि चेतः संविभक्तचिन्ताभारमिव भविष्यति।[1]

वह भी राजा को सदा निष्पक्ष सलाह देता है। राजा के अनागरिकत्व से पीड़ित रानी अप्रसन्न होकर चली जाती है। राजा उसकी स्थिति पर ध्यान नहीं देता तव विदूषक स्पष्ट शब्दों में उसकी भर्त्सना करता है। रानी के प्रति उसके मन में आदर है किन्तु जव रानी पक्षपात करती है तव वह उसके क्रोधित होने की या रोने की भी पर्वाह नहीं करता।

चारायण जाति का ब्राह्मण है। वह सदा यज्ञोपवीत और हाथ में वक्रदण्ड धारण किये रहता है।

एक दासी विदूषक को दुर्वासा कहती है जिससे उसके क्रोधी होन का तथा मलिन वस्त्र धारण करने का संकेत मिलता है। संभवतः चारायण विरूप होगा। राजा और विदूषक के कथन से इसकी पुष्टि होती है:—

राजा—सखे। त्वमेषोऽभिलिखितः।

विदूषकः—पाहं जाणिदो आलिहि दुं। ब्रह्मणी जाणादि जविदसोहं, सा मं भणदि तुमं पच्चक्खो कामदेवात्ति।

राजा—अए किमुपवने शुको वदति ?

विदूषकः—कि विअ ?

राजाः—अस्ति भवान् देवः किं पुनर्भृगिरिटिः।

विदूषकः—को दुज्जणवअणाणं कण्णं देइ।

वह भीरु एवं भोजनभट्ट है। मोदक उसे अधिक प्रिय है—एसो सिविण अलद्धहिं मोदएहिं गामं उपगिमंतसि[2] —। वह उपमायें भी भोज्य पदार्थों की देता है। सिन्दुवार पुष्प उसे भात, अशोक के गुच्छ नव-निर्मित घृतं, वासन्ती पुष्प मसूर तथा नवमल्लिका दधि के समान दिखती हैं। "संवन्धि जणणुरूपं भुज्जं किंपि किदं"।[3]

१. विद्धशालभंजिका—१-१४।१५
२. कर्पूरमंजरी १-२६, २७, २९, ३२, ३३

वह भीरुता की व्याधि से भी ग्रस्त है। उसे सन्ध्या के समय निर्जन चौकी के पास ब्रह्मराक्षसों की बोली सुनाई देती है। सन्ध्या भूत-पिचाशों का आवास स्थान है। इस धारणा से वह अत्यधिक परेशान दिखाई देता है।

इस नाटिका से भागुरायण नामक मंत्री को निकाल दिया जाय तो इस नाटिका का आरम्भ और अवसान प्रस्तावना के साथ ही साथ हो जायगा। मृगांकावली तथा राजा के पारस्परिक अनुराग के लिए उचित वातावरण का निर्माण भागुरायण ही के माध्यम से होता है। वस्तुतः इस प्रकार वह राजसचिव का दायित्व निभाता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि मृगांकावली से विवाह करते ही राजा अनायास चक्रवर्ती बन जायगा। अन्त में वह इस कार्य में सफल होता है। वह बुद्धिमान और नीतिज्ञ है। उसकी नीतिमत्ता से ही पश्चिम में गंगा के उद्गम से लेकर पूर्व में ताम्रपर्णी तक का साम्राज्य कलचुरितिलक केयूरवर्ष के अधीन हो गया।

चेटीवृन्द--नायक नायिका एवं देवी की परिचर्या का कार्य चेटीवृन्द करता था। मृगांकावली की सहायिका विलक्षणा है। रानी की परिचारिका का कार्य मेखला करती है। कुरंगिका, तरंगिका और सुलक्षणा सन्देश-वहन में निपुण हैं। नाटिका में विलक्षणा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अन्य पात्र--सन्देशवाहक प्रतीहारी, लेखवाहक कुरंगक, विदूषक पत्नी ब्राह्मणी एवं कुवलयमाला कुछ समय के लिए रंगमंच पर दिखाई देते हैं।

कुवलयमाला कुन्तलराज चण्डमहासेन की पुत्री है। राजा उस पर आसक्त है, किन्तु कुवलयमाला को हम केवल विवाह के अवसर पर ही रंगभूमि में देखते हैं।

कर्पूरमंजरी :

दृश्य काव्य में कथानक का सौन्दर्य पात्रों के चरित्र-चित्रण से निखरता है। इस नाटक में एक भी पात्र अनुपयुक्त या अनावश्यक नहीं है। राजा चण्डपाल, रानी विभ्रमलेखा, नायिका कर्पूरमंजरी, विदूषक कपिंजल, भैरवानन्द, विचक्षणा, आदि की गणना प्रमुख पात्रों में की जा सकती है एवं सुलक्षणा प्रतीहारी की गौण पात्रों में।

नायक : चम्पा नगर का स्वामी चन्डपाल इस सट्टक का नायक है। वीर ललित नायक के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। वह सौन्दर्य प्रेमी है। वसन्त का

प्राकृतिक सौन्दर्य उसमें नूतन उत्साह का संचार करता है। वसन्त-विषयक उसके उद्‌गार देखिए:—

> पिए विब्भम लेहए—एक्को अहं वड्ढावओ तुज्झ। 'विब्भमगव्वप्पअट्ठाविअं तरूणीणं, वहावअं मलअमारूदं दोलिदाणच्चणीणं, चारुप्पपंचिद पंचमं, कलअंठि कंठकंदलेसु कंदलिअकंदप्पककोअंड दंडखडिद चंडिमं, सिणिद्धवंधुं वसुंधरा पुरंधीरविसारिअप्पसिदिप्पमाणे अच्छिणी महुच्छवं अहिच्छं पेक्खदु।

प्रिय विभ्रमलेख। वसन्त वर्णन से मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ।

तरुणियों में विलास और गर्व को उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं में लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचानेवाला, कोकिलों के कण्ठ समूह में पंचम स्वर प्रेरित करने वाला, नव प्रादुर्भूत कामदेव के धनुष के दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रिय-संबंधी कोप को दूर करने वाला, वन्धु-वान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला, वसुन्धरा रूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव अपनी आंखों को हथेली वरावर फैलाकर इच्छानुसार देखो।

वह सुन्दरी नायिका के प्रथम दर्शन में ही उस पर अनरक्त हो जाता है और "अहह अच्चरिअं अच्चरिअं" कहकर प्रशंसात्मक विस्मय प्रकट करता है।

वह कला का भी पारखी है। मित्र विदूषक और विलक्षणा के कवित्व की रुच्या-नुकूल सराहना तथा अवसर आने पर त्रुटियों का संकेत उसकी मर्मज्ञता को प्रकट करता है। श्रृंगारिक वर्णनों में[1] उसने जिन छन्दों का प्रयोग किया है, तथा जिस शैली को अपनाया है वह उसकी विद्वत्ता की द्योतक है। वह विनोदी एवं विलासी है। प्रारम्भ से अन्त तक हम उसे प्रमोदवनों, लताकुंजों, या रत्न-चतुष्किका में पाते हैं। नायिका के दर्शन न होने से विरह वेदना की अनुभूति करने वाला यह नायक वास्तव में श्रृंगारी है।

विभ्रमलेखा : विभ्रमलेखा प्रधान महिषी या पट्टरानी है। स्वकीया मध्या नायिका से सारे गुण इसमें विद्यमान हैं। मध्या नायिका विचित्र रति-लीलाओं में निपुण होती है। उसकी काम पिपासा बढ़ी हुई दिखाई देती है। उसका यौवन विकसित रहता है। प्रणयालाप में उसे विशेष हिचक नहीं होती और न उसे रति में अधिक लज्जा का अनुभव होता है। वसन्त के प्रति उसके उद्‌गारों से प्रतीत होता है कि वह काम की क्षुधा से पीड़ित है। वह कहती है—

१. साहित्य दर्पण ३।५९

माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठिं तरंगुत्तरं
तारुण्णं दिग्रहाइ पंच दह वा पीणत्थणत्थंभणं।
इत्थं कोइलमंजु सिंजणमिसा देग्रस्स पंचेसुणो
दिण्णा चितमहूसवेण मुग्रणे ग्राणव्वसंव्वकसा ।[1]

मन छोड़ो, प्रियजनों की प्रेमभरी दृष्टि से देखो, स्तनों के उभार से युक्त यह यौवन केवल पाँच दस दिन तक ही रहने वाला है। कोकिल की मधुर कूक के द्वारा कामदेव की इस सर्वव्यापी ग्राज्ञा को चैत्रमहोत्सव घोषित करता-सा जान पड़ता है।

विदूषक एवं विचक्षणा के वार्तालाप में भाग लेना उसकी विनोदशील वृत्ति का प्रमाण है। सज्जनों के प्रति स्नेहभाव से उसकी नारी सुलभ सद्भाव-प्रियता प्रदर्शित होती है। कर्पूरमंजरी को ग्रपनी मातृष्वसा जानकर वह इतनी ग्रधिक ग्रानंदित होती है कि उसे छोड़ना नहीं चाहती। किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि कर्पूरमंजरी प्रणय-मार्ग में उसकी प्रतिद्वन्द्वी है तो वह उसे कठोर से कठोर दण्ड देने में भी हिचकिचाती नहीं। रानी प्राकृत स्त्रियों की भांति ग्रन्धश्रद्धालु है ग्रौर भैरवानन्द को मुँहमाँगी, दक्षिणा (ग्रपनी सपत्नी को ग्रामंत्रित करना) देती है। वह ग्रपने हाथों से राजा का विवाह रचाती है। उसे चक्रवर्ती देखने की महत्वाकांक्षा उसके मन में हैं।

कवि ने विभ्रमलेखा का चरित्रचित्रण उचित ढंग से किया है।

कर्पूरमंजरी : कर्पूरमंजरी ग्रपूर्व सुन्दरी है। उसके ग्रोठ ग्रत्यन्त राग-रंजित हैं, इकहरी देह सुवर्ण की तरह कान्तिमान् है, ग्राँखें द्वितीया के चन्द्रमा से भी उज्ज्वल हैं। केश काजल से काले हैं। हिरणी की तरह चंचल नयनों वाली सुन्दरी कर्पूरमंजरी है। प्रथम दर्शन में ही वह नायक के प्रति पूर्णतः ग्राकर्षित हो गई है ग्रौर उसके ग्राँखों से ग्रोझल होते ही व्याकुल हो उठती है। राजा उसकी बहिन का पति है यह ज्ञात होते हुए भी वह प्रणयव्यापार को ग्रागे बढ़ाने के लिए उत्सुक दिखाई देती है। नाटक में उसका ग्रभिनय पक्ष नगण्य है। समूचे नाटक में वह ग्राठ या दस वाक्य बोलती है। उसका केवल 'प्रेमिका' रूप ही नाटक में चित्रित हैं। विवाह से पूर्व भी हम उसे कभी स्वजनों का स्मरण करते हुए नहीं पाते।

विदूषक-कपिञ्जल : इस सट्टक में ग्रन्य पात्रों की ग्रपेक्षा विदूषक का चित्रण ग्रधिक ग्रच्छी रीति से किया गया है। राजा का वह ग्रभिन्न-हृदय मित्र ही नहीं, कामतन्त्र-सचिव भी है। नायिका के प्रवेश होने के बाद उसका नायक से साक्षात्कार

१. कर्पूरमंजरी १।१८

कराने में उसका प्रमुख हाथ है। वह तीखे व्यंग्यों से शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। राजा-रानी को कटु शब्द सुनाने में भी कसर नहीं रखता किन्तु अवसर आने पर उस विषमता को भूलकर मित्रता स्थापित कर लेता है।

विदूषक:—ईरिसं राअउलं दूरे वज्जीअदि, अहि दासी बम्हणेण समं पडिप्पद्धा करेदि।—गुण आगमिस्सं अण्णे को वि पिअवअस्सो अप्पेसीअदु—

इन वचनों के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के आगमन पर सारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध में वह ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य से प्रतीत होते हैं, किन्तु वह उच्चस्तरीय संवाद में भी दक्ष है। यह वात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसंग एवं निदाध में उपयुक्त सामग्री के महत्व प्रसंग में दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण वह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उक्तियाँ सट्टक में हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वों में प्रमुख है।

भैरवानन्द : यह पाखण्डी चरित्र सट्टक में सोद्देश्य अवतरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथों में है। अभिसंधि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को लाता है और नायक से विवाह करवाता है। वह दम्भी, आत्मवंचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक हैं—

रंडा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो॥

रण्डा, चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप में ग्रहण करने की शिक्षा देने वाले एवं मद्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुंजी भी वही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का कहीं पता ही न चलता। वस्तुतः नायक नायिका का प्रणय ही इस सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि से पाखण्डी एवं दम्भी होत हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गौण पात्रों में विचक्षणा, सुलक्षणा, सारंगिका की गणना की जा सकती है। विचक्षणा एवं सारंगिका रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एवं कर्पूरमंजरी की भी सहायिका है। कर्पूरमंजरी के प्रत्येक कार्य में वह सहायता करती है।

कर्पूरचण्ड और रत्नचण्ड वन्दी हैं, जो समय समय पर सन्ध्या, माध्यन्दिन एवं चन्द्रोदय आदि की सूचना देते हैं।

इस सट्टक के सभी पात्र अपना अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। इन पात्रों की सहायता से कथानक चक्र अपने लक्ष्य को प्राप्त करता दिखाई देता है। राजशेखर की चरित्र-सृष्टि के क्रम पर दृष्टिपात करने पर हम देख सकते हैं कि उनके पात्र या तो परिस्थितियों को वनाते हैं या परिस्थितियां उन्हें गढ़ती हैं। इनमें विद्धशालभंजिका का मन्त्री भागुरायण एवं कर्पूरमंजरी का भैरवानन्द प्रथम श्रेणी में आते हैं। उक्त कृतियों के नायक नायिका द्वितीय श्रेणी में। यद्यपि इन कृतियों के विदूषक एवं महादेवियाँ ऐसे पात्र हैं जो वने वनाये चौखटे में ठीक वैठ जाते हैं तथापि राजशेखर की प्रचुर पात्र-सृष्टि सरस और संतुलित है।

राजशेखर के रूपकों में रस-परिपाक :

राजशेखर की कृतियों में नवरसों की अभिव्यंजना मिलती है। 'वालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने "वीराभ्दुतप्रायरसप्रवन्धे" कहकर उक्त प्रवन्ध में वीर और अद्‌भुत रस को प्राथमिकता दी है तथापि उसमें अन्य रसों का भी परिपाक दिखाई देता है। उनकी अन्य दो कृतियाँ 'कर्पूरमंजरी' एवं 'विद्धशालभंजिका' शृंगार रस से परिपूर्ण हैं। अतः हम कह सकते हैं कि इनकी कृतियों में प्रमुख रूप से जिन रसों की अभिव्यंजना है—वे हैं शृंगार वीर और अद्‌भुत। इसके अतिरिक्त प्रसंगानुसार करुण, वीभत्स, भयानक, रौद्र, हास्य और शान्त रस की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

शृंगार : शृंगार के दो पक्ष होते हैं—संयोग और वियोग। संयोग में नायक-नायिका का मिलन सुखात्मक अनुभूति प्रदान करता है। वियोग में प्रिय के अभाव में हृदय तीव्र वेदना से संतप्त रहता है।

वालरामायण नाटक में खलनायक रावण आरम्भ से अन्त तक सीता के विरह से व्याकुल है। अतः उसकी वेदना एवं विलाप विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति करते हैं। सीता के प्रथम दर्शन से ही वह कामपीड़ित हो उठता है। फलतः उसके अभाव में प्रकृति के वे उपादान जिनमें सीता के अंगों का साम्य उसे दिखता है, उसे सीता जैसे ही प्रतीत होते हैं।

यथा—

इयं भृंगश्रेणी न पुनरलकानां विरचना ।
इदं हेमाम्भोजं विकसति न सीता मुखमिदम् ॥[1]

अर्थात् यह भ्रमरपंक्ति है सीता की अलकरचना नहीं। यह सुवर्णकमल खिला है, सीता का मुख नहीं—

सारंग-दृष्टिलसिते कलभाषिते च ।
पुंस्कोकिल-स्मितसरोरुहसौरभे च ॥[2]

मृगनयनों में दृष्टि की कान्ति, कोकिलकण्ठ में कलभाषित एवं सरोरुह के सौरभ में स्मित की छटा देखकर उसे यत्किंचित संतोष मिलता है, लेकिन—

इयं लता कापि निरन्तरच्छदा ।
प्रसूनगन्धाहृतषट्पदावलिः ।
अहो दधाना हरितं नवांशुकम्
न मैथिली नीलदुकूलगुण्ठना ॥[3]

नील-परिधान पहनने वाली मैथिली कहाँ? यह तो भृंगों से आवृत लता है। हृदय को धीरज दिलाने वाली भ्रान्ति नष्ट हो गई, विरस और तीव्र हो रहा है। इस प्रकार रावण की सारी उन्मादावस्था एवं प्रलाप विप्रलम्भ शृंगार की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

बालरामायण के नायक रावण, कर्पूरमंजरी के नायक चण्डपाल और नायिका कर्पूरमंजरी तथा विद्धशालभंजिका के नायक विद्याधरमल्ल और नायिका मृगांकावली को विरह की समस्त दशाओं से गुजरना पड़ता है। देखिए, स्मृति की दशा—

न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्थली
स्तोकोद्वेल्लवली-तरंगमुदरं कण्ठस्तिर्यक् स्थितः ।
वेण्या पुनराननेनन्दुभ्रमणे लब्धं स्तनालिंगनम् ॥
जातास्तस्या श्चतुर्विधा तनुलता निध्याययन्त्या माम् ॥[4]

उन्माद की अवस्था भी दर्शनीय है—

आस्थानीजनलोचनानां बहला लावण्यकल्लोलिनी—
लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपारस्थिता

---

१. बा० रा० ५।६४
२. बा० रा० ५।६५
३. बा० रा० ५।७२
४. क० म० २।१

नेत्रेन्दीवरदीर्घिका मम पुनः श्रृंगारसञ्जीवनी
संजाताथ मन्मथेन धनुपि तीक्ष्ण शरः पुङ्खितः ॥ [1]

व्याधि का चित्र द्रष्टव्य है—

तापोम्भः प्रसृतिम्पचः प्रचयवान् वाष्पःप्रणालोचितः
श्वासाः प्रेङ्खितहारयष्टिलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः ।
किं वान्यत् कथयाभि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने
हस्तच्छन्ननिवारितेन्दु महसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ॥[2]

विरह में शीतल चन्द्रमा अग्नि-सा दाहक प्रतीत होता है। देखिए नायिका मृगांकावली की दशा—

'सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं ।
आरात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेशं विषं मन्यते
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारशय्यातले
संकल्पोपनमत्तदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा ॥[3]

मृगांकावली महल में रहने से उद्विग्न होती है। उपवन को छोड़ देती है। चित्रकेलि नामक वासगृह में भी वह वहुत दुःखी है। वस्त्राभूषण को भी विष समझती है। नायक की कल्पना में खोयी हुई वह कमलिनी के पत्तों पर पड़ी रहती है।

वह चन्द्र को कोसते हुए कहती है कि हे अधम चन्द्र ! प्रिय की विरहाग्नि से संतप्त मेरे शरीर का स्पर्श विनोदार्थ भी मत कर।

प्रियविरहमहोष्मा मर्मरामङ्गरेखा
मयि हतक हिमांशो। मा स्पृश क्रीडयाऽपि
इह हि तव लुठन्तः प्लोषपीडां भजन्ते
दरजरठमृणालीकाण्डमुग्धा मयूखाः[4]

विरहव्यथा के असह्य होने पर वह रोने लगती है। नायिका का यह रुदंन विप्रलम्भ शृंगार को पुष्ट करता है।

नायिका कर्पूरमंजरी की अत्यधिक चिन्तनीय दशा यहाँ दीख पड़ती है—

सह दिवसणिसाहिं दीहरा सासदण्डा
सह मणिवलएहिं वाहधारा गलन्ति ।
तुह सुहअ विओए तीअ उव्विंविरीए
सह अ तणुलदाए दुव्वला जीविदासा ॥[5]

---

१. क० म० २।३ २. वि० भ० २।२१ ३. वि० भ० ३।२
४. वि० भ० ३।२३ ५. क० म० २।९

अर्थात् विरह में दिन और रात जितने लम्बे हो गए हैं वह उतनी ही लम्बी-लम्बी सांसें छोड़ रही है। कृशता इतनी अधिक बढ़ गई है कि सतत झरने वाले आँसुओं के साथ मणिकंकण भी गिर रहे हैं। और क्या कहें, शरीर की बढ़ती हुई दुर्बलता के साथ उसकी जीविताशा भी घटती जा रही है।

विप्रलम्भ शृंगार का कितना मधुर परिपाक है? विरह की अन्तिम दशा मृत्यु को स्पर्श करने की ओर अग्रसर हो रही है।

करुण-रस : राजशेखर करुण रस के आविष्करण में भी सिद्धहस्त हैं। करुण रस के अनुभावों का चित्रण निम्न पद्य में कितना मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी है।

राजप्रसादों में पली हुई कोमलांगी सीता अयोध्या से बाहर तीन चार पग ही चलती है कि थककर राम से पूछती है कि 'अभी और कितना चलना है।' फलतः राम का हृदय द्रवित हो जाता है। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। कि ना दारुण प्रसंग है—

'सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी।
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता॥
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा।
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥[1]

महाकवि तुलसीदास ने इस पद्य का छायानुवाद इस प्रकार किया है—

पुरते निकसी रघुवीरवधू धरि धीर दये मग में डग द्वै,
झलकी भरि भालकनी जलकी पट सूख गये अधराधर वै
फिरि बूझति है चलनो अब केतक पर्णकुटी करिहौं कित ह्वै
सिय की लखि आतुरता पिय की अँखिया अति चारु चलीं जल च्वै।

सीता की विदाई के अवसर पर सांसारिक विषयों से विमुख विश्वामित्र की भी दशा आकुल हो जाती है। आँखों से अश्रु की अविरलधारा वह चलती है—

सांसारिक दचोभिरते सीताविश्लेषजन्मभिः।
द्रवतीव मनो वाष्पैर्विश्वामित्रमुनेरपि॥[2]

रावण के हृदय में भी शोक की अनुभूति द्वारा कवि ने करुण रस की चमत्कारी व्यंजना की है।

समस्त परिवार के विनाश से रावण को असह्य दुःख होता है। वह बारंबार मूर्छित हो जाता है और चेतना आने पर साधारण व्यक्ति की तरह क्रन्दन करने लगता है।

---

१. बा० रा० ६।३४ २. बा० रा० ४।४६

रावणः—साक्षम—

मूर्च्छानिमत्प्लवगपुङ्गवरक्तसिक्तः
स्वर्दन्तिदन्तवलयैः कृतकङ्कणश्रीः ।
आमूलतो मदनुजस्य भुजोभुजंगः
भीमाकृतिर्झटिति हा नृशरेण लूनः ।[1]

इति मूर्च्छति—

रावणः—हा वत्स । कां दशां दशकण्ठेन नीतोऽसि ।

इति रोदिति—

मूर्च्छा, चेतना एवं क्रन्दन का यह क्रम किस कठोर हृदय को द्रवित नहीं करता ?

सीता को अग्नि में प्रवेश करते देख रावण-पत्नियों के हृदय दलित हो गए । रावण की मृत्यु के पश्चात् शोकाभिभूता लंका का प्रलाप करुण रस की चरम सीमा उपस्थित करता है ।

वीररस—राजशेखर ने वीररस का सजीव वर्णन किया है । वीरों का गर्वोक्ति-गर्जन, अस्त्रों का झंकार, स्यन्दनों की खनखनाहट और वाणों की सनसनाहट ये सव हमारे सामने युद्धभूमि का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं ।

युद्ध से पूर्व राम लंकेश्वर को अंतिम वार चेतावनी दे रहे हैं—

'भो लङ्केश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते
कोऽयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचिद्गतम् ।
नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठासृजा पङ्किलः ।
पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृतः ।।[2]

अर्थात् अरे लंकापते ! सीता को दे दो । यह राम तुमसे स्वयं याचना कर रहा है तुम्हें यह कैसा भ्रम हो गया है । नीति मार्ग का अनुसरण करो । अभी भी कुछ विगड़ा नहीं है । अन्यथा खर-दूषण और त्रिशिरा के रुधिर से लिप्त धनुष की ज्या पर चढ़ा हुआ वाण इसे सहन नहीं कर सकेगा । राम को लङ्केश्वर के प्रति कही गई यह उक्ति वीररस के परिपाक का सुन्दर उदाहरण है ।

---

१. वा० रा० ८।८०   २. वा० रा० ९।१९

इसी प्रकार सिंहनाद और राम, राम और परशुराम तथा रावण और परशु-राम के संवाद वीररस से पूर्ण हैं।

हास्य : राजशेखर ने अपनी नाटिकाओं में अनेक स्थानों पर हास्य रस का पुट दिया है। इनके हास्योत्पादक पात्र विदूषक चारायण और कपिंजल हैं। दोनों ब्राह्मण जाति के होते हुए भी निरक्षर भट्टाचार्य हैं। दोनों की विरूपता हास्य का कारण बन जाती है।

अद्भुत : योगी भैरवानन्द द्वारा नायिका का अवतारण, सीता के मायावी मस्तक का क्षेपण एवं विविध अस्त्रों का प्रयोग अद्भुत रस की व्यंजना करता है।

वीभत्स : ताड़कावध प्रसंग वीभत्स रस को पुष्ट करता है।

युद्ध की विभीषिकाएँ, भयानक, रस, परशुराम एवं राम का वार्तालाप रौद्र रस को तथा आश्रम का पावन वातावरण शान्त रस को पुष्ट करता है। इस प्रकार राजशेखर की रचनाओं में रस का यथावसर प्रसंगानुकूल परिपाक दृष्टिगत होता है।

राजशेखर का प्रकृति-चित्रण :

राजशेखर की नाटिका एवं सट्टक में अन्तः पुर की प्रणयलीला का चित्रण है। इसलिये सामान्यतः उसका वातावरण प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र से भिन्न है। प्रकृति के केवल उसी रूप का दर्शन हमें मिलता है जिस में उसे स्वच्छन्द विकास का अवसर नहीं और जो मालियों द्वारा नियंत्रित होकर राजोद्यान तक ही सीमित है। यह प्रकृति राजा के प्रेम-व्यापारों की उद्दीपिका एवं प्रेम की क्रीड़ास्थली है।

राजशेखर कुशल शिल्पी हैं। उनकी कुशलता का परिचय निम्न सूर्यास्त-वर्णन देखिये—

लोआणं लोअणेहिं सह कमलवणं अद्धणिद्धं कुणंतो
मुंचंतो तिव्वभावो सहअ सहरिसं माणिणीमाणसेहिं
मंजिठ्ठा रत्तसुत्तच्छविकिरणचओ चक्कवाएक्कमित्तो
जादो अत्थाचलत्थो उवह दिणमणी पक्कणारंगपिंगो ॥[1]

अर्थात् मंजिष्ठा राग से रंजित सूत्रों की तरह कान्तिमान, किरणों को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियों का परममित्र, तथा पकी हुई नारंगी के समान लाल और

१. कर्पूरमंजरी २।५०

पीला सूर्य लोगों की आँखों के साथ साथ कमलवन को निमीलित सा करता हुआ मानिनियों के मान के साथ साथ अपने तेज को घटाता हुआ एकदम अस्ताचल की ओर जा रहा है ।

प्रकृति के प्रभाव और सौंदर्य का स्वाभाविक चित्रण उक्त श्लोक में हुआ है तथा प्रकृति के माध्यम से चण्डपाल एवं कर्पूरमंजरी के वियोग का संकेत भी ।

राजशेखर की लेखनी तूलिका की भाँति उद्देश्यों के सजीव चित्र आँकने में समर्थ है । वनप्रदेश का वर्णन देखिये—

ताम्बूलीनद्धमुग्धक्रमुक-तरुतलप्रस्तरे सानुगामिः
पायं पायं कलाचीकृतकदलदलं नारिकेलीफलाम्भः ।
सेव्यन्तां व्योमयात्राश्रमजलजयिनः सैन्यसीमन्तिनीमि ।
दात्यूह-व्यूहकेली-कलित-कुहकुहारावकान्ता वनान्ताः॥[१]

अर्थात् पान की वेलों से घिरे हुए सुपारी के वृक्षों के नीचे पड़े हुए विस्तरों के ऊपर वैठकर केले के पत्तों के दोने वनाकर नारियल के फलों का पानी पी पीकर लंका से मिथिला तक आकाश मार्ग से की गई यात्रा के कारण उत्पन्न पसीने को सुखा देने वाले और कौओं की क्रीड़ा के काँव काँव से गूंजते हुए सुन्दर वन प्रदेशों का उपयोग हमारी सेना की महिलायें अपने सहचरों के साथ करें ।

यहाँ वन प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा अत्यन्त मादक है अतः प्रणयक्रीड़ा का उद्दीपन कर रही है ।

राजशेखर द्वारा प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का चित्र चन्द्रोदय के एक वर्णन में लीजिये—

अन्धकार के लगातार बढ़ने से भूमण्डल मलिन और वृक्ष की तरह नीला दिखाई देता है । तव पूर्व दिशा चाँदनी के कारण नये भोजपत्र के समान पीली पड़ गई है । मुचुकुन्द फूल की केसर के समान शोभा वाली किरणों को वरसाता हुआ चन्द्रमा धीरे धीरे अपनी कलाओं से पूर्ण हो गया है ।[२]

भूगोले तिमिराणुवन्धमलिणे भूमीहरे व्व ट्ठिदे ।
संजादा णवभुज्जपिंजरमुही जोण्हाइ पुव्वा दिसा ॥
मुंचंतो मुचुकुदकेसरसिहासोहाणुकारे करे ।
चंदो एक्ककलाकमेण अ गदो संपुण्णविवत्तणं ॥

१. वालरामायण १।६३ २. कर्पूरमंजरी ३–२५

कुंकुम से रहित, चन्दनविहीन दशो दिशाओं को सजाने वाली, कंकणरहित, विना कुण्डल की, संसार की शोभा लोगों को तृप्त एवं मुग्ध करने वाली कामदेव की अस्त्रभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश में इकट्ठी हो रही हैं ।

अकुंकुममचंदणं दस दिसा वहूमंडणम् ।
अकंकणमकुंडलं भुवनमंडलीभूसणम् ।।
असोसणममोहणं मअरलंछणस्साउहं ।
मिअंककिरणावली णहअलम्मि पुंजिज्जदि ।।[1]

मेघों से वरसती, उन्मुक्त धाराओं की भाँति चन्द्रमा की किरणें दिशारूपी सुन्दरियों के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप करती हुई सी दिखाई देती हैं । सारे संसार के मन को प्रसन्न करने वाली चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चाँदनी फैल रही है । ये चन्द्रकिरणें तीनों लोकों में काम का उद्दीपन कर रही हैं ।

दिसअवअंसो नहसरहंसो ।
णिहुअणकंदो वट्टइचन्दो ।[2]
मंडले ससहरस्स गौरए दंतपंजरविलासचोरए ।
भादि लांछणमओ फुरंतओ केलि कोइलतुलं धरंतओ ।।[3]

चन्द्रमा की रश्मियों से आलोकित पूर्व दिशा के लिये भोजपत्र के समान पीत होने का आरोप, दिशाओं के लिये सुन्दरी का उपमान, आकाश में सरोवर एवं चन्द्र पर लाञ्छन मृग एवं केलि कोयल का अध्यारोप कवि की व्यापक कल्पनाशक्ति को व्यक्त कर रहा है ।

विविध ऋतुओं का भी अत्यन्त चित्रात्मक, रम्य और कल्पनात्मक वर्णन राजशेखर ने किया है । स्थानाभाव के कारण हम केवल यहाँ उनके द्वारा वर्णित वसंत ऋतु के कतिपय प्रसंगों को उद्धृत करना ही पर्याप्त समझते हैं क्योंकि वसन्त का वर्णन शृंगारी कवि की रुचि और रागात्मकता के साथ ही उसके सूक्ष्म निरीक्षण को भी व्यक्त करता है ।

तरुणियों में विलास और गर्व को उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं से लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचाने वाला, कोकिलों के कण्ठसमूह में पंचम स्वर को प्रेरित करने वाला, सद्यःजाग्रत कामदेव के धनुष दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रियसंवन्धी कोप को दूर करने वाला, वन्धुवान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला,

---

१. कर्पूरमंजरी ३–२६
२. कर्पूरमंजरी ३–२९ ।
३. कर्पूरमंजरी ३।३१

वसुन्धरारूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव आंखों को हथेली के बराबर फैला-फैलाकर देखने योग्य है ।

इस ऋतु में कुंकुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलों की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है । किंचित् विलोये हुए दुग्ध की तरह सुन्दर मल्लिका भी खिल उठी है । मूल भाग में कालेवर्ण का तथा अग्रभाग में भौंरों से युक्त पलाश कुसुम ऐसा लगता है जैसे कि इसके दोनों ओर दो भौंरे बैठे हों और इसका रसपान कर रहे हों ।

वसन्त ऋतु में पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलों को रोमांचित करने वाली, कांची देश की कामिनियों के प्रिय संबन्धी प्रणयकोप को सायं प्रातः भंग करने वाली, चोल देश की चपल नारियों को संभोग के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपाश को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अपने आलिंगन पाश में बाँधती हुई मलयाचल की ठन्डी हवायें चल रही हैं ।

वसन्त में मलयाचल की हवायें लंका नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओं को हिलाती हुई, अगस्त्य ऋषि के आश्रम में अर्थात् दक्षिण दिशा में मन्द मन्द हिलती हुई, चन्दन और कर्पुर की लताओं के सौरभ से युक्त कंकोली लताओं को कँपाती हुई, ताम्बूलवल्लियों को मन्द मन्द नचाती हुई और ताम्रपर्णी नदी के जल का स्पर्श करती हुई हवा वह रही है ।

यह वर्णन जितना सजीव है उतना ही यथार्थ और उतना ही दूरगामी एवं सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक भी ।

प्रकृति का मानवीकरण

राजशेखर ने प्रकृति में भी मानवीय भावनाओं का आरोपण किया है । रावण सीता के विरह में दुःखी है । इस शोक में उसने अपने चारों ओर की विशाल प्रकृति को भी सम्मिलित कर लिया है । उसने प्रत्येक पशु-पक्षी तथा वृक्ष-लता को मानवीय समझकर उससे चर्चा की है ।

राम भी जब मार्ग न देने के कारण समुद्र पर बाणों की वृष्टि करते हैं तो बाणों से आहत हुआ समुद्र पुरुष रूप धारण कर गंगा और यमुना इन दो पत्नियों सहित क्षमा याचना करता है । रावण का वध हो जाने पर लंका, जो रावण की पत्नी मानी गई है, विधवा हो जाने के कारण शोक प्रकट करती है और उसकी सखी अलका उसे धीरज बँधाती है । यहाँ अलका और लंका नारियों का मानवीकरण दर्शनीय है । जटायु पक्षी होकर भी सीता का करुण क्रन्दन सुनकर रावण से

युद्ध करता है। सुवेग और चित्रशिखण्ड गीध-दम्पत्ति हैं परन्तु उनकी भाषा, विचार, कर्म और भावनायें सब मानवीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजशेखर की दृष्टि प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर विशेष आकृष्ट हुई है किन्तु उन्होंने जिस कथानक को चुना उसमें प्रकृति वर्णन के लिये अवकाश कम है। अतः प्रकृति से अनुराग होते हुए भी नाटकीयता की रक्षा के लिये वे उसे सीमित स्थान ही दे पाये।

अलंकार-सौष्ठव

राजशेखर काव्य के लिये अलंकृति को आवश्यक मानते हैं। काव्यमीमांसा में वे कहते हैं—'गुणवदलंकृतं वाक्यमेव काव्यम्'। साहित्य में उन्होंने अपने आदर्श के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग किया है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग वस्तुओं, के रूप, गुण एवं क्रिया की अनुभूति को तीव्र या सजग बनाने के लिये तथा कहीं कहीं भावोत्कर्ष के सहायक रूप में किया है।

एक प्रसंग देखिये—नायिका मृगांकावली के अप्रतिम सौंदर्य के सन्मुख संसार की सम्पूर्ण रूपसम्पदा तुच्छ है। नायक के शब्दों में—

"तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा हा हेम सा चेद् द्युति
स्तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्तच्चेत् स्मितं का सुधा।
धिक्कन्दर्पधमुर्भ्रुवौ च यदि ते किं वा बहु ब्रूमहे
यत् सत्यं पुनरुक्त-वस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः॥"[1]

अर्थात् इस सुन्दरी के मुख के सम्मुख चन्द्रमा की चर्चा व्यर्थ है। इसकी कान्ति के आगे सुवर्ण का क्या मूल्य? आंखों से नीलकमल की क्या तुलना? इसकी मुस्कराहट के समक्ष सुधा भी फीकी है। इस सुन्दरी की भृकुटि की तुलना में कामदेव के धनुष को धिक्कार है। तात्पर्य यह है कि इस सुन्दरी के रहते हुए भी विधाता ने व्यर्थ ही इन वस्तुओं का निर्माण किया।

उक्त कथन में चन्द्रमा, सोना, नीलकमल, सुधा और कन्दर्पधनु नायिका के अंग प्रत्यंग से तिरस्कृत हो गये हैं। अतः यहाँ प्रतीप का कौशल दर्शनीय है।

रूप-सौंदर्य का दूसरा चित्र देखिये—

'दूरे किज्जदु चंपअस्स कलिआ कज्जं हलिद्दीअ किं
ओल्लोल्लाइ वि कंचणेण गणणा का णाम जच्चेण वि।
लावण्णस्स णउग्गदिदुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
पच्चग्गेहि वि केसरस्स कुसुमक्कोरिहिं किं कारणम्॥[2]

---

१. विद्धशालभंजिका अ० १–१४। २. कर्पूरमंजरी ३–१।

नायिका के सौंदर्य से चम्पा, हरिद्रा, कांचन और केसर का मेल ही नहीं बैठ पा रहा है। प्रसिद्ध उपमानों का तिरस्कार कर राजशेखर ने प्रतीप अलंकार के आश्रय से नायिका के सौन्दर्य की रमणीय व्यंजना की है। कतिपय आलंकारिकों ने इसे आक्षेप का उदाहरण माना है—

नायिका के सौन्दर्य का प्रस्तुत उदाहरण भी दृष्टव्य है—

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमद्युतिः।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतम्
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव॥[1]

अर्थात् सीता के मुख के सम्मुख चन्द्रमा मानों कालिख-पुता लग रहा है। उसके नेत्रों के सम्मुख हरिणियों की दृष्टि जड़-सी हो रही है, ओठों की लाली के आगे विद्रुमलता की अरुणिमा उड़ गई-सी जान पड़ती है और सोने की कांति अंगशोभा के समक्ष काली पड़ गई है, उसकी मीठी बोली के आगे कोयल की कूक ऐसी लगती है जैसे कर्कशता से भर उठी हो और केश के समक्ष मोर के पंख ऐसे लगते हैं जैसे किसी काम के न हों।

यहाँ सीता के अंग के अतिशय सौंदर्य को सूचित करने के लिये चन्द्रिका, हरिणियों की दृष्टि, विद्रुमलता, सोने की कांति, कोकिल वधुओं के कण्ठ और म्यूर-पंखों की निन्दा द्वारा सौन्दर्यातिरेक को व्यक्त किया गया है। यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा का उचित विन्यास हुआ है। कल्पना के चित्रों की विविधता के लिये राजशेखर ने दृष्टांत अलंकार का प्रयोग किया है। कल्पनाओं के सहारे वे दृष्टांतों की लड़ी जोड़ते चले जाते हैं। इस अलंकार को स्पष्ट करने के लिये केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

क्व पातव्या ज्योत्स्ना भृतभुवनगर्भाऽपि तृषितै—
मृणाली तन्तुभ्यः सिचयरचना कुत्र भवतु।
क्व वा पार्यामियो वत वकुलदाम्नां परिमलः
कथं स्वप्नः साक्षात् कुवलयदृशं कलयतु ताम्॥[2]

अर्थात् भुवन के अन्दर फैली चाँदनी को प्यासे कहाँ पी पाते हैं? कमल नाल के तन्तुओं से वस्त्र-रचना कहाँ हो सकती है? मौलसिरी के पुष्पों की गन्ध कहाँ नापी या तौली जा सकती है? स्वप्न साक्षात् कैसे हो सकता है? इसी तरह उस सुन्दरी कमलनयनी की आप कल्पना मात्र कर सकते हैं।

---

१. बालरामायण १–४२।   २. विद्धशालभंजिका १–२०।

उपप्राकाराग्रं प्रहिणु नयनेतर्कय मनाक्
अनाकाशे कोऽयं गलितहरिणः शीतकिरणः ।
समाबद्धग्रासैरुपवन-चकोरैरनुसृतः
किरञ्ज्योत्स्नामच्छं नवलवलिपाकप्रणयिनीम् ॥[1]

अर्थात् तनिक चारदीवारी पर दृष्टि डालो । जरा सोचो, यह कौन सा चन्द्र है । न आकाश में स्थित है, न अंक में मृग को धारण किये है । देखो उपवन के चकोर ग्रास रोक कर उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं और उससे स्वच्छ ज्योत्स्ना छिटक रही है ।

नायिका के मुख को मृगहीन चन्द्रमा कहकर कवि ने अपनी सूझ का परिचय दिया है । नायिका के मुख की इस प्रशंसा में अतिशयोक्ति का सौंदर्य दर्शनीय है ।

नायिका यौवनावस्था में पदार्पण कर रही है । यह बात पर्यायालंकार के माध्यम से अत्यन्त कुशलतापूर्वक व्यक्त की गई है—

श्रोणीबन्धस्त्यजति तनुतां सेव्यते मध्यभागः
पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्याम् ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं तु वक्त्रम्
तद् गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥"[2]

शैशव में इसका जघनस्थल अत्यधिक क्षीण था । अब उसकी क्षीणता मध्यभाग ने ग्रहण कर ली । शैशव की चंचल गति अब नयनों में आ गई है । पहले इसका वक्ष एकाकी था अब उसने कुचों से मित्रता धारण कर ली है । और वक्षस्थल की अद्वितीयता मुख ने ग्रहण कर ली है ।

शृंगाररस से सिक्त विविध व्यापार करने वाली चितवन का कितना सुन्दर आलंकारिक वर्णन है—

न्यञ्चत्कुंञ्चितमुन्मुखं हसितवत्साकूतमाकेकरम् ।
व्यावृत्तं प्रसरत्प्रसादि मुकुलं सत्प्रेम कम्प्रस्थिरम् ॥
उद्भ्रुभ्रान्तमपाङ्गवृत्ति-विवकचं मज्जत्तरंगाकुलम्
चक्षुः साश्रु च वर्तते रसवशादेकैकमन्यत्क्रियम् ॥[3]

तिरछी, कुंचित, उन्मुख, उल्लसित, भावभरी टेढ़ी, वलखाई हुई, फैली हुई, सस्मित, अधमुंदी, प्यार भरी, कम्पित, स्थिर, उद्वर्तित, मतवाली, विखरी, विकसित, गड़ी

१. विद्धशालभंजिका १–३१ । २. वालभारत १–२८ ।
३. वालरामायण २–१९

हुई, तरंगित और सजल चितवन एक है पर शृंगार रस में डूबी होने के कारण उसके व्यापार अनेक हैं।

समुच्चय अलंकार पर आधारित नेत्र का यह व्यापार-वैविध्य दर्शनीय है।

विद्धशालभंजिका के नान्दी श्लोक में की गई वामलोचनाओं की प्रशंसा में व्याघात की छटा द्रष्टव्य है—

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥[1]

अर्थात् विरूपाक्ष की दृष्टि से जला दिये गये काम को अपनी दृष्टि से ही पुनः जीवित कर शंकरजी को परास्त कर देने वाली उन वामलोचनाओं को नमस्कार है।

अवन्ति की रमणियाँ ही रतिकर्म में निपुर्ण होती हैं, केवल इतना कह देने पर अवन्ति-रमणियों की निपुणता की प्रतीति पाठक को नहीं हो जाती किन्तु "चन्द्रिका के पान में चकोरियाँ ही चतुर होती हैं" यह कथन बात को प्रामाणिक बना देता है। प्रतिवस्तूपमा अलंकार की यही उपादेयता है—

चकोर्य एव चतुराश्चन्द्रिकापानकर्मणि।
आवन्त्य एव निपुणाः सुदृशो रतनर्मणि ॥[2]

उत्तरोत्तर उत्कर्ष का एक उदाहरण देखिये—

पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः।
दिक्कुंजराः। कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां
देवः करोति हरकार्मुक माततज्यम् ॥[3]

राम शिवधनुष चढ़ा रहे हैं। अतः पृथ्वी को सचेत किया जा रहा है और शेषनाग और दिग्गजों को क्रमशः अपने पूर्ववर्तियों को सम्हाल रखने को कहा जा रहा है। उत्कर्ष की इस श्रृंखला से राम के पौरुष का महत्व स्वयं सूचित होता है।

नीचे श्लोक में विरही नायक की दशा कितने प्रभावपूर्ण ढंग से व्यंजित हुई है—

परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चंदणरसो
खरक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा।
मुणाली बाणाली जलइ अजलद्दा तणुलदा
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा ॥[4]

---

१. विद्धशालभंजिका १–२।
२. बालरामायण १०–८२।
३. बालरामायण १–४८।
४. कर्पूरमंजरी २–११।

अर्थात् जब से उस सुनयना को देखा है तभी से चाँदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का लेप विष की तरह प्रतीत होता है और हार घाव पर नमक की तरह लगता है एवं रात्रि की ठण्डी हवायें भी शरीर को झुलसाती हैं। कमल नाल बाणों की तरह लगते हैं। स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है।

विरही राजा का एक अन्य चित्र सांग रूपक के माध्यम से साकार हो उठा है।

एसो पिअवस्सो हंसो विअ विमुक्कमानसो, करी विअ
मअकरवामो मुणालदलदंडो विअ घणघम्ममिलाणो दिषदीण्णा।
दीवो विअ विअलिअच्छाओ पमादपुण्णिमाचन्दो विअ
पंडुरपरिकरवीणां चिट्ठदि ॥[1]

वियोगी नायक की संतप्तदशा, मलिनता, थकावट आदि के लिए मानसरोवर से विलग हुए हंस, प्रचण्ड सूर्यातप से झुलसे हुए कमलनाल, कान्तिहीन दीपक, प्रभातकालीन चन्द्रमा इत्यादि का सादृश्य उपस्थित करने से कितना सटीक और सजीव चित्र उपस्थित हो गया है। एक स्थान पर कवि ने लिखा है कि—

सह दिवसणिसाहिं दीहरा सासदंडा
सह मणिवलएहिं बाहधारा गलंति।
तुह सुहअ विओए तीअ उव्विंविरीए
सह अ तणुलदाए दुव्वला जीविदासा ॥[2]

विरहाकुल नायिका को दिन रात बड़े लम्बे प्रतीत होते हैं। उतना ही दीर्घ उसास वह लेती है। बाष्पधारा और मणिकंकण साथ साथ गिर रहे हैं। जितना उसका शरीर दुर्बल हो रहा है उतनी ही जीविताशा भी घटती जा रही है। सहोक्ति के उक्त प्रयोग से वियोगिनी नायिका का यह चित्र और अधिक मर्मस्पर्शी हो गया है।

राजशेखर ने प्रकृति के चित्रों को अधिक सजीव और सक्षम बनाने के लिये विविध अलंकरणों का प्रश्रय लिया है। मध्याह्नकाल का एक दृश्य देखिये—

धत्ते पद्मलता दलेप्सुरूपरि स्वं कर्णतालं द्विपः
शष्यस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्डं शिरः।
मिथ्यालीढ़मृणालकोटिरभसाद् दंष्ट्र्याङ्कुरं शूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाच्छति निजच्छायें महाकर्दमम् ॥[3]

१. कर्पूरमंजरी २।९। २. कर्पूरमंजरी २।९।
३. विद्धशालभंजिका ३।२६।

अर्थात् पदमलता को दलने का इच्छुक हाथी, दोपहर की गर्मी से व्याकुल होकर अपने ऊपर अपने बड़े बड़े कानों को चला रहा है । घासों के रसास्वादन को त्यागकर मयूर अपने पंखों के अन्दर छिप रहा है। सुअर ने कमल की जड़ को खोदकर खाना बन्द कर दिया है और भैंसा अपने शरीर पर लेप करने के लिये गहरे कीचड़ की इच्छा कर रहा है ।

यहाँ कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से स्वभावोक्ति का कुशल निरुपण हो गया है। चन्द्रकिरण वर्णन में कवि की कुशलता सराहनीय है—

अकुंकुममचंदणं दसदिसावहूमंडणं
अकंकणमकुंडलं भुवणमंडलीभूसणं ।
असोसणममोहणं मअरलंछणस्साउहं
मिअंककिरणावली ण्हअलम्मि पुंजिज्जदि ॥

अर्थात् कुंकुम से रहित, चन्दनविहीन, दसों दिशाओं को सजाने वाली, कंकणरहित, विना कुण्डल की, लोगों को तृप्त एवं मुग्ध करने वाली कामदेव की अस्त्रभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश में इकट्ठी हो रही हैं ।

यहाँ चन्द्ररश्मियाँ काम के आयुध हैं किन्तु शोषण-मोहन-हीन । विना कारण के ही कामदेव के अस्त्रों का कार्य करने वाली ये चन्द्ररश्मियाँ विभावना से अलंकृत हो उठी हैं ।

वस्तुतः राजशेखर द्वारा प्रयुक्त किसी भी अलंकार की सूची बहुत दूर तक बढ़ाई जा सकती है । यहाँ हमारा उद्देश्य उनके प्रत्येक अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत करना मात्र नहीं है । हमने केवल कुछ अलंकारों को लेकर उनकी अलंकार-योजना का प्रदर्शन किया है। उनकी अलंकारसृष्टि भावोपयोगी एवं सूक्ष्म निरीक्षणपूर्ण है । उनके अलंकार प्रयोग की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे एक ही चित्र में कई अलंकार सफलता से गूँथ सकते हैं जैसे नायिका के रूप चित्रण के लिये उन्होंने प्रतीप, अप्रस्तुतप्रशंसा एवं अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है । विरहावस्था की दशा वर्णित करने में विरोध, रूपक एवं सहोक्ति की सृष्टि की है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि राजशेखर के अलंकार प्रयोग में उनके पांडित्य एवं सूक्ष्मनिरीक्षण की छाप है। फलतः उनकी अलंकार-योजना स्वाभाविक सहज और सुष्ठु हो गई है ।

छन्दोविधान

राजशेखर के काव्य में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीड़ित छन्द की उत्कृष्टता देखकर क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ "सुवृत्ततिलक" में यहाँ तक कह दिया था—

शार्दूलविक्रीड़ितैरिव प्रख्यातो राजशेखरः ।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ।।

यद्यपि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में २३ छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु समग्र रूप से उनके छन्द संविधान की ओर दृष्टि डालने पर भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि "शार्दूलविक्रीड़ित" छन्द का प्रयोग ही उन्होंने प्रचुर परिमाण में किया है। यदि "शार्दूलविक्रीड़ित" को ही राजशेखर के काव्यों का कलेवर-विधायक छन्द कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उक्त छन्द के पश्चात् हम भाव-आवृत्ति एव छन्दो-वैविध्य की दृष्टि से जिन छन्दों से उनके काव्य को सुशोभित पाते हैं वे हैं—वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, आर्या, पृथ्वी, रथोद्धता, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, उपजाति, पुष्पिताग्रा, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, शालिनी, शिखरिणी, हारिणी, प्रहर्षिणी शशिवन्दना, रुचिरा, गीति, उपगीति एवं हरिगीति।

राजशेखर की छन्दोयोजना के विश्लेषण से प्रतीत होता क उन्होंने विभिन्न प्रसंगों, ऋतुओं तथा भावों के लिये भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। निम्न तालिका में उक्त योजना को विशद रूप में प्रस्तुत किया गया है—

विषय	प्रयुक्त-छन्द
नान्दी	.. शार्दूलविक्रीड़ित, पुष्पिताग्रा, आर्या, स्रग्धरा, मालिनी, पथ्यावक्त्र एवं शिखरिणी।
भरतवाक्य	.. शार्दूलविक्रीड़ित स्रग्धरा, स्वागता।
सज्जन वन्दना	.. शार्दूलविक्रीड़ित शिखरिणी, स्रग्धरा।
रामस्तुति उपदेश	.. शार्दूलविक्रीड़ित।
आशीष स्नेहाभिव्यक्ति	.. वसन्ततिलका।
चन्द्रोदय-वर्णन	.. शार्दूलविक्रीड़ित, पृथ्वी, स्रग्धरा, शशिवदना मात्रिक हरिगीतिका शिखरिणी।
षड्ऋतु—	
वसन्त	.. शार्दूलविक्रीड़ित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मन्दाक्रांता आर्या, मालिनी

शिशिर	..	स्रग्धरा, पथ्यावक्त्र ।
ग्रीष्म	..	शार्दूलविक्रीड़ित ।
वर्षा	..	स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा ।
शरद	..	शार्दूलविक्रीड़ित, वसन्ततिलका ।
हेमन्त	..	स्रग्धरा, आर्या ।
नायिका वर्णन—		
सौंदर्यचित्रण	..	शार्दूलविक्रीड़ित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, उपजाति, मालिनी, वंशस्थविल ।
विरहिणी	..	मालिनी, स्रग्धरा, शिखरिणी ।
दोलाक्रीड़ा	..	आर्या, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा ।
चर्चरी नृत्य	..	उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता ।
रस—		
१. शृंगार	..	शार्दूलविक्रीड़ित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, हरिणी ।
२. वीभत्स	..	वसन्ततिलका, स्रग्धरा ।
३. करुण	..	वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, पथ्यावक्त्र स्रग्धरा ।
४. अद्भुत	..	वसन्ततिलका ।
५. वीर	..	शार्दूलविक्रीड़ित ।
६. रौद्र	..	शार्दूलविक्रीड़ित ।
७. शान्त	..	शार्दूलविक्रीड़ित, मन्द्राकान्ता ।

राजशेखर की एक और विशेषता है निरन्तर एक ही छन्द द्वारा किसी विषय की अभिव्यक्ति । "अर्थानुरूप-छन्दस्त्वम्" की उक्ति उनके लिये सार्थक प्रतीत होती है ।[1]

काव्य-दोष

प्रायः सभी अलंकारिकों ने काव्यदोषों का विस्तृत विवेचन और वर्गीकरण किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अवश्य यह कहकर दोषों की उपेक्षा की है कि उन्होंने सहस्रों सुन्दर सूक्तियों से अपने को उज्वल किया है, ऐसे महात्माओं के दोषों का उद्घाटन करना आलोचकों के लिये दोषपूर्ण है—

> तत्तु सूक्तिसहस्रा द्योतिमत्मनां महात्मनां दोषोद्घोषणमात्मन एव दूषणं भवत ।'

१. राजशेखर के ग्रन्थों में प्रयुक्त विविध छन्दों की तालिका परिशिष्ट में देखिये ।

राजशेखर के ग्रन्थों से, अलंकारों ने दोषों के जो वहुत से उदाहरण लिये हैं, उसका कारण उनकी लोकप्रियता है । हम यहाँ राजशेखर के ग्रन्थों में पाये जाने वाले प्रमुख दोषों पर विचार करेंगे ।

वाक्य-दोष

१. अभवन्मत संवन्धः—वह दोष है जहाँ किसी पद का अभिप्रेत संवन्ध अथवा अन्वय उत्पन्न न हो सके । जैसे—

चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेयः
शस्त्रव्यस्तः सदनमुदधिर्भूरियं हन्तकारः ।
अस्त्येवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठ-वाधां
वद्धस्पर्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः ॥

भार्गव परशुराम ! माता का गला काटने वाले, तुम्हारे इस परशु का स्पर्श करने में मेरा यह कृपाण लज्जित हो रहा है, अन्यथा . . . . . । यहाँ भार्गव परशुराम की निन्दा के प्रकाशन के लिये प्रयुक्त मातृकण्ठ के छेदन के कर्त्तव्य के साथ परशु का संवन्ध स्थापित नहीं हो सकता । अतः 'अभवन्मतसंवंध' का यहाँ निर्देशन हो रहा है ।

वस्तुतः यहाँ परशु की निन्दा के द्वारा भार्गव परशुराम का अधिकाधिक तिरस्कार किया जा रहा है । अतः इसे दोष न कहकर कवि-कौशल कहा जाना उपयुक्त होगा । साहित्यदर्पणकार और उनके अनुयायियों ने इसे कविकौशल कहा भी है ।

२. भग्नप्रक्रमत्वः—विना कारण के किसी क्रम अथवा परिपाटी को छोड़ देना भग्नप्रक्रमत्व दोष कहलाता है । जैसे—

उदन्वच्छन्ना भूः स च पतिरपां योजनशतम् ।[1]

यहाँ यदि 'मिता भूःपत्यापां स च पतिरपाम्' कर दिया जाय तो भग्नप्रक्रमत्व दोष दूर हो जायगा और अर्थ की अपेक्षित ऐक्य-प्रतीति निर्विघ्न रहेगी ।

अर्थदोष : अर्थ दोष के एक भेद अस्थानयुक्तत्व का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है । अस्थानानुयुक्तत्व वह अर्थदोष है जिसमें वाक्यार्थ अनुपयुक्त स्थान पर समाप्त हो जाता है, जैसे—

आज्ञा शक्रशिखामणि-प्रणयिनी शास्त्राणि चक्षुर्नवं,
भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनि पदं लंकेति दिव्यापुरी ।

---

१. वालरामायण ८।५२।५३

उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो लभ्यते
स्याच्चेदेष न रावणः क्व नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ।[1]

रावण के लिये कहा गया है कि जिसकी आज्ञा मुकुट-मणि की भाँति इन्द्र को भी शिरोधार्य है, जिसके लिए शास्त्र दिव्यदृष्टि का काम करते हैं, जिसकी शिवभक्ति सर्वविदित है, जिसका दिव्य स्थान लंकापुरी के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका जन्म ब्रह्मा के महान् वंश में हुआ है भला उसके समान अन्य वर कहाँ मिल सकता है । हाँ, बात केवल एक है कि वह रावण है और सब गुण सर्वत्र रहते ही कहाँ हैं ?

यहाँ 'स्याच्चेदेष न रावणः' पर ही काव्य समाप्त हो जाना चाहिए, क्योंकि रावण पद से रावण का वर रूप में निषेध किया गया है किन्तु "पुनः सर्वत्र सर्वेगुणाः" यह उक्ति तात्पर्य के विपरीत कथन पुष्ट करती है । अतः यहाँ अस्थानुयुक्तत्व दोष है ।

अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि : "क्व न पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः" में रावण के समस्त गुणों की अनुपादेयता ध्वनित होने के कारण 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य-ध्वनि' भी लक्षित हो रही है ।

अनौचित्य : कवि जब भावविभोर हो जाता है, उस समय किंचित असावधानी भी अनौचित्य को जन्म दे देती है ।

(क) **प्रबन्धानौचित्य या वृत्त का अनौचित्य** : इतिहास-सम्मत तथ्यों के विपरीत वृत्त का अनौचित्य प्रकट करता है । सीता-स्वयंवर में सम्मिलित राक्षस-पति रावण की यह उक्ति देखिये—

यत्पार्वतीहठकुचग्रहणे प्रवीणे पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्रम् ॥
गीर्वाणसारकणनिर्मित-गात्रमत्र तन्मैथिलीक्रयधनं धनुराविरस्तु ॥[2]

रावण ने कहा कि मैथिली को खरीदने का मूल्य वह धनुष यहाँ प्रत्यक्ष होवे । इसे सुनकर जनक कहते हैं—"आविरस्तु समगर्भसम्भवया सीतया' स्वयं उद्भूत जानकी के साथ वह धनुष प्रगट हो" जनक के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे राक्षसपति रावण को जानकी देना चाहते हैं । किन्तु राक्षसराज को शिरीष-मृद्वी कन्या का दान प्रबन्धानौचित्य का निर्माण करता है ।

(ख) **अवस्थानौचित्य** : इसी प्रकार क्षीरकण्ठ राम द्वारा ताड़का को ताड़ना देना तथा जिनके कानों के पास के केश श्वेत हो रहे हैं ऐसे परशुराम के साथ युद्ध छेड़ना अवस्थानौचित्य का विधान करता है । देखिये—

---

१. बालरामायण १।३६ २. बालरामायण १।३९

'ज्यायान् धन्वी नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण
क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटुस्ताड़काताड़नेन ।
कर्णाभ्यर्णस्फुलितपलितः क्षीरकण्ठे न सार्धं
योद्धुं वाच्छन्न कथममुना लज्जते चन्द्रहासः ॥[1]

धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ, क्षत्रियों के विनाश करने में सक्षम, जिनके कानों के पास के केश श्वेत हो रहे हैं (अर्थात् जो बुढ़ापे की ओर अग्रसर हो रहे हैं) ऐसे महाबली परशुराम, नये नये धनुष धारण करने के कारण जिनकी हथेली लाल हो रही है, जो ताड़का का विनाश कर सके हैं, इतना ही नहीं जो अभी तक क्षीरकण्ठ कहे जा सकते हैं, ऐसे रामचन्द्र के साथ युद्ध की इच्छा रखते हुए स्वयं ही लज्जित क्यों नहीं हो रहे हैं।

क्षीरकण्ठ राम की अवस्था एवं वार्द्धक्यपलितकेश परशुराम की अवस्था का अत्यधिक अन्तर अवस्थानौचित्य को पुष्ट कर रहा है।

(ग) रसदोष : अनुचित विशेषणों से रस के पोषण में वाधा होती है। जैसे—

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधेः ।
शश्वत्खड्गभुजङ्गचन्दनतरौ क्रीडोपधाने श्रियः ।
आलाने जयकुञ्जरस्य सुदृशां कन्दर्पदर्पे चिरम् ।
श्री दुर्योधनदोष्णि विक्रमधने लीनं जगन्नन्दति ॥[2]

अर्थात् महाराज दुर्योधन का पराक्रमशील वाहु, वीरतारूपी कमलिनी का नाल-दण्ड है, युद्धरूप समुद्र का बाँध है, खड्ग रूपी भुंजगमों के लिये चन्दनवृक्ष है, राज्य-श्री का क्रीडोपधान है, विजयकुंजर को वांधकर रखने वाली श्रृंखला है और मृग-लोचनाओं के लिये कामदेव का दर्प है। उसकी छाया में विश्रान्त यह सारा संसार परमानन्द को प्राप्त करे।

इस पद्य में दुर्योधन की भुजा के लिये कठिन विशेषणों के वीच कमलनाल जैसे कोमल शब्द का प्रयोग अत्यन्त अनुचित है। क्योंकि वीर रस के पोषण में यह वाधक है। अतः रस में विरसता उत्पन्न हो रही हैं। वाक्यगत अनौचित्य भी उत्पन्न हो गया है।

एक और उदाहरण देखिये—

एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्यो न यः
स्निग्धेनापि जनेन दाहभयतः प्रस्थम्पचः पाथसाम् ।

१. बालरामायण ४।१ २. वा० भा० २।११

निर्वीयीकृत-चन्दनौषधविधौ तस्मिंस्तडत्कारिणो ।
लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणयः सर्वेऽपि हारस्रजाम् ॥[1]

इस श्लोक में प्रमुख रस विप्रलम्भ शृंगार होने के कारण माधुर्य का होना आवश्यक है । किन्तु 'तडत्कारिणो लाजस्फोटममी स्फुटन्ति' के प्रयोग से ओजगुण उत्पन्न होने के कारण अनौचित्य का संचार हो गया है ।

रावण के प्रति परशुराम की इस उक्ति में सम्प्रदानानौचित्य है—

तद्वाच्यः स दशाननो मयगिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही ।
तुभ्यं ब्रूहि रसातलात्त्रिदिवसो र्निजित्य किं दीयताम् ॥

पदांशगत अवाचकत्व दोष : बालरामायण के रामरावणीय अंक में परशुराम के प्रति रावण की इस उक्ति में अवाचकत्व दोष है—

चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेयः
शस्त्रव्यस्तः सदनमुदधिर्भूरियं हन्तकारः ।
अस्त्यैवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठबाधां
बद्धस्पर्द्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः ॥[2]

यहाँ 'विजय' इस पद में यत् प्रत्यय 'क्त' प्रत्यय के अर्थ में प्रयुक्त है जो अवाचक है । अतः यहाँ अवाचकत्व दोष स्पष्ट दीख पड़ रहा है ।

अर्थान्तरैकपदता दोष : रामचन्द्र के साथ सीता को वनवास के लिये छोड़ आने पर सुमन्त्र दशरथ को समाचार दे रहे हैं—

मसृणचरणपातं गम्यतां भूःसदर्भा ।
विरचय सिचयान्तं मूर्ध्नि धर्मःकठोरः ।
तदिति जनकपुत्रीलोचनैरश्रुगर्भैः ।
पथि पथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च ॥[3]

वन जाते समय राहगीरों की (साथ चलने वाली) स्त्रियों ने आँखों में आँसू भरकर जनकतनया को देखा और समझाया कि दर्भों-भरी भूमि पर हलके हलके पैर रखकर चलो । धूप तेज हो रही है इसलिये साड़ी का पल्ला सिर पर डाल लो ।

यहाँ 'तदिति में तद्' शब्द दोषपूर्ण है । 'तद्' शब्द 'घर्मः कठोरः तत् सिचयान्तं विरचय' इस प्रकार का हेतु रूप पूर्वार्ध में प्रयुक्त होना चाहिये । किन्तु केवल इस एक पद का प्रयोग उत्तरार्ध में किया गया है इसलिये यह अर्थान्तरैकपदता दोष' को अभिव्यक्त कर रहा है ।

---

१. बा० रा० ५।१३ २. बालरामायण २।३७ ३. बालरामायण ६।३६

विशेष-परिवृत्ति दोष : नायिका मृगांकावली के वियोग में आतुर राजा विद्याधरमल्लदेव आकाशभाषित के रूप में सेवकों को 'भोः' शब्द से संबोधित कर रहे हैं—

श्यामां श्याममलिमानमानयत भोः सान्द्रैर्मषीकूचकैः
मन्त्रं तन्त्रमुत प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलानां श्रियम् ।
चन्द्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणशःकृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशास्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ॥[1]

हे सेवको ! गहरी काली स्याही की कूचियों से रात्रि को काला कर दो और चन्द्रमा को पत्थर की शिलापर रखकर कण कण में पीस डालो जिससे मैं दसो दिशाओं को उसकी मुख मुद्रा से अंकित देख सकूँ ।

यहाँ रात्रि के लिये केवल 'श्यामा' शब्द का उपयोग उपयुक्त नहीं है । यदि चन्द्र है तो चाँदनी रात का उल्लेख होना चाहिये। किन्तु यहाँ श्यामा शब्द से अँधेरी रात्रि का बोध इष्ट होने के कारण विशेष परिवृत्ति दोष भासित हो रहा है।

रसदोष : वर्णन प्रकृत रस के परिपाक का पोषक होना चाहिये अन्यथा अनंगकीर्तन नामक रस-दोष होता है ।

कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका में राजा और रानी वसन्त के सौंदर्य का वर्णन करते हैं जो प्रसंगानुकूल है । किंतु बीच में ही उस मूल प्रसंग को छोड़कर चारण द्वारा वर्णित वसन्त-वैभव की प्रशंसा करने लगते हैं । यहाँ प्रकृत रस के अनुपकारक का विस्तृत वर्णन सदोष है ।

व्याकरण-दोष : प्राकृत प्रत्यय 'इल' का प्रयोग केवल महाराष्ट्री में होता है किंतु राजशेखर ने भाषा की परम्परा के विरुद्ध 'बालरामायण' में शौरसेनी में 'कोदूहलिल्ल' का प्रयोग किया है जो दोषपूर्ण है ।

उपर्युक्त दोष राजशेखर की विशाल ग्रन्थ-सम्पदा की तुलना में अत्यल्प हैं । गुणोत्कर्ष के समुद्र में ये दोष जल की कुछ मैली बूंदों के समान विलीन हो गये हैं ।

काव्य-सौन्दर्य

काव्य के उपकरण शब्द और अर्थ है । मनोरम वर्ण-योजना एवं शब्दों का उत्कृष्ट चयन काव्य में सौष्ठव उत्पन्न करते हैं । शब्दालंकार भी काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं । आन्तरिक सज्जा का संवन्ध अर्थ के साथ रहता है जिसका आधार शब्द-शक्ति और उक्ति-वैचित्र्य है । कवि स्वानुभूति को अभिव्यक्ति-कौशल के

1. वि० भ० ३-१

माध्यम से व्यक्त करता है । छन्द काव्य को गेयता प्रदान करते हैं । ये सभी मिलकर काव्य सौष्ठव का निर्माण करते हैं । प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विषयों पर विचार किया जायगा ।

नादसौन्दर्य या अर्थध्वनन : राजशेखर की पद-संरचना अभीष्ट अर्थ की व्यञ्जना तथा उसकी प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करती है । झूला झूलती नायिका का एक शब्दचित्र देखिये—

रणंतमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
फलक्कणिदकिंकिणी मुहरमेहलाडंवरं ।
विलोलवलग्रावली जणिदमंजुसिंजारवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिंदोलणं ॥[1]

मणिनूपुरों के झंकार से युक्त, हारावली के झन झन शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी छोटी घण्टियों के मधुर शब्द से युक्त यह चन्द्रमुखी का झूला झूलना किसके मन को मोहित नहीं करता ?

यहाँ 'रणंतमणिणेउरं' 'झणझणंत' 'कणकणिग्र मंजुसिंजारवं' ग्रादि पदों की वर्ण-मैत्री कानों को तो सुखद लगती ही है, साथ ही इसकी ध्वनि ग्रान्दोलित झूले का साक्षात् चित्र भी उपस्थित करती है । झूला झूलने का एक ग्रन्य चित्र देखिये—

'गाग्रंत गोवअवहूपग्रपेंखिदासु ।
दोलासु विब्भमवदीसुणिविट्ठदिट्ठी
जं जादि खंजिदतुरंगरहो दिणेसो ।
तेणव्व होंति दिग्रहा ग्रडदीहदीहा ॥[2]

गाती हुई गोपियों के चरणों से ग्रान्दोलित एवं मन को हरण करने वाले झूले पर सूर्य की दृष्टि लगी हुई है, जिससे उसके घोड़ों की गति ग्रस्त-व्यस्त हो जाती है, ग्रौर रथ विषम गति से वढ़ता है। इसी कारण दिन ग्रधिक लम्बे हो जाते हैं।

इस पद्य में ग सु ग्र वर्णों की संयुक्त ध्वनियाँ मानों गोपियों के चरणों के ग्रनु-रूप ताल दे रही हैं । यह विलक्षण वर्ण-सौन्दर्य का निदर्शन है ।

इस प्रकार राजशेखर ने ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा ग्रपनी ग्रभिव्यक्ति को न केवल ग्रर्थग्रहण की दृष्टि से ग्रपितु संगीत की दृष्टि से भी समर्थ ग्रौर मनोरम बना दिया है ।

---

१. कर्पूरमंजरी ३–३२ ।
२. कर्पूरमंजरी १–२१ ।

शब्द-सौंदर्य : राजशेखर ने यद्यपि शब्द-शक्ति के संबंध में अपना कोई सैद्धांतिक मत प्रस्तुत नहीं किया तथापि इतना निश्चित है कि शब्द के व्यापार संबंधी तथ्यों से वे भलीभाँति परिचित थे। यही कारण है कि वे अपनी रचनाओं में वाचक शब्दों द्वारा भी उच्चकोटि के सौन्दर्य की सृष्टि कर सके हैं। उदाहरणार्थं अर्ध चन्द्र के लिये—भगवान् त्रिलोचन जिसे शीर्ष पर धारण करते हैं (जं भअवं तिलोअणो सीसे समुव्वहदि)[१]; मुखचूर्ण रूपप्रसाधन के लिये—अशोक तरु जिससे दोहद प्राप्त करता है—(जेण असोअतरु दोहलंलहेदि)[२]; कान के लिये—'जुहिट्ठिल जेठ्ठभाअरणामधेयं अंगं'[३] तथा उत्तरासाढ़ापुरस्सर णक्खत्तणामधेअं अंग जुपल[४], हाथ के लिये—"उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामवेअं अंगं"[५] आदि शब्दों का वाच्यार्थ-सौन्दर्य इतना मुखरित हो रहा है कि इनके स्थान पर अन्य समानार्थक शब्दों का रखना काव्य के सौन्दर्य को नष्ट करना होगा।

शब्दालंकार : शब्दालंकार में अनुप्रास, यमक और श्लेष अलंकार ही ऐसे हैं जो भाषा-सौंदर्य में विशेष रूप से वृद्धि करते हैं। अनुप्रास से भाषा के अन्तर्गत चमत्कृति उत्पन्न होती है। राजशेखर ने अपनी रचनाओं में रस-व्यञ्जना के लिये इन तीनों का ही आश्रय लिया है। परन्तु इन में भी उनका सर्वाधिक लगाव अनुप्रास के प्रति है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश पंक्तियों में इस अलंकार की छटा दीख पड़ती है।

तत्र च शरनिकरवर्षणे, क्षितितलनिघर्षणे सुभटवर्षणे, कातर मनोघर्षणे परस्पर प्रतिहतिभर्षणे कीलालपकर्षणे, लोमहर्षणे च महारम्भे समरसंरम्भे।[३]

यहां पद के अन्त में वर्षणे, घर्षणे, वर्षणे, घर्षणे, भर्षणे कर्षणे, हर्षणे रम्भे आदि शब्द मधुर संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।

मूलेमूले पथि विटपिनां खेदिनी दीर्घमास्ते
शुष्यत्कण्ठी पिबति सलिलं निर्झरे निर्झरे च।
जातत्रासा निमिषति दृशं कन्दरे कन्दरे च
स्थाने स्थाने वहति च मति वद्धवासाभिलाषा ॥[४]

उक्त श्लोक के प्रथम चरण में 'मूल' द्वितीय में निर्झर तृतीय में 'कन्दरे' और चतुर्थ में 'स्थाने' की आवृत्ति हुई है। यहाँ अनुप्रास का प्रयोग कोमलता एवं सूक्ष्म सौन्दर्य को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है।

---

१. क० म० १।२०-२१ चेटी की उक्ति। २. वही १-२० चेटी की उक्ति।
३. वही १-२०-२१ विदूषकोक्ति।
४-५. वही १-२०-२१ विचक्षणाकी उक्ति।

राजशेखर के यमक अलंकार की छटा भाषा को रमणीयता प्रदान करती है। देखिये—

त्र्युट्टद्दोर्दण्डखण्डोड्डमर पुरुपतत्कण्ठकोष्ठप्रकोष्ठम् ।
स्फारस्फिक् पृष्ठपीठीहठदलितशिराकन्धराकाण्डखण्डम् ॥
सस्तम्भं क्षत्रडिम्भं चटदितिविचटन्मुण्डपिण्डं प्रचण्डं ।
चण्डीशोच्चण्ड-दंष्ट्राक्रकच दृढं इव चन्द्रहासस्तृणेदुं ॥[1]

यहाँ मुण्ड, पिण्ड, चण्ड, दण्ड, खण्ड में ण्ड की; कोष्ठ, प्रकोष्ठ में ष्ठ की; स्तम्भ. डिम्भ में म्भ की और चटत्, विचट में चट की आवृत्ति न केवल युद्ध की वाह्य ध्वनि को प्रकट कर रही है वरन् युद्ध की भयंकरता को भी सूचित कर रही है ।

राजशेखर अनुप्रास एवं यमक के समान श्लेष अलंकार का भी कुशलता से प्रयोग करते हैं । वानर सेतु-बन्ध के लिये जिन साधनों का चयन कर रहे हैं, वे हैं—

'देव पेक्ख दाव—रहसुम्मुलिदतमालमालं, सहत्थम्भामिदपहरणसज्जसज्जं समुहागदहिन्तालतालं दूरुल्लासिदकुसुमपाडलपाडलं गअणन्दोलिदविसालसालं रहसुच्छलिदपडन्तकेसरकेसरं गहिदसव्वंगसरलसरलं लोलिदकुसुमसंदणसंदणं पअट्टद्धरिदसब्बं-सव्वंसंप्पअण्डकरकलिदपलासपलास करजुअलवन्धरअवसय उन्तपीपलपीपलं णिसग्गकठिणकक्करकक्करं णहप्पहारुक्खाअपत्थरपत्थरं पहरणीकदपडन्तगण्ड-गण्डमेल्लं सम्मुहोच्छुलिदं प्पहारप्पवलं वाणरवलम् ।

उक्त उदाहरण में सज्ज, ताल, पाडल, साल, केसर, सरल, संदण सब्बंस पलास, पीपल, कक्कर, पत्थर आदि शब्द श्लेषयुक्त हैं । यहां कवि का वाग्वैदग्ध्य काव्य-सौंदर्य को पुष्ट कर रहा है ।

उक्ति-वैचित्र्य : "प्रष्टव्योऽसौ पटीयानिह भणितिगुणो विद्यते वा नवेति ।

उक्ति-वैचित्र्य उत्तम काव्य का सहज अंग है । इससे भाषा में वह धार आ जाती है जो व्यंग को तीक्ष्ण बनाने में सहायता प्रदान करती है । यहाँ वैचित्र्य शब्द से हमारा अभिप्रायभणियतिगुण या कवि-कर्म-कौशल-जन्य शब्दार्थचारुता से है जिसके लिये परवर्ती आचार्य कुन्तक ने वक्रता शब्द का प्रयोग किया है । अतएव राजशेखर के उक्ति-वैचित्र्य की परीक्षा के इस प्रसंग में वक्र उक्तियों के विभिन्न रूपों का प्रस्तुतीकरण अनुचित न होगा ।

---

१. बाल० अं० ५ पृ० ७९ ।   २. बा० रा० ८–५०–५१

(१) **विशेषण-वक्रता :** वियोगिनी नायिका की दशा के इस चित्रण में विशेषण-वक्रता का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

> दाहोऽम्भः प्रसृतिम्पचः प्रचयवान् वाष्पः प्रणालोचितः ।
> श्वासाः प्रेङ्खितदीपदीप्तलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः ।
> किंचान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने
> हस्तच्छत्त्रनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ।।[१]

हे नायक, तुम्हारे विरह में नायिका के शरीर का दाह पानी को सुखा देने वाला है, आँसू नाली में वहने योग्य हैं, उष्ण निःश्वास हिलती हुई प्रज्वलित दीपमाला के समान हैं और सारा शरीर सफेदी में डूबा हुआ है । और अधिक क्या कहें? वह सारी रात अपने हाथ के छत्र से चाँदनी को रोके हुए तुम्हारी प्रतीक्षा में तुम्हारे मार्ग की ओर वाले झरोखे में बैठी रहती है ।

यहाँ दाह, वाष्प, श्वास और वपु इन विशेष्यों के साथ 'अम्भः प्रसृतिम्पचः' 'प्रणालोचितः' 'प्रेङ्खितदीपदीपलतिकाः और 'पाण्डम्नि मग्नम्' विशेषणों के प्रयोग से अत्यधिक चारुता बढ़ गई है ।

(२) **शब्दवक्रता :** उक्त उदाहरण में 'प्रसृतिम्पचः' शब्द प्रसृति पचति इति इस विग्रह के अनुसार प्रसृतिपूर्वक पच्धातु से 'परिमाणे पचः' सूत्र से खश् प्रत्यय और 'खित्यनव्ययस्य' से मुम् का आगम होकर बनता है । वियोगिनी के शरीर में इतना दाह है कि यदि चुल्लू भर पानी लिया जाय तो वह क्षण भर में तप्त होकर उड़ जायगा । यहाँ प्रसृतिम्पचः में स्वभाव सुन्दर मुम प्रत्यय रचना की शोभा को उत्पन्न करने वाली किसी अपूर्व शब्दवक्रता को परिपुष्ट कर रहा है।

(३) **वृत्तिवैचित्र्यवक्रता :** नायिका का शरीर विरहाधिक्य के कारण पाण्डुता में डूब रहा है । वियोग के दुःख में पीले पड़ जाने के लिये 'पाण्डिम्नि मग्नं वपुः" का प्रयोग कितना शोभनीय है। यह वृत्त वैचित्र्यवक्रता को स्पष्ट कर रहा है ।

(४) **लिङ्गवैचित्र्य वक्रता :** भिन्न-भिन्न लिङ्गों के सामानाधिकरण्य के प्रयोग से उत्पन्न शोभा कुछ अपूर्व होती है । इसे साहित्यशास्त्री लिङ्गवैचित्र्य-वक्रता कहते हैं ।

---

१. वि० भ० २।२१

रावण के वचनों में यह वक्रता दीख पड़ती है—

यस्यारोपणकर्मणापि बहवो वीरव्रतं त्याजिताः ।
कार्यं पुञ्जितवाणमीश्वरधनुस्तद्दोर्भिरेभिर्मया ।
स्त्रीरत्नं तदगर्भसंभवमितो लभ्यं च लीलायिता
तेनैषा मम फुल्लपङ्कजवनी जाता दृशां विंशतिः ॥[1]

जिसके आरोपण के व्यापार ने ही बहुतों को वीर व्रत से मुक्त कर दिया है, उसी धनुष पर मुझे अपनी इन भुजाओं से बाण चढ़ाना है जिससे मुझे अयोनिजा स्त्रीरत्न की प्राप्ति होगी । अतः ये मेरी बीसों आँखें खिले हुए कमलों के समूह के समान सुशोभित हो रही हैं ।

यहाँ 'दृशां विंशतिः' के स्त्रीलिङ्ग और फुल्लपंकजवनम् के नपुंसकलिङ्ग होने तथा उन दोनों का समानाधिकरण प्रयोग होने से लिङ्गवैचित्र्यवक्रता का बोध हो रहा है ।

नमस्वता लासितकल्पवल्ली प्रवालवालव्यजनेन तस्य
उरःस्थलेऽकीर्यत दक्षिणेन सर्वास्पदं सौरभमंगरागः ।[2]

वायु के द्वारा कम्पित कल्पलता के वालपल्लव रूप व्यजन से दक्षिण पवन ने उसके उरःस्थल पर सर्वोत्तम सुरभिवाला अंगराग बिखेर दिया ।

इस श्लोक में 'सर्वास्पदं सौरभम्' नपुंसकलिङ्ग और 'अंगरागः' पुंल्लिङ्ग का समानाधिकरण प्रयोग लिङ्गवैचित्र्यवक्रता को पुष्ट कर रहा है ।

(५) **वर्णविन्यास वक्रता** : मञ्जुल वर्णविन्यास द्वारा काव्य में चारुत्व प्रस्फुटित होता है । सीता स्वयंवर के अवसर पर मिथिलापुरी आते हुए रावण के सेनापतियों को दिये हुए आदेश में वर्णविन्यासवक्रता दीख पड़ती है—

ताम्बूलीनद्धमुग्धक्रमुकतरुतलप्रस्तरे सानुगाभिः
पायं पायं कलाचीकृतकदलदलं नारकेलीफलाम्भः ।
सेव्यन्तां व्योमयात्राश्रमजलजयिनः सैन्यसीमन्तिनीभिः
दात्यूह व्यूहकेलीकलित कुहकुहारावकान्ता वनान्ताः ॥[3]

यहाँ पायं पायं, कदलदलं, दात्यूहव्यूहकेलीकलित कुहकुहाराव कान्ता, वनान्ताः आदि में दो दो अक्षरों के एक साथ विन्यास से वक्रता उत्पन्न हो गई है ।

---

१. बालरामायण १।३० २. बालरामायण ७।६६ ३. बालरामायण १।६३

वर्णविन्यास से उत्पन्न सौष्ठव का दूसरा उदाहरण सीता को प्राप्त न कर सकने के कारण उन्मत्त रावण की चकोरों को सम्वोधित कर कही गई उक्ति में लक्षित होता है—

अयि पिक्त चकोराः कृत्स्नमुन्नाय कण्ठान्,
क्रमकवलनचञ्चच्चन्द्रकान्तीरमिश्राः ।
विरहविधुरितानां जीवितत्राणहेतो
र्भवति हरिणलक्ष्मा येन तेजो दरिद्रः ।

इस छन्द में कृत्स्नम्, उन्नाय कण्ठान्, चञ्चच्चन्द्रकान्तीरमिश्राः, त्राणहेतोः हरिणलक्ष्मा आदि पदों की एक साथ योजना से वर्ण-विन्यास जन्म सौंदर्य की सृष्टि होती है।

(६) **वचनवैचित्र्यवक्रता :** "मैथिली तस्य दाराः ।" यह रावण की उक्ति है। यहाँ मैथिली एक वचन और दार वहुवचन में प्रयुक्त है। इसलिये यह वचनवक्रता या प्रत्ययवक्रता का उदाहरण है। इसी प्रकार मैथिली शब्द स्त्रीलिङ्ग और दार पद पुंलिङ्ग होने के कारण लिङ्गवक्रता की भी प्रतीति हो रही है।

(७) **प्रकरण-वक्रता :** जहाँ एक नाटक के भीतर दूसरा नाटक प्रयुक्त होकर सारे प्रवन्ध की सर्वस्वभूत अलौकिक वक्रता को पुष्ट करता है उसे शास्त्रकार प्रकरण वक्रता कहते हैं। राजशेखर द्वारा वालरामायण नाटक में सीता-स्वयंवर नामक नर्भाङ्क की स्थापना प्रकरण-वक्रता का उदाहरण है।

राजशेखर के उक्ति-वैचित्र्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन्होंने इस तत्व का अपनी रचनाओं में जिस कौशल के साथ निर्वाह किया है वह उस युग के किसी अन्य कवि में नहीं मिलता। ये प्रयोग न केवल शास्त्रीय दृष्टि से निर्दोष हैं अपितु साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

राजशेखर में हम नाद-सौंदर्य, शब्द-सौंदर्य, शब्दों की अलंकृति एवं वक्रोक्ति का उचित विन्यास यत्र-तत्र पाते हैं। यह उनके औचित्य-विवेक का ही प्रदर्शन नहीं करता प्रत्युत काव्य-सौंदर्य को भी द्विगुणित कर देता है।

राजशेखर की भाषा

राजशेखर 'कविराज' थे। उस समय कविराज की उपाधि से वही विभूषित हो सकता था जो कवि विभिन्न भाषाओं, विभिन्न प्रवन्धों और विभिन्न रसों में

काव्य-निर्माण करने में समर्थ होता था।[1] राजशेखर की कृतियों को देखकर उनकी 'कविराज' उपाधि की सार्थकता स्वयंसिद्ध हो जाती है । वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे । उन्होंने न केवल शताब्दियों से चली आने वाली संस्कृत की साहित्यिक परम्परा को अक्षुण्ण वनाये रखा, साथ ही अशिक्षित समाज द्वारा व्यवहृत प्राकृत भाषा को सट्टक नाम उपरूपक में प्रतिबद्ध कर पूर्णतया साहित्यिक रूप दे दिया । उनके युग में विभिन्न प्रांतीय भाषायें भी प्रचलित थीं । उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का भी यथावसर प्रयोग किया । इस प्रकार राजशेखर की भाषा में संस्कृत, प्राकृत एवं देशज शब्दों का समन्वय हो गया है ।

राजशेखर की संस्कृत : राजशेखर की संस्कृत व्याकरण-परिनिष्ठित, परिमार्जित एवं प्रौढ़ है। इनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली एक वृहद् शब्द-कोष निर्माण करने की क्षमता रखती है । एक शब्द के लिये अनेक पर्यायों का प्रयोग उनके समृद्ध शब्द भाण्डागार का सूचक है । उदाहरणार्थ शिव के पर्यायवाची शब्द, जिनका प्रयोग राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है, इस प्रकार हैं— नीललोहित,[2] इन्द्रमौलि,[3] भूतपति,[4] पिनाकी,[5] गिरीश[6] पार्वतीपति,[7] श्रीकण्ठ,[8] महेश्वर,[8] रुद्र,[9] शिपिविष्ट,[10] हर,[11] महादेव,[12] भर्ग,[13] इन्दुशेखर,[14] शम्भु,[15]

---

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० ४५ यस्तु तत्र तत्र भाषाविषयेषु तेषु तेषु प्रवन्धेषु तस्मिंस्तस्मिश्चरसे स्वतन्त्रः स कविराजः ।

२. बालरामायण अं० १ पृ० १२, अ० ३ पृ० ८१, अं० ४ पृ० १०२, अं० ६ पृ० १७७ । ३. वही अं० १ पृ० १६, अं० २ पृ० ४२, अं० ३ पृ० ६१ ।

४. वही चं० १ पृ० १७, २६ । ५. वही अं० ४ पृ० ९२, ९८ काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४४, अ० ११ पृ० ६० । ६. बालरामायण अ० ४ पृ० ८५ ।

७. बालरामायण अं० ३ पृ० ७६ । ८. वही अं० १ पृ० १८; अं० २ पृ० ४० ।

९. वही अं० १ पृ० १९; २१, २४ । १०. वही अं० १ पृ० १८ । ११. वही अं० २ पृ० ४३, ४८, अं० ३ पृ० ६५, अं० ४ पृ० ९४ । १२. वही अं० १ पृ० २१; अं० २ पृ० ३१, ३२, ३६ । काव्यमीमांसा अं० १७, ८९; अं० १५ पृ० ८५ । १३. वही अं० २ पृ० ४१, अं० ३ पृ० ८२ । १४. वही अं० १ पृ० २२, २९; अं० २ पृ० ४५, अं० ३ पृ० ६२, ७८ । १५. वही अं० १ पृ० २३; काव्यमीमांसा अं० १२ पृ० ६३ ।

पशुपति,[१] चण्डीश,[२] उमापति,[३] अर्धनारीश्वर,[४] जम्मारि,[५] गिरीशपति,[६] धूर्जटि,[७] चन्द्रशेखर,[८] खण्डेन्दुचूड़ामणि,[९] शितिकण्ठ, मृगांकचूडामणि, त्रिनयन,[१०] भवानीपति,[११] स्थाणु,[१२] विरुपाक्ष,[१३] त्र्यम्बक,[१३] त्रिलोचन,[१४] नीलकण्ठ,[१४] भवानीवल्लभ,[१४] शशिशेखर,[१५] वृषभध्वज,[१६] वृषध्वज,[१७] त्रिपुरप्लोषी,[१८] वृषलांछन,[१९] अर्धेन्दुमोलि,[२०] पार्वती-प्राणनाथ,[२१] इन्दुमौलि,[२२] चन्द्रचूडामणि,[२३] वृषभलांछन,[२४] त्रैयक्ष,[२४] सदाशिव,[२५] भाललोचन,[२५] प्रेतनाथ,[२६] ईश्वर,[२७] परमेश्वर,[२८] प्रीतेन्दुमौलि[२८] शूलपाणि,[२९] त्रिपुरान्तकर,[३०] भवानीसखा,[३१] वृषांक,[३२] शंकर,[३३] रुद्र,[३४] श्यामकण्ठ,[३५] दिगम्वर,[३६] दिग्वासस्,[३७] शूली,[३८] चन्द्रचूडं,[३८] मृड[३९] ।

---

१. बालरामायण अं० १ पृ० २५; अं० २ पृ० ४४,४८, ५१; काव्यमीमांसा अं० १२ पृ० ६३ । २ वही अं० १ पृ० २७; अं० २ पृ० ४६; अं० ३ पृ० ८०, ८२। ३. वही अं० २ पृ० २९; अं० ३ पृ० ७७ । ४. वही अं० १० पृ० २८८; कर्पूरमंजरी १, २८, २९। ५. वही अं० २ पृ० २९ । ६. वही अं० २ पृ० ३२ । ७. वही अं० ३ पृ० ८० काव्यमीमांसा अं० १३ पृ० ७२ । ८. वही अं० ३ पृ० ७३; अं० ४ पृ० ९६ । ९. वही अं० २ पृ० ३७ । १०. वही अं० ४ पृ० ८८ । विद्धशालभंजिका अं० ४,१४,१५ । ११. वही अं० ३ पृ० ५३ । विद्धशालभंजिका अं० ४,२७ । १२. वही अं० २ पृ० ४३, ४५; विद्धशालभंजिका अं० १,२२। काव्यमीमांसा अं० १३ पृ० ७६। १३. वही अं० ४ पृ० ८७ कर्पूरमंजरी ३.२०, २१; काव्यमीमांसा अं० १३ पृ० ७२। १४. वही अं० २ पृ० ४१; अं० ३ पृ० ६५, ८१; अं० ४ पृ० ८६ । १५. वही अं० २ पृ० ४३। १६. वही अं० २ पृ० ५१ । १७. वही अं० २ पृ० ७८ । १८. वही अं० ३ पृ० ८० । १९. वही अं० ३ पृ० ८२ । २०. वही अं० ४ पृ० ८८, ९२। २१. वही अं० ४ पृ ८८ । २२. वही अं० ४ पृ० ९१ । २३. वही अं० ४ पृ० ९३ । २४. वही अं० ४ पृ० ९५ । २५. वही अं० ४ पृ० १०० । २६. वही अ० ४ पृ० १०९ । २७. वही अं० ४ पृ० ११६ । २८. वही अं० ४ पृ० ११९ । २९. बालरामायण अं० ८ पृ० २५३ । ३०. वही अं० ९ पृ० २६१ । ३१. वही अं० ९ पृ० २६१ । ३२. वही अं० १० पृ० २९० । ३३. काव्यमीगांसा अं० १६ पृ० ८६, ८७ । ३४. वही अं० १३ पृ० ७२ । ३५. वही अं० ११ पृ० ६० । ३६. वालरामायण अं० २ पृ० २९ । ३७. काव्यमीमांसा अं० ५ पृ० १६ । ३८. वालरामायण अं० ३ पृ० ६७ । ३९. वही अं० ३ पृ० ७९ ।

राजशेखर के ग्रन्थों में सीता के भी अनेक नाम मिलते हैं । जैसे पृथ्वीपुत्री,[1] कमलाक्षी, मृगाक्षी, ललिताङ्गी, कृशाङ्गी,[2] जनकनन्दिनी, रामगृहिणी,[3] वैदेही,[4] मैथिली,[5] जनकराजपुत्री,[6] जानकी,[7] जनकतनया,[8] धरणीसुता,[9] जनकात्मजा,[10] जनकराजकन्या,[10] अगर्भसम्भवा,[10] और सीरध्वजात्मजा ।[11]

रामचन्द्र के भी अनेक नामों की जानकारी बालरामायण से प्राप्त होती है । यथा-रामभद्र,[12] राम,[13] राघव,[14] दाशरथि,[15] रघुनन्दन,[16] सीतापति,[17] रघुपति,[18] जानकीवल्लभ,[19] रघुग्रामणी[20], मार्तण्डैककुलप्रकाशतिलक[20], त्रैलोक्य-रक्षामणि,[20] रामदेव,[21] दशरथनन्दन,[22] बालनारायण[22], भरताग्रज,[23] कोशलनरेन्द्रनन्दन,[24] रघुकुलचन्द्र,[25] मैथिलीनाथ,[26] रघुभुभुज,[27] दशकण्ठसूदन,[28] कौशल्यातनय[29] ।

रावण की नामावली भी दृष्टव्य है:—दुर्धरतपोविशेषपरितोपितारविन्दासन,[30] त्रिभुवनैकमल्ल,[30] हेलावन्दीकृतमहेन्द्र[30], कपिशलोमशवाह,[31] अहल्याजार[31]

---

१. वही अं० १० पृ० २८६ । २. वही अं० १० पृ० २८४ । ३. वही अं० १० पृ० २८१ । ४. वही अं० ५ पृ० १३९ । ५. वही अं० २ पृ० ५७,६३, अं० ५ पृ० १४२ । ६. वही अं० ५ पृ० १२४। ७. वही अं० ३ पृ० ५७,६४। ८. वही अं० ३ पृ० ५७ । ९. वही अं० १ पृ० १६ । १०. वही अं० १ पृ० १९ । ११. वही अं० ५ पृ० १२३ । १२. बालरामायण अं० १ पृ० १४। १३. वही अं० २ पृ० ३२, अं० ३ पृ० ५६। १४. वही अं० २ पृ० ४८। १५. वही अं० ६ पृ० १७७। १६. वही अं० ४ पृ० ११२। १७. वही अं० ५ पृ० १४४ । १८. वही अं० ६ पृ० १४९ । १९. वही अं० ७ पृ० १७३ । २०. वही अं० ७ पृ० १७९ । २१. वही अं० ७ पृ० १८३ । २२. वही अं० ७ पृ० १८९ । २३. वही अं० ८ पृ० २१५ । २४. वही अं० ९ पृ० २५९। २५. वही अं० ३ पृ० ५७; अं० ६ पृ० १६०। २६. वही अं० ९ पृ० २७०। २७. वही अं० १० पृ० २९३ । २८. वही अं० १० पृ० ३०७। २९. वही अं० ६ पृ० १५६ । ३०. बालरामायण अं० १० पृ० २७७ । ३१. वही अं० ९ पृ० २६१ ।

द्रुहिणप्रणप्ता,[१] लङ्केन्द्र,[२] लङ्काभर्ता,[३] निशाचरपति, [४] दशानन,[४] पुलस्त्यापत्य,[५] दशकण्ठ,[६] दशवदन,[७] पौलस्त्य,[८] दशकन्धर,[९] पातकैकरसिक, विरञ्च-कुलकलङ्क, लङ्कोपपति, कुवेरवैरी,[१०] संक्रन्दननन्दन,[११] निशाचरचक्रवर्ती,[१२] नक्तंचिरचक्रवर्ती,[१३] राक्षसेन्द्र,[१४] पुलस्त्यपुत्र,[१५] पुलस्त्यनन्दन,[१६] राक्षसचक्रवर्ती[१७], दशमुख[१८] और दशग्रीव[१९] ।

पार्वती के लिये भिन्न पदो का प्रयोग किया गया है : पार्वती,[२०] हरवल्लभा[२१] मृडानी,[२२] चामुण्डा,[२३] देवी,[२३] हिमाद्रिसुता,[२४] महेश्वरवल्लभा,[२५] भवानी,[२६] भगवती,[२६] गिरिसुता,[२७] अचलसुता,[२८] उमा,[२९] गिरिदुहितर्[३०] रुद्राणी,[३१] गिरिजा,[३२] गिरीन्द्रसुता,[३३] एवं गौरी[३४] ।

इसी प्रकार परशुराम के लिये जामदग्न्य,[३५] परशुराम, आजन्मवैखानस, श्रुत्यर्थवीथीगुरु,[३६] भार्गव, भर्गशिष्य, रेणुकापुत्र, गिरिशवालशिष्य,[३७] भृगुपुंगव,

---

१. वही अं० ८ पृ० २१४, २५३ । २. वही अं० १ पृ० २३, अं० ७ पृ० १८३ । ६. वही अं० ६ पृ० १५६ । ४. वही अं० २ पृ० ५७, अं० ६ पृ० १६० । ५. वही अं० ५ पृ० ११५ । ६. वही अं० १ पृ० १५, अं० ३ पृ० ६४ । ७. वही अं० १ पृ० २३, अं० ३ पृ० ६३ । ८. वही अं० २ पृ० ३६, ४३, ५८ ९. वही अं० १ पृ० १२, अं० २ पृ० ३८ । १०. वही अं० २ पृ० ४७ । ११. वही अं० २ पृ० ४६ । १२. वही अं० २ पृ० ४२ । १३. वही अं० २ पृ० ३६ । १४. वही अं० १ पृ० २७ । १५. वही अं० १ पृ० २० । १६. वही अं० १ पृ० २१ । १७. वही अं० १ पृ० २० । १८. वही अं० १ पृ० १६ । १९. वही अं० २ पृ० ३२ । २०. वही अं० १ पृ० १९ । २१. वही अं० १ पृ० २५ । २२. वही अं० १ पृ० २३ । २३. कर्पूरमंजरी अं० ४,१९ । २४. बालरामायण अं० २ पृ० ३२ । २५. वही अं० २ पृ० ४५ । २६. वही अं० ४ पृ० ९५ । २७. वही अं० २ पृ० ४४ । कर्पूरमंजरी १।४ । २८. बालरामायण अं० ४ पृ० ९३ । २९. वही अं० ४ पृ० ९४ । ३०. वही अं० ४ पृ० ९५ । ३१. वही अं० ४ पृ० १०९ । ३२. काव्यमीमांसा अं० १३ पृ० ७१ । ३३. कर्पूरमंजरी अं० १,२ । ३४. वही अं० १, २९, ३० । ३५. बालरामायण अं० १ पृ० १२ । ३६. वही अं० २ पृ० ३२ । ३७. वही अं० २ पृ० ३८, ४३, ५१, ५२; अं० ३ पृ० ८६ ।

इन्दुशेखरारिशिष्य,[१] नीललोहितशिष्य,[२] रैणुकेय,[३] जमदग्निसूनु,[४] भृगुनन्दन,[५] जमदग्न्यपत्य,[६] भार्गवपुङ्ग,[७] जमदग्निज,[८] चण्डीशशिष्य,[८] रेणुकासुनु[९]।

समुद्र के लिये भागीरथीवल्लभ,[१०] जलनिधि,[१०] समुद्र,[१०] पयोधि,[११] अम्भोधि, अम्बुनिधि, वारांनिधि,[१२] जलधि,[१३] अम्बुधि,[१४] तरंगिणीनाथ,[१४] रत्नाकर,[१४] अब्धि,[१५] जलधन,[१५] सागर,[१५] भागीरथीनाथ,[१५] पीयूषकर,[१५] गंगावल्लभ,[१५] नदीनाथ,[१६] अर्णव,[१६] महार्णव,[१६] मकरालय,,[१६] अकूपार,[१६] वारिराशि,[१७] महोदधि,[१८] ये शब्द आये हैं।

राजशेखर के कोष में अनुकरणात्मक शब्दों का प्राचुर्य है जिनके प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य और अभिव्यंजकता का समावेश हो गया है। ये शब्द हैं—विरह-माविरह,[१९] सुखिनमसुखिन,[२०] स्कन्दावस्कन्द,[२१] मड़मड़ित,[२२] रम्भारम्भादल,[२३] तारातारांधिप,[२४] कहकहारव,[२५] कोष्ठप्रकोष्ठ,[२६] कोडण्डदण्ड,[२७] भलभल्ल,[२७] चक्रचक्रं,[२८] परशुकपरशुक,[३०] शकुन्त-शकुन्त,[३१] चतुरङ्ग-चतुरङ्ग,[३२] मातङ्गमातङ्ग,[३३] स्यन्दनस्यन्दन,[३४] अनीकसमनीक[३५]।

---

१. बालरामायण अं० २ पृ० ४०। २. वही अं० २ पृ० ४२। ३. वही अं० ४ पृ० ९१। ४. वही अं० ४ पृ० ९५। ५. वही अं० ४ पृ० ९५। ६. वही अं० ४ पृ० ९७। ७. वही अं० ४ पृ० १००। ८. वही अं० ४ पृ० १०४। ९. वही अं० ४ पृ० १०९। १०. वही अं० ७ पृ० १८३। ११. वही अं० ७ पृ० १८६। १२. वही अं० ७ पृ० १८७; अं० १० पृ० २९८। १३. वही अं० ७ पृ० १८८, १८९। १४. वही अं० ७ पृ० १८८। १५. वही अं० ७ पृ० १८९। १६. वही अं० ७ पृ० ११९१। १७. वही अं० ७ पृ० १९३। १८. वही अं० ७ पृ० १९९। १९. बालरामायण अं० ५ पृ० २७। २०. वही अं० ५ पृ० २७। २१. वही अं० ४ पृ० १०९। २२. वही अं० ४ पृ० १०९। २३. वही अं० ५ पृ० १३३। २४. वही अं० ५ पृ० १३३। २५. वही अं० ५ पृ० १४४। २६. वही अं० ६ पृ० १४५। २७. वही अं० ७ पृ० १९९। २८. वही अं० ७ पृ० २०१। २९. वही अं० ७ पृ० २०१। ३०. वही अं० ७ पृ० २०१। ३१. वही अं० ७ पृ० २०१। ३२. वही अं० ७ पृ० २०१। ३३. वही अं० ७ पृ० २०१। ३४. वही अं० ७ पृ० २०१। ३५. वही अं० ७ पृ० २०१।

राजशेखर को कुछ शब्दों से विशेष लगाव है । इन्होंने इन शब्दों की आवृत्ति एवं उनका उचित विन्यास किया है । ये शब्द हैं--गौष्ठीगरिष्ठ,[१] षाण्मासिक,[२] मांसल,[३] माञ्जिष्ठ,[४] सौविदल्ल,[५] दुग्धमुग्ध,[६] षाड्गुण्य,[७] औल्लागत,[८] उपनिषद्,[९] भूर्भुवःस्वः,[१०] द्विभे,[११] कौदण्ड,[१२] कौदण्डदण्ड,[१३] चण्ड,[१४] डामर,[१५] ग्रामणी,[१६] और ग्राम[१७] । राजशेखर ने कपितपय शब्दों का प्रचलित अर्थ से भिन्न रूप में प्रयोग किया है । परन्तु उनमें कहीं विसंगति नहीं आने पाई । उदाहरणार्थ-- सनाभि का प्रयोग समान अर्थ में, मूल का उच्च के अर्थ में, विलिनं का मिश्रित के लिये, वन का सामान्य वृक्ष समूह के लिये, प्रणयिनी का सुन्दरी के लिये एवं परिश्रम का भ्रांति के लिये प्रयोग ।

इनकी रचनायें कतिपय नूतन किन्तु रमणीय शब्दावली से विभूषित हैं । यथा-पुराणमौक्तिकमणिच्छार्ये[१८]-समधुच्छअछविश्चन्द्रमा,[१९] बालविडाल[२०] परिणामस्फुटित-दाडिमी-फल[२१] लीलागुरू,[२२] कुलगुरू,[२३] दीक्षागुरू,[२४]स्मरलेखवाचन-केलीप्रदीप,[२५] पारदरसचुम्बित,[२६] पारदरससिक्त[२७] ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजशेखर की संस्कृत उनके प्रौढ़ पांडित्य से मण्डित है ।

---

१. विद्धशालभंजिका अं० १,६, ३५–३६, अं० ४,१–२ । २. वही १।१७–२५ । ३. वही १।१२, १८, २६, ३६; ३।१६–१७ बालरामायण ४।१०–११; ७।४४–४५ । ४. विद्धशालभंजिका १।९, ३।०-१-२, बा० रा० ३।१०, २४, ८५; ५।२४,३८ । ५. वही १।४; बा० रा० १।४०–४१; ४।५६–५७ । ६. वही १।३९, ३।८, बा० रा० ५।३८ । ७. वही१।९, ३।०१–२; बा० रा० ५।५८–५९ । ८. वही १।३३–३४; २।३–४; ४।१-२ । ९. बा. रा. ३।७-८; ४।०–१–२; २९, ६८ । १०. वही १।६१; २।२९–३०, ५० । ११. वि. भं. १।११–२३, बा० रा० १।६२ । १२. वही १।४१, ४७, ४३, ४५, ७०, ७३, ८३; ४।१७, २३, ७२, ७८; ५।३२, ६५८ । १३. वही १।४१, ४७, ६१; ४।२६ । १४. वही १।४६, ६१–६२; २।२९; ३।८९; ३०, ४२, ४।१९ । १५. वही १।४६; २।७, ३४, ५८, ३।३७ । १६. वही ३।१०; ४।५०–५१ । १७. वही ५।६–७, १८–३६ । १८. विद्धशालभञ्जिका १।११ । १९. वही १।११। २०. वही १।११। २१. वही १।१४–१५ । २२. वही १।२९ । २३. वही १।१ २४. वही १।२७ । २५. वही ३।११ । २६. वही ३।१७ । २७. वही २।१६

राजशेखर की प्राकृत

प्राकृत भाषा : राजशेखर के ग्रन्थों में प्राकृत का पूर्ण विकसित रूप दृष्टिगत होता है । कर्पूरमंजरी सट्टक की रचना प्राकृत में ही है । बालरामायण के नीच पात्रों के संवादों में तथा विद्धशालभंजिका के कतिपय पात्रों के सम्भाषण में इसी भाषा का व्यवहार किया गया है । राजशेखर का प्राकृत के प्रति प्रेम निम्न पंक्तियों में ध्वनित होता है ।

परुसा सक्किअवंधा पाउदवन्धो वि होइ सुउमारो ।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंत्तरं तेत्तिअ मिमाणं ।।[1]

संस्कृत भाषा में की गई रचनायें नीरस होती हैं, प्राकृत की रचनायें ही मधुर होती हैं । जिस तरह पुरुष कठोर होते हैं उसी तरह संस्कृत रचनायें कठोर होती हैं । जिस तरह स्त्रियाँ सुकुमार होती हैं उसी तरह प्राकृत रचनायें मधुर और सुकुमार होती हैं ।

राजशेखर ने अपनी रचनाओं में प्राकृत के शौरसेनी एवं महाराष्ट्री इन दो भेदों का ही प्रयोग किया है । इनके काव्य में शौरसेनी गद्य के लिये तथा महाराष्ट्री पद्य के लिये प्रयुक्त है ।

शौरसेनी : शूरसेन जनपद के निवासियों की आपस की बोलचाल की भाषा शौरसेनी कहलाती थी । शौरसेनी प्राकृत की प्रकृति संस्कृत ही है ।

महाराष्ट्री प्राकृत : प्राकृत शब्द का प्रयोग साधारणतः महाराष्ट्री प्राकृत के लिये ही किया जाता है। इस भाषा की उल्लेखनीय विशेषता इसके स्वरबाहुल्य में है । शौरसेनी भी अपनी विशेषताओं के अतिरिक्त महाराष्ट्री प्राकृत पर आश्रित है । कर्पूरमंजरी सट्टक में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के शब्दों का प्रयोग निम्न रूप में उपलब्ध हैः—

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
अद्य	अद्य	अह
तथा	तथा	तहा
यथा	जथा	जहा
कथम्	कथम्	कहम्
इह	इध	इह

१. कर्पूरमञ्जरी १।८

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
ततः	तधो	तश्रो
इदम्	इदम्	इश्रम्
इति	इदि	इइ
जानाति	जानादि	जाणाइ
ददातु	देदु	देउ
भवति-तु	भोदि-दु	होई-हो
भविष्यति	भविस्सदि	होइ
लभते	लहदि	लहइ
वर्तते	वत्तदि	वत्तई
प्रवर्तताम्	पवतदु	पवत्तउ
तिष्ठति	चिष्ठदि	थह
हरित	हरदि	हरइ
कथ्यताम्	कथिअदु	कहिजंउ
क्रियताम्	करिश्रदु	किज्जउ
दृश्यते	दिसदि	दिसइ
भण्यते	भणिश्रदि	भणइ
कृत	क्रिद	कअ
गत	गद	गअ
जात	जाद	जाश्र
हित	हिद	हिश्र
श्रानीत	श्रानीद	श्रानीश्र
स्थित	थिद	थिश्र
स्थापित	थाविद	थाविश्र
कलित	कलिद	कलिश्र
कथित	कधिद	कथिश्र
घटित	घडिल	घडिश्र
दयित	दइद	दहश्र
पुंखित	पुंखिद	पुंखिश्र
भृत	भरिद	भरिअ
निवेशित	निवेसिद	निवेसिश्र

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
अवतीर्ण	ओदिन्न	अवइन्न
अद्भुत	अच्चअम्भुद	अम्भुअ
प्रसरित	प्रसविद	प्रसइ
प्रभृति	पहुदि	पहुइ
प्राकृत	पाउड	पाउअ
संस्कृत	सक्कद	सक्कअ
मनोरथ	मनोरथ	मनोरह
मरकत	मरगद	मरग
मिथुन	मिथुन	मिदुन
रति	रदि	रइ
रीति	रीदि	रीय
वाट	वाड	वाअ
तोय	तोद	तोअ
सरस्वती	सरस्वदि	सरसइ
सरित	सरिद	सरिअ
मन्मथ	मम्भध	मम्मह
दिवस	दिवस	दिअइ

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के उन संस्कृत मूलक शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है जिनके रूप दोनों में एक ही हैं ।

संस्कृत	शौरसेनी एवं महाराष्ट्री
मृणाल	मुणाल
वृन्त	वेण्ट
मृगतृष्णा	मिअतिण्हिआ
मृगलांछन	मअलांछन
ऋक्ष	रिक्ख
जीर्ण	जुण्ण
वेद्य	वेज्ज
मौक्तिक	मौक्तिअ
मुक्ताफल	मुत्ताहल

किंकणी	किंकिणी
फलक	फलिग्र
शृंखला	सिंखिला
महोत्सव	मह्सव
ग्रंधकार	ग्रंधआर
स्वप्नक	सिविणग्र

राजशेखर की मौलिकता उनके नूतन शब्द प्रयोगों में है। जैसे शिथिल के लिये ढिल्ल एवं सिढ़िल का प्रयोग, लट्ठी का श्लिष्ट प्रयोग (लता एवं यष्टि रूप में) यष्टि के लिये लछिनी का प्रयोग तारुण्य के लिये लगिम राजा के लिये ठक्कुर शब्द का प्रयोग प्राकृत में नितान्त नवीन है। इन शब्दों पर कन्नौज की स्थानीय बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

व्याकरण की शुद्धता : राजशेखर की प्राकृत व्याकरण परिनिष्ठित है। इसका भाषा का मूल आधार व्याकरण है। व्याकरण की दृष्टि से शुद्धशुद्धता के प्रति राजशेखर पूर्णतया जागरुक हैं। कतिपय प्राकृत शब्दों के विवेचन से यह कथन स्पष्ट हो जायगा।

व्याकरण की दृष्टि से कुछ प्राकृत शब्दों की समीक्षा

धनुहं[1] :—'धनुषो वा'[1ग्र] धनुष् शब्द के प्राकृतिकरण में ग्रत्यन्त व्यंजन का ह हो जाता है।

सारिच्छो[2] —'ग्रतः समृद्धयादो वा' [2ग्र]—सदृष्क्ष शब्द के ग्रादि ग्राकार का जो हो जाता है।

णिडाल[3] —'पक्वाङ्गार-ललाटे वा' [3ग्र] तथा एषवादेरतं इत्वं वा भवति —सूत्र से ललाट का णिड़ाल या णड़ाल होता है।

ग्रौल्ल[4] —'उदोद्वादे [4ग्र]—सूत्र से ग्रार्द्र का ग्रौल हो जाता है।

दूसह[5] —लुकि दुगे वा' [5ग्र]—दुस्सह शब्द के दुर को दू होकर दूसह बन जाता है।

१.	कर्पूरमंजरी २।३		१ग्र शब्दानुशासन १—२२
२.	वही	२।३	२ग्र शब्दानुशासन १—२२
३.	वही	४—१९	३ग्र शब्दानुशासन १—४४
३.	वही	२—२०	३ग्र शब्दानुशासन १—४७
४.	वही	१-२८, ३-१, ४-४७	५ग्र शब्दानुशासन १—८२
५.	वही	४।१	५ग्र शब्दानुशासन १—११५

थोर[१] --'औत्कूष्माण्डी-तूणीर-कर्पूर-स्थूल ताम्बूल-गुड्ची-मूल्ये'[१अ] सूत्र से स्थूल का थोर रूप होता है ।

तोणीर[२] --उपयुक्त सूत्र से ही तूणीर का तोणीर हो जाता है ।[२अ]

दूहव[३] --'ऊत्वे दुर्भग-सुभगे वः' [३अ] सूत्र से दुर्भग का दूहव हो जाता है ।

विहुर[४] --'निकष-स्फटिक-चिकुरे हः'[४अ]--चिकुर के क का इस नियमानुसार ह हो जाता है ।

वम्मह[५] --""मन्मथे वः"[५अ]--सूत्र से मन्मथ के म का व हो जाता है ।

हरिअंदु[६] --"श्चो हरिश्चन्द्रे"[६अ]-- सूत्र से हरिश्चन्द्र शव्द के श्च का अ हो जाता है ।

धूआ[७] --"दुहितृ-भगिन्योधूआ-वहिण्यो"[७अ] --सूत्र से दुहितृ का धूआ हो जाता है ।

आढ़त[८] --"मलिनोभय-शुक्ति छप्तारव्ध-पदातेर्मइलावह-सिप्पि-छिक्का-ढत्त-पाइक्कं"[८अ] सूत्र से आरव्ध शव्द आढ़त में परिवर्तित हो जाता है ।

सिप्पि[९] --"उपयुक्त सूत्र से ही शक्ति शव्द का रूप सिप्पि होता है"[९अ] ।

वैरुलिअ[१०]--"वैडूर्यस्य वैरुलिअं"[१०अ]सूत्र से वैडूर्य शव्द को वेरुलिअ आदेश हो जाता है ।

वाहिर[११]--"वहिसौ वाहिं-वाहिरो"[११अ] वहिः शव्द का इस सूत्र से वाहिर आदेश हो जाता है ।

---

१. वही २।२७, ४४, ३।६।१९ १अ शव्दानुशासन १-१२४ । २. वही २।१६ । २अ शव्दानुशासन १-१२४ । ३. वही ३।२३ । ३अ शव्दानुशासन १-१९२ । ४. वही २।२१ । ४अ शव्दानुशासन १-१८६ । ५. कर्पूर मंजरी २-३, १८, ३९, ३।११ । ५अ शव्दानुशासन १-२४२ । ६. वही २-४० । ६अ वही २-८७ । ७. वही २।१९।१९ । ७अ वही २-१२६ । ८. वही ४-९, १-४ । ८अ वही २-१, ३८ । ८क. प. १-४ ५अ-शब्दा० २-१३८ ९. वही १-३४ । ९अ वही २-१३३, २-१३८ । १०. वही १-३४ । १०अ वही २-१४० । ११. वही क० प० १-१४, १८-२० । ११अ वही २-१४४, २।२।४।१।१८ ।

घर[1] —"गृहस्य घरापतौ" [1अ]—इस सूत्र पर गृहशब्द घर में परिवर्तित हो जाता है।

वणिडम [1क], तुंगिम,[3] धवलिम,[4] तरुणिम,[5] त्वस्य डिमा-त्तणौ वा" [1अ]

सूत्र से घण्डिम तुंगिम्, धवलिम और तरुणिम शब्द के त्व प्रत्यय डिम में परिवर्तित हो जाते हैं।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर की प्राकृत इतनी व्याकरण सम्मत है कि आचार्य हेमचन्द्र ने राजशेखर की प्राकृत के आधार पर शब्दानुशासन में प्राकृत शब्दों का विवेचन किया है, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी।

राजशेखर द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भाषा पर दृष्टि डालने से हमें दो बातें अवगत होती हैं। एक तो यह कि इन्होंने देशज शब्दों को उदारता से अपनाया है।

कन्दोट्ट[6] रिछोली,[7] हलवोली,[8] (हलवुल्लापा) छइल्ल,[9] टप्परकर्णा टैंटाकराल,[10] वक्कर,[11] तिमिंगल,[12] बुक्का,[13] अवइल्ल,[14] वरिल्ल,[15] उव्विव्विर,[16] कडिल्ल,[17] चंचरीओ,[18] चंग,[19] ओलग्गाविग्र,[20] मरन्द,[21]

---

१. वही १–१६। १अ वही २।१५४। २. वही १।३६, ३।६। १अ वही २।१५४। ३. वही २।४१। १अ वही २।१५४। ४. वही ३–१९ ६अ वही २।१५४। ६. बा० रा० पृ० ६९, २०२, २४२, २५९, वि० भ० १–१९।२०। ७. बा० रा० पृ० ६५, ६६, ७५, १९४, २०९, २४०, वि० भ० पृ० ३।२२।२३ क० म० ३–२०। ८. बा० रा० पृ० १५०, २००, क० म० १–४, ३–३४। ९. क० म० १–५, ३–९। १०. क० म० १–१८, २०। ११. बा० रा० ११, वि० भ० ३।३–४। १२. बा० रा० पृ० ८। १३. बा० रा० ९। १४. क० म० १–२०। १५. बा० रा०पृ० १४१, क० म० ४–१२। १६. क० म० १–१२। १७. क० म० १–२७। १८. वि० भ० १–४ १९. बा० रा० १२६, क० म० १–३१–३३। २०. वि० भ० १।३३।३४। २१. क० म० २–२३, ३–३०।



गौडाद्याः संस्कृतस्थाः परिचितरुचयः प्राकृते लाटदेश्याः ।
सापभ्रंश प्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्क भादानकाश्च ॥
आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते ।
यो मध्येमध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः ॥



मंजीर,[१] वोल्लई,[२] आअल्लअ,[३] एक्केकेम,[४] कोड्ड,[५] खिडक्किआ,[६] चक्कल, दिक्किद,[७] णिअंसल,[८] णिपट्ट,[९] तुव्हिक्क,[१०] पव्भार,[११] पाडिसिद्धी,[१२] फरअ,[१३] वाउल्लिआ,[१४] मसल,[१५] महल्ल,[१६] लठ्ठअ,[१७] लुम्वी,[१८] वडत्तण,[१९] संघाटी,[२०] साहुलिआ,[२१] सिहिण,[२२] सहिंजन,[२३] आदि ।

राजशेखर ने प्राकृत सट्टक में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है । कर्पूरमंजरी में राजशेखर ने जिन तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, वे हैं:—

अलंकार, अवन्तिसुन्दरी, अवसर, असुर, अहह, अहो, आडम्बर आतंक, आरम्भ, आलवाल, आली, आवली, आविल, इत्थं, इन्दीवर, इन्दु, इव, इह, उत्तंस, उत्तर, उत्तुंग, उमा, उल्लस, एण, एवं, कंकण, कंकेली, कज्जल, कण, कण्ठ, कन्द, कमल, कमला, कर, करंक, करण, करवाल, कराल, कलंक, कलम, कलम्व, कलहंस, कला, कलेवर, काण, काम, कामं, कायं, कार, कारणं, कारा-मन्दिर, काल, काली, किंकरी, किंकनी, किरण, किल, कुंकुम, कुण्डल, कुन्त, कुन्तल, कुन्दमाला, कुम्भ, कुरल, कुल, कुसुम, कुहर, कूर, केल, केवल, केसर, कोमल, कोलाहर, खण्ड, गंगा, गण, गण्ड, गन्ध, गन्धहरिण, गम्भीर, गरल, गाढ़, गिरि, गुण, गुरु, घण्टा, घरह, चंचल, चंचुर, चण्ड, चम्पा, चामर, चामुण्डा, चारुचित, चूडामणि, चोल, छल, छवि, छूरण, जगंम, जल, जीव, ठक्कुर, डम्वर, डिम्व, तमाल, तरंग, तरल, तरु, तरुण, तार, तारा, ताल, तिमिर, तिल, तुन्दिल, तुरंग, तुला, तोरण, दण्ड, दण्डरास, दन्त, दर, दासी, दाह, दिवसदूर, देव, देवी, देह, दोला, दोहल, धर, धवल, धारा, पंक, पंकरुह, पंकिल, पंकेरुह,

---

१. क० म० २–१३ । २. क० म० २–१० । ३. क० म० २–१० । ४. क० म० ३–१० । ५. क० म० २।३७, ३।३ । ६. क० म० ३।२० । ७. क० म० २।३४, २३–२।११ । ८. क० म० ३।१५ । ९. क० म० १।१७ । १०. क० म० ४।२० । ११. क० म० ४–१९ । १२. क० म० १–३०, २०, २-१० । १३. क० म० ३-९ । १४. क० म० ४-१९ । १५. क० म० २-४४ । १६. क० म० २–९ । १७. क० म० ३–१८ । १८. क० म० १–३२ । १९. क० म० ४–३ । २०. क० म० १–३ । २१. क० म० १–२० । २२. क० म० १।३४, ३।१६, ४।७ । २३. क० म० १–२० ।

पञ्च, पचवाण, पंचम, पचाल, पंजर, पट्ट, पर, परम, परम्परा, परिदम्भ, परिसर, परिहास, पल्लव, पाणि, पामर, पिंत्र, पिच्छ, पिंजर, पिण्ड, पुञ्ज, पूर, पूरण, कण, फल, फुल्ल, वन्ध, वलि, वहल, वाण, वाल, वाहु, वाहुमूल, विन्दु, विम्व, विस, भंग भंगी, भंगुर, भार-भाव, भूगोल, भूमि, मंजरि, मंजीर, मञ्जु, मणि, मण्डल, मण्डली, मन्द, मसि, महादेवी, महिला, मही, माला, मूल, रण्डा, रमण, रमणी, रहव, रस, राढ़, राहु, रुढ़ि, रेणु, लंका, लुम्व, लम्भ, लीला, लोल, लोह, वर, वल्ली, वसन्त, वसुन्धरा, वाणी, वायु, वारि, वारुण, वारुणी, वास, वासर, विडम्व, विरह, विलास, विलोल, विवाह, वीणा, वेणी, वेणु, वेला, संग, संगम, सज्ज, संचरण, संधि, सम समाधि, सरणि, सरल, सलिल, सह, सहसा, सार, सारंग, लिहद, सुवुहुल, सुर, सुरंग, सुरा, सुलोल, हंस, हर, हरण, हरि, हरिणी,हला, हार, हाल, हास, हि, हुंकार, हुडुक एवं हेला ।

राजशेखर द्वारा प्रयुक्त देशज एवं संस्कृत के पर्याय प्राकृत भाषा में उपलव्ध नहीं थे, यह वात नहीं है। सत्य तो यह है कि कविराज राजशेखर का विभिन्न भाषाओं पर अधिकार था । अतः उन्होंने अपने अपार भाषा-कोष का पाण्डित्य पूर्ण प्रयोग किया है ।

सूक्तियाँ : राजशेखर के भाषाधिकार की परिचायक इनकी सूक्तियाँ हैं उनकी तीखी, मार्मिक सूक्तियाँ वाणी का श्रृंगार हैं । परिशिष्ट में दी गई कतिपय सूक्तियाँ इस कथन का ज्वलन्त प्रमाण हैं ।

भाषा विषयक अनुशीलन से हमें ज्ञात होता है कि राजशेखर के पास शव्दों का अपार भंडार था जिसमें संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत तथा देशज भाषाओं के शव्द भी सम्मिलित थे । भाषा को भाव के अनुसार नावीन्य देने की अद्भुत क्षमता भी इनमें थी । नूतन शव्दों के प्रयोग द्वारा भाषा में निखार आ गया है । सुभाषित एवं सूक्तियों के सहज प्रयोग के कारण भाषा में सरलता एवं प्रांजलता आ गई है ।

राजशेखर की रचना शैली

प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग राजशेखर का विशेष गुण है । युद्ध–प्रसंगों के लिये इनका समासवहुल गौड़ीया का विन्यास दर्शनीय है । उनकी उपमा, उत्प्रेक्षा की योजना भाषा में अनूठापन ला देती है । संमरागण के निम्न वर्णन में इसकी अभिव्यक्ति हो रही है:—

"देव पेक्खदु अणवरअविप्पइण्णघुसिणचुण्णं विअ अम्वरं विरअअन्तं भुवणगब्भप्पसरिदं रअसमुद्दमठ्ठमं विअ वित्थारअन्तं तिदिवदंसण-दिण्णप्पआणं विअ धरणिमण्डलं दंसअन्तं विहिअवसुन्धराफंसभअं रवितुरंगाणं उच्छलिय-धूलिवलयतलिणीकिअभूमिभारत्तणेण किअमहानुग्गहं भुअंगवइणो सेमस्स वीरजण दंसणणिवेसिअवेसविसेसपंसुलत्तणेण असूइयवित्थारं विज्जाहरीहिं पओसविसट्टणअणकन्दोट्टभरणणिवारणदिण्णपाणि पिहिदवयणत्तणेण जुउच्छिअं अच्छराहिं घण्टाटंकारसुणिज्जन्तकरिन्दं कणअकिंकिणीझणंकारजाणिज्जन्त सन्दणं हेसारवसूइज्जन्ततुरंगं कट्ठिअगुणणिविडणमन्ताटणिमक्ककडक्कार-कलिज्जन्तधाणुक्कं अंगपरिफंसपडिजाणिज्जन्तरिकखरक्खसवाणरं चउरङ्गवल-चडुलचरणक्खो हसमुत्तम्भिअरेणुविरइअणीरन्धान्धआरं समरंगणं वट्टइ ।[1]

सेतु निर्माण के वर्णन के लिये समासवहुल भाषा का प्रयोग कितना उचित है । देखिये:—

'गुरुगुहाकुहरपइट्टट्ठमअरा तरुक्खन्धणिसण्णसंखिणिलक्खका विसमसिलाअलफ्फडिदसिप्पिसंपुटमुक्कमोत्तियकरम्बिदणिअम्वा तलप्परूढ़-सेवालजडिलवन्धा जलनिवडपक्खपालिमन्दसंचरणा चिरवीसम्भपसविअकमलगा-हमच्छकुलतिमिंगिलरुद्धकन्दरद्धन्ता उवरि णिवडन्तमहिहरपब्भारुल्लिडणभएण किंकिण कुणन्ति सिलुच्चअसंचया ।[2]

समास-वहुल भाषा के ऐसे अनेक उदाहरण वालरामायण में विखरे पड़े हैं किन्तु वे सव समयानुकूल भाव-व्यन्जन के लियें ही हैं ।

जहाँ हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने का प्रसंग होता है, वहाँ वे आविद्ध (समास रहित) शैली का आश्रय लेते हैं । कैकेयी का शोक-प्रदर्शन इस आविद्ध शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, यथा

'कैकयी (सकरुणं) भअवदि रामभदसासुए सीदाजणणि वसुन्धरे रन्धं देहि अअं पणइजणो भागादि रहुउलवधूसमागमे पडिक्खिहा ण जीविहुं परिस्सं । हा जाद भरद आलिअदुज्जसकंलकिदा कधं दे मुहं दंसइस्सं हा ताद संभाविदोऽसि दुक्खेण हा अम्व विडम्विदाऽसि हा कोसल्ले सल्लिदाऽसि हा सुमत्ते सरीरमेत्ती-कदाऽसि (इति रोदिति[3]) ।'

---

१. वालरामायण अ० ७।६४–६५ । २. वालरामायण अ० ७।४९–५० ।
३. वालरामायण ७।१६ ।

राजशेखर यथावसर अपनी कृदन्तप्रियता का भी परिचय देते चले हैं। वर्तमानकालिक कृदन्तों का रुचिर विन्यास देखिये:—

'अण्णोण्णजुज्झंतजलहत्थिसत्था कल्लोलकेलिणिलुक्कंतगिरिपक्खिणो लक्खिज्जंततिअसेंदसिंधुरबंधवा समुल्लसंतपीऊससेसा दीसंतदेवद्दुमपादवाल-वाला अवलोइज्जंतनाराअणसूअरसमुब्भरिदधरिणिवेढणिलुक्कणट्ठाणा वित्थ-रंतकोत्थुहसगोत्तमणिकरंविदपाआलजंवाला उच्छलंतलच्छीवालविलासुद्देमा सप्पपंचपंचजणजणणीसंखिणणीसणाहा ससंभमब्भमंतकच्छवडिंभगम्भा पअडिज्जंतदामोदरणिद्दाविमुद्दसअणिज्जसेसरमणिज्जामहतिमिगोत्तगिलिज्जंतति मिंगिला णिब्भरं भरंति।'[1]

लक्खिजन्त, दीसन्त अवलोइज्जन्त, वित्थरंत, पअडिज्जन्त गिलिज्जन्त वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप हैं।

भूतकालिक कृदन्तों का मनोहर प्रयोग इस वाक्यावली में देखा जा सकता है—

अज्जउत्त होमोहिज्जंतहुदवहा विवरिज्जंतकथमुत्ता पठिज्जन्त वटुचरणा वाण्णिजजन्त धम्मसास्त्रासण्णिवेसं अम्हारीसाणां संसार गण्ठिणिट्ठवण्णा।[2]

राजशेखर प्रसंगानुसार अपनी तद्धितप्रियता का परिचय भी देते हैं यथा—

'यद्वा यस्य लैङ्गोद्भवं भैरवीयं तौम्बुरवमौमापतमार्द्धनारीश्वरमैन्दुशेखर-मन्तकान्तकरं कालकूटीयं जम्भारिभुजस्तम्भनं दक्षमखोन्माथि मान्मथं त्रैपुरमन्धकासुरीयमित्यपरमप्यपरिमेयं चित्रं चरित्रजातमाचक्षते। तस्य भगवत-श्चैष्टापरीक्षायां को नाम परमेष्ठिवैकुण्ठावपि। किं पुनर्भृङ्गिरिटिः।[3]

राजशेखर की रचना शैली के विविध उदाहरण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि उनकी रचना शैली में वैदर्भी, पांचाली, एवं गौड़ी रीति का उचित विधान हुआ है। समरांगण की भयानकता एवं युद्ध की विभीषिका के प्रदर्शन के लिये उन्होंने ओजगुण युक्त कठोरवर्णों एवं दीर्घसमासों से पूर्ण गौड़ी रीति का आश्रय लिया है, किन्तु हृदय को स्पष्ट करने वाले भावों के लिये (यथा-रामवनगमन के पश्चात् कैकेयी के शोक प्रदर्शन या रावण वध के उपरान्त वैधव्यलब्धा लंका की शोकाभिव्यक्ति में) उन्होंने असमास या मध्यमसमास रचना का वरण किया है। बालरामायण की शैली प्रायः गौड़ी है। विद्धशालभंजिका एवं

१. बालरामायण ९।३४–३५। २. बालरामायण १०।५९–६०।
३. बालरामायण अ० २–३।४।

'कर्पूरमंजरी' की सरस रचना द्वारा वैदर्भी एवं पांचाली के अभाव की पूर्ति हुई है। नायिका के सौंदर्य-वर्णन में माधुर्यगुण युक्त पदरचना के द्वारा वैदर्भ मार्ग को प्रशस्त किया गया है। उन्होंने षड्ऋतुवर्णन में छोटे छोटे समासों से युक्त 'पांचाली' शैली को आदर्श माना है। उक्त शैलियों के प्रयोग से उनके अनेक वर्णन जो सम्भवतः नीरस और बोझिल हो सकते थे, अत्यन्त रुचिकर, सरस और हृदयग्राही हो गये हैं। उनकी नाट्यकृतियों में इन तीनों शैलियों का विन्यास पाया जाता है। और यह इस बात का भी व्यञ्जक है कि वे शैलियों के दास नहीं हैं अपितु प्रसंगानुकूल शैली ही उनका दासीत्व ग्रहण करती है।

निष्कर्ष : इस प्रकार राजशेखर की रचना शैली एवं उनके द्वारा व्यवहृत संस्कृत, प्राकृत एवं देशज भाषा के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने भाषा-संबंधी प्राचीन परिपाटी का विश्लेषण कर देशकाल के उपयोगी तत्वों को लेकर तत्कालीन प्रभावों के साथ उनका अपूर्व समन्वय करके उपादेय साहित्य की सृष्टि की है। इस भाषा प्रयोग के द्वारा प्राचीनता की रक्षा भी हो गई है और भविष्य के लेखकों के लिये भी पथ प्रशस्त हुआ है।

राजशेखर की नाट्यकला

नाट्यकला की दृष्टि से राजशेखर के नाटकों का समीक्षण करने पर वे कुशल कलाकार सिद्ध होते हैं। जहाँ तक वस्तु का प्रश्न है, राजशेखर का क्षेत्र सीमित है। बालरामायण एवं बालभारत की कथावस्तु रामायण एवं महाभारत के प्रथित आख्यान से संबद्ध है तथा विद्धशालभंजिका एवं कर्पूरमंजरी की लोकवृत पर आधारित। प्रथम दो के विन्यास में राजशेखर ने परम्परा के पालन के साथ ही उचित मौलिकता का भी सन्निवेश किया है जिसका कथानक के प्रसंग में विवेचन हो चुका है।

राजशेखर के पात्र बड़ी कुशलता से निर्मित हैं। वे सामान्यतः एक ही धरातल पर स्थित हैं। विद्धशालभंजिका और कर्पूरमंजरी दोनों की महादेवी विभ्रमलेखा नाम धारण करती है।

राजशेखर के संवादों का भी विशेष महत्व है। चाहे वार्तालाप हो या कोई दृश्यवर्णन, वह बहुत दूर तक चलता है। कहीं कहीं पर सीमा का अतिक्रमण भी कर जाता है। अच्छा है कि यह दोष केवल बालरामायण में ही दिखाई देता है।

भाषा पर राजशेखर की प्रभुता है । भावानुरूप भाषा उनकी विशेषता है। यद्यपि उनके नाटकों में सभी रसों का वर्णन है तथापि शृंगार का प्राधान्य है।

नाटक में अन्वितित्रय का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है । बालरामायण अयोध्या, मिथिला, समुद्रतल लंका तथा स्वर्ग तक व्याप्त है । कर्पूरमंजरी तथा विशद्ध-भंजिका में अन्वितित्रय का सम्यक् निर्वाह है ।

राजशेखर ने प्रकृति के दृश्यों का भी चित्रण किया किन्तु नाटक को सजाने के लिये नहीं । उन्होंने अवसरानुकूल उनका उपयोग किया है ।

जहाँ तक अभिनेयता का प्रश्न है उनके सभी नाटक उनके जीवनकाल में ही रंगमंच पर अभिनीत हो चुके थे । लगता है, बालरामायण देखने के बाद लोगों पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा—अपने विरोधी आलोचकों का मुखमुद्रण करने के लिये वे पूछते हैं कि "बालरामायण" में भणितिगुण विद्यमान हैं या नहीं? यदि गुण की सत्ता है तो उसे प्रेम से पढ़ो (न कि आनन्द से देखो), स्वयं राजशेखर की सम्मति में यह नाटक पढ़ने में विशेष आनन्ददायक है, अभिनय में नहीं । यह स्वीकारोक्ति कवि द्वारा अपनी सच्ची आलोचना है ।

खण्ड ३

राजशेखर का आचार्यत्व

शब्दार्थशासनविदः कति नो कवन्ते
यद्वाङ्मयं श्रुतिधनस्य चकास्ति चक्षुः ।
किन्त्वस्ति यद्वचसि वस्तु नवं सदुक्ति-
सन्दर्भिणां स धुरि तस्य गिरःपरित्नाः ॥

राजशेखर का आचार्यत्व

साहित्य-शास्त्र के इतिहास में राजशेखर का स्थान, उनकी अनेक मौलिक उद्भावनाओं तथा काव्य-शास्त्र को समृद्ध करने के कारण विशेष गौरवशाली है। उनके आचार्यत्व की आधारशिला उनका एक मात्र ग्रन्थ काव्यमीमांसा है। उन्होंने इस ग्रन्थ में अपने लिये राजशेखर शब्द का प्रयोग केवल एक बार "व्याकरोत्काव्यमीमांसा कविभ्यो राजशेखरः"[1] शब्द का ही प्रयोग प्रायः इस उक्ति द्वारा किया है। इस ग्रन्थ में लेखक के लिये यायावरीय के शब्द का ही प्रयोग प्रायः हुआ है। इसलिये इस प्रसंग में उन्हें यायावरीय नाम से संबोधित करना अधिक उपयुक्त होगा।

कवि, कविता और कवित्व शक्ति के सर्वप्रथम वैज्ञानिक निरूपण का श्रेय यायावरीय को ही प्राप्त है। उन्होंने कविरहस्य नामक अधिकरण में कवि-भेदों एवं कविचर्या का जो चित्रण किया है, उसे परवर्ती आचार्यों ने आदर्श रूप में स्वीकार किया है। यायावरीय ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगमन, यहाँ तक कि कभी कभी उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों का यथावत् उद्धरण करते हुए भी अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा काव्य के नवीन मानदण्ड निश्चित किये हैं जो आज भी आचार्यों के पथ-प्रदर्शन में सहायक सिद्ध होते हैं। वे कवि शिक्षा सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। यायावरीय के पश्चात् क्षेमेन्द्र, अरिसिंह, अमरचन्द्र तथा देवेश्वर आदि आचार्यों ने भी उनके पथ का अनुसरण कर, कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थों की रचना की।

अलंकारशास्त्र के इतिहास में यायावरीय ही सर्वप्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' के अर्थ किया है। उनकी सम्मति में साहित्य पञ्चमी विद्या है क्योंकि वह कौटिल्य आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित चारों विद्याओं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति का निष्यन्द सार है।

---

१. काव्यमीमांसा : गायकवाड ओरियण्टल सीरीज़ पृष्ठ २।

"आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चतस्रो विद्याः ।" इति कौटिल्यः । पञ्चमी साहित्यविद्या इति यायावरीयः। सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्यन्दः ।

साहित्य के क्षेत्र में काव्यपुरुष की अवतारणा एवं भुवनकोश का सजीव चित्रण यायावरीय की निजी एवं मौलिक देन है । काव्यशास्त्र के समस्त विषयों को अपने ग्रन्थ में स्थान देकर समन्वय-प्रणाली से ग्रन्थ का प्रणयन यायावरीय की नूतनता का जाज्वल्यमान प्रमाण है । ये मौलिक उद्भावनायें तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा उनका मुक्त रूप से ग्रहण असंदिग्ध रूप से यायावरीय के आचार्यत्व को प्रतिष्ठित करता है ।

आचार्यत्व : आचार्य शब्द आङ्उपसर्गपूर्वक चर् धातु से ण्यत् प्रत्यय होकर बनता है । इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—वेदाध्यापक अथवा वैदिक मन्त्रों का व्याख्याता है ।[1] महर्षि मनु की सम्मति में जो द्विज शिष्यों को सरहस्य वेद का अध्ययन करवाता है उसे आचार्य कहते हैं ।[2] किन्तु साहित्य शास्त्र में किसी विशिष्ट सम्प्रदाय अथवा सिद्धांत के प्रतिष्ठापक एवं पोषक विद्वान ही आचार्य अभिधान से सम्मानित हो सकते हैं । काव्यशास्त्र के आचार्यों की कसौटी है (१) मौलिकता, (२) सूक्ष्म दृष्टि एवं (३) स्पष्ट प्रतिपादन । काव्यमीमांसा में राजशेखर ने तीनों क्षमताओं का स्पष्ट परिचय दिया है । अतः उन्हें आचार्य कहा जाना उचित है ।

ग्रन्थ का अभिधान : उचित अभिधान का चयन, ग्रन्थकार की कुशलता का परिचायक है क्योंकि समीचीन अभिधान पुस्तक के वक्तव्य को स्पष्ट रूप से प्रगट करता है । काव्यमीमांसा शीर्ष दो बातों की व्यञ्जना करता है—काव्य एवं मीमांसा । कवि के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो, उसे काव्य कहते हैं—कवेरिदं कार्यंभावो वा । मीमांसा शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'विचारपूर्वक तत्व का निर्णय करना ।'[3] जैमिनि प्रणीत पूर्वमीमांसा में कर्मकांडों के तत्वों का विचार-पूर्वक निर्णय मिलता है । इसी प्रकार उत्तर-मीमांसा में वेदांत के तत्वों का निर्णय

---

१. शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०। आङ्-चर्-ण्यत्-वेदाध्यापकः । वैदिकमन्त्रव्याख्याकर्ता । तत्पर्यायः मन्त्रव्याख्याकृत् ।

२. शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०—"उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः । संकल्पं सरहस्यं च, तमाचार्य्यं प्रचक्षते" इति मानवः ।

३. कविकल्पद्रुम—तृतीय भाग—"मीमांसा स्त्रीमान्—'विचारे स्वार्थे सन्' विचारपूर्वकतत्वनिर्णये ततप्रतिपादकः ग्रन्थः । कर्मब्रह्मविषयभेदेन द्विविधस्सः । कर्मकाण्डविषयसंशय-निर्वारको ग्रन्थो जैमिनिप्रणीतः स च पूर्व-मीमांसत्वेन प्रसिद्धः ।"

प्राप्त होता है। काव्यमीमांसा ग्रन्थ में काव्यतत्वों का सूक्ष्म विवेचन, अन्य आचार्यों के मतों का प्रस्तुतीकरण तथा अन्त में स्वमत का निर्णयपूर्वक स्थापन होने के कारण इस ग्रन्थ का काव्यमीमांसा अभिधान अक्षरशः यथार्थ है। दूसरी वात, यायावरीय ने जिस युग में पदार्पण किया था, वह मीमांसकों का युग था। उनके चिन्तन पर युग की प्रतिच्छाया का होना स्वाभाविक है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति काव्यमीमांसा नाम में ही देखी जा सकती है।

काव्यमीमांसा का आधार : काव्यमीमांसा अठारह अधिकरणों का ग्रन्थ वतलाया जाता है, किन्तु अव तक इसका कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है और वही सहित्यजगत में काव्यमीमांसा नाम से व्यवहृत है। इस ग्रन्थ की रचना करते समय यायावरीय ने कुछ ग्रन्थों को आदर्श रूप में अपने सम्मुख रखा है।

इसके प्रथम अध्याय शास्त्र-संग्रह की रचना कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं वात्स्यायनीय कामसूत्र पर आधारित है। तीनों में एक एतद्विषयक स्थलों के तुलनात्मक अवलोकन से यह वात स्पष्ट हो जाती है।

काव्यमीमांसा	कामसूत्रम्	अर्थशास्त्रम्
(१) तत्र कविरहस्यं सहस्राक्षःसमाम्नासीत्, औक्तिकमुक्तिगर्भः, रीतिनिर्णयं सुवर्णनामः औपनिषदिकं कुचमारः इति।[१]	तत्प्रसंगाच्चारायण : साधारणमधिकरणंप्रोवाच सुवर्णनामः साम्प्रयोगिकं कुचुमार औपनिषदिकम्।[२]	..
(२) इत्थंकारंच प्रकीर्णत्वात् सा किञ्चिदुच्चिच्छिदइतीयं प्रयोजंका (र्ना) गवंती संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पग्रन्थेनाष्टादशाधिकरणी प्रणीता।[३]	(२) एवं वहुभिराचार्यैस्त च्छासुं खण्डशः प्रणीतमुत्सन्न कल्पमभूत्। संक्षिप्य सर्वमंर्थमल्पेनग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्।[४]	(२) यावन्तमर्थं शास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्येकमिदमर्थ शास्त्रं कृतम्।[५]

१. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज—अध्याय १ पृ० १।
२. कामसूत्रम्—१।१–१८।१९।
३. काव्यमीमांसा —गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज अ० १ पृ० १
४. कामसूत्रम् १।१–१८।१९।
५. अर्थशास्त्रम् १।१।

काव्यमीमांसा के दूसरे अध्याय में यायावरीय ने विद्यास्थानों के सन्दर्भ में, विद्याओं की परिगणना करते हुए वार्हस्पत्य, औशनस, मानव एवं कौटिल्य के मत दिये हैं । यहाँ कौटिलीय अर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण के समूचे अंश ही राजशेखर ने ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिये हैं । वास्तव में वे कौटिल्य के अत्यन्त ऋणी हैं । कौटिलीय अर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण एवं काव्य-मीमांसा ग्रन्थ के कविहरस्य अधिकरण के शास्त्रनिर्देश अधिकरण से उद्धृत निम्नलिखित अंश इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं:—

काव्यमीमांसा

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता डण्डनीतिश्चेति-विद्याः। त्रयी वार्तादण्डनीतियस्तिस्रो विद्याः इति मानवः । त्रयीहि वार्तादण्ड-नीत्योरूपदेष्ट्री ।[1]

'वार्ता दण्डनीतिर्व्दे विद्ये इति वार्ह-स्पत्याः ।

'दण्डनीतिरेवैका विद्या इत्यौशनसाः दण्डभयाद्धि कृत्स्नोलोकः स्वेषु स्वेषु कर्म्मस्ववतिष्ठते ।

'आन्वींक्षिकी त्रयी वार्तादण्डनीतिश्च-तस्रोविद्या'इति कौटिल्यः । आभिधेयार्थो यद्विद्यास्तद्विधानां विद्यात्वम् ।[3]

ऋषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता । आन्वीक्षिकी त्रयीवार्तानां योगक्षेमसा धनो दण्डस्तस्यनीतिर्दण्डनीतिः ।[5]

तस्यामायत्ता लोकयात्रा ।[7]

अर्थशास्त्रम्

आन्वीक्षकीत्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चे-विद्याः । त्रयी वार्ता दण्डनीति श्चेचि मानवाः । त्रयीविशेषोह्यान्वीक्षि-कीति । वार्ता दण्डनीतिश्चेति वार्ह-स्पत्याः संवरणमात्रं हि त्रयी लोक-यात्राविद इति ।[2]

दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः । तस्यां हि सर्वे विद्यारम्भाः प्रति वद्धा इति । चतस्त्रएव विद्याइति कौटिल्यः । आभिधेयार्था यद्विधाःत द्विद्यानां विद्यात्वम् ।[4]

कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या चवार्ता आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेम-साधनो दण्डः । तस्यनीतिः दण्डनीतिः ।[6]

तस्यामायता लोकयात्रा[8] सामर्ग्य-जुर्वेदास्त्रयी । अथर्ववेदेतिहासवेदौ

---

१. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।
२. अर्थशास्त्रम् १।२।१
३. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।
४. अर्थशास्त्रम् १।२।१
५. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।
६. अर्थशास्त्रम् १।२।१
७. काव्यमीमांसा गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० २ ।
८. अर्थशास्त्रम् १।३।१ ।

काव्यमीमांसा	अर्थशास्त्रम्
ऋग्युजुःसामवेदास्त्रयी। इतिहासवेद-धनुर्वेदौ गांधर्वा यर्वेदावपि चोपवेदाः। ऋचो यजूंषि (सामानि) चाथ वेदास्त इमे चत्वारो वेदाः।[१] शिक्षा, कल्पो व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो-विचितः ज्योतिषं च षङ्गानि इत्याचार्याः।[३]	च वेदाः।[२] शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्त छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि।[४]

कविरहस्य अधिकरण के तृतीय अध्याय में काव्य-पुरुष का विवेचन है। यह काव्य-पुरुष सारस्वतेय था। काव्य-पुरुष प्रसंग लिखते समय उन्होंने महा-भारत,[५] वायुपुराण[६] तथा हर्षचरित[६] में वर्णित सारस्वतेय को समक्ष रखा था। इसी अधिकरण के चतुर्थ अध्याय में त्रिविध शिष्यों का विवरण उपलब्ध है। यारावरीय ने तीन शिष्यों—वुद्धिमान, आहार्य बुद्धि तथा दुर्वुद्धि का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने "राजपुत्र-रक्षण" नामक अध्याय में राजपुत्रों की तीन श्रेणियाँ वतलाई हैं।[७] वे हैं—वुद्धिमान, आहार्यवुद्धि तथा दुर्वुद्धि। अतः यायावरीय द्वारा वर्णित शिष्यों का यह वर्गीकरण निःसंदेह अर्थशास्त्र पर आधारित है। काव्य-लक्षण के लिये यायावरीय, वामनाचार्य के सदा ऋणी हैं। वामन की काव्यपरिभाषा है—'काव्य शब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोः वर्तते[८] ।यायावरीय ने शब्दान्तर द्वारा लिखा है —'गुणवद्लंकृतं च वाक्यमेव काव्यम्।[९] स्पष्ट ही, यह काव्य-लक्षण वामन की अनुकृति है। काव्यमीमांसा के पाठप्रतिष्ठा नामक सातवें अध्याय में वाक्यभेद तथा देवयोनियों के वचनों का संक्षिप्त विन्यास मिलता है।[१०] इनकी आधार भूमि वायुपुराण[११]है। कवि

१. काव्यमीमांसा गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० २।
२. अर्थशास्त्र १।३।१।
३. काव्यमीमांसा—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृ० २।
४. अर्थशास्त्रम् १।३।१।
५. महाभारतः शान्तिपर्व अध्याय ३५९, शल्यपर्व अध्याय ५२
६. वायुपुराणः अध्याय ६५
७. हर्षचरित उच्छ्वास १
८. अर्थशास्त्र: वुद्धिमानहार्यवुद्धिर्दुर्वुद्धिरिति पुत्रविशेषाः १:१२:१६
९. काव्यलंकारसूत्र—वामनः १—१—१
१०. काव्यमीमांसा (ग.यकवाड़ ओरियण्टल सीरिज) पृ० २४
११. वायुपुराण अध्याय ५९ श्लोक ८१—९१

रहस्य अधिकरण के सत्रहवें अध्याय में भूगोल का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट चित्रण है। इसका भी प्रायः वायुपुराण से साम्य है।

काव्यमीमांसा के 'कविचर्या राजचर्याच' नामक दसवें अध्याय के अनुशीलन से स्पष्ट है कि यायावरीय अपने शब्दों में वत्स्यायन के नागरकवृत्त[1] प्रकरण को दोहरा रहे हैं।[2]

काव्यमीमांसा के एकादश द्वादश एवं त्रयोदश अध्यायों में चर्चित हूणविषयक मतों का यत्किंचित्उपजीव्य आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक[3] है। अलंकारों के विभाजन के लिये यायावरीय ने आचार्य रुद्रट के काव्यालंकार सूत्र का सहारा लिया है। दोनों के एतद्विषयक स्थलों के तुलनात्मक अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है:—

रुद्रट काव्यालंकार	यायावरीय काव्यमीमांसा
यमक	यमक
अर्थालंकार-वास्तव-औपम्य अतिशय	शब्दश्लेष
औपम्य	औपम्य
अतिशय	अतिशय
शब्दश्लेष	शब्दश्लेष
द्विविधसंकर	उभयालंकार
चित्र	चित्र

उन्होंने काव्य की आत्मा के लिये आचार्य भरत, रीतिनिरुपण के लिये आचार्य वामन, शक्तिप्रतिपादनार्थ आचार्य रुद्रट एवं वाङ्मय विभाजन के निमित्त आचार्य उद्भट तथा भामह का सहारा लिया है। काव्यमीमांसा से दिग्दर्शित होता है कि राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के चिन्तन का स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। परन्तु पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का रूप उनके सूक्ष्म चिन्तन द्वारा निखर उठा है।

जिस प्रकार राजशेखर को अपने पूर्ववर्ती छोटे बड़े समस्त शास्त्रकारों के साहित्य-विषयक विविध मतों का सूक्ष्म ज्ञान था, उसी प्रकार से पूर्ववर्ती कवियों के एवं नाटककारों की प्रायः सभी महत्वपूर्ण कृतियों से सुपरिचित थे। उन्होंने केवल उनका विविध शास्त्रीय सन्दर्भों में अध्ययन किया अपितु अपने शास्त्रीय विवेचन

१. कामसूत्र १–४–१ २. काव्यमीमांसा अ० १० पृ० ४–९
३. ध्वन्यालोक : ४–१०

में यथाप्रसंग उनका भरपूर उपयोग किया है । निम्नलिखित सूची इस तथ्य को स्पष्ट करती है:—

ग्रन्थ या ग्रन्थकार		काव्यमीमांसा (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़ की पृष्ठ संख्या)	ग्रन्थ जिनके उद्धरण उपलब्ध हैं उद्धरण सन्दर्भ
१. ऋग्वेद	..	६	३–८–१०–३
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्	..	१२	७–१२
३. रघुवंशम्	..	१२	६–५७–६–८२
४. कुमारसंभवम्	..	१२	३–६७
५. वेणीसंहारम् (भट्टनारायण)		१९	१–२३
६. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	..	२४	२–४५
७. ऐतरेय-ब्राह्मण	..	२५	७–१५–२, १५–१९
८. ऋग्वेद	..	२८	२–१ ११–७
९ निरुक्त	..	२८	३–४–३
१०. वेणीसंहारम्	..	३२	१–१२–१–१५
११. किरातार्जुनीयम्	..	३२	९–३९
१२. शतपथ ब्राह्मण	..	३५	५–१–२
१३. महानारायणोपनिषद्	..	३५	१–२–२
१४. सूर्यशतकम्	..	३५	८९
१५. विक्रमोर्वशीयम्	..	३५	४–१७
१६. रामायणम् (किष्किन्धाकाण्ड)		३६	३४–१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)		३६	१२–३६
१५. विक्रमोर्वशीयम्	..	३५	४–१७
१६. रामायणम् (किष्किन्धाकाण्ड)		३६	३४–१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)		३६	१२–३६
१८. वायुपुराणम्	..	३६	अध्याय ६७
१९. शिशुपालवधम्	..	३६	१–४६
२०. भगवद्गीता	..	३७	२–१७
२१. महिम्नःस्तोत्रम्	..	३७	५
२२. कामसूत्रम्	..	२९	२–१–३, ९–१३
२३. कुमारसम्भवम्	..	४०	३–७०

२४. रघुवंशम्	..	४१	६–६०
२५. शिशुपालवधम्	..	४१	३–८
२६. शिशुपालवधम्	..	४२	१–१
२७. कुमारसंभवम्	..	४४	६–३६
२८. अमरुशतक (अमरुक)	..	४७	२९, ४९, १९
२९. मालतीमाधवम्	..	४८	१
३०. कुमारसंभवम्	..	४८	४–४१, ३–७२, ६–१९
३१. किरातार्जुनीयम्	..	५८	३–१०
३२. शिशुपालवधम्	..	५४	२–७३
३३. वृन्दावन यमककाव्यम् (मानांक)		५७	१–१
३४. नारदस्मृतिः	..	५९	२–३०
३५. शिशुपालवधम्	..	६०	११–६४
३६. गौडवहो	..	६२	८८–९२
३७. कामसूत्रम्	..	६७	१०१
३८. विज्जका (कवयित्री)	..	६७	..
३९. किरातार्जुनीयम्	..	७०	९–२३
४०. जानकीहरणम्	..	७२	८–८५
४१. किरातार्जुनीयम्	..	७३	९–३२
४२. मालतीमाधवम्	..	७६	३
४३. कादम्बरी	..	७६	२
४४. रघुवंशम्	..	७६	६–६४
४५. कुमारसंभवम्	..	८१	१
४६. शिशुपालवधम्	..	८४	२–४
४७. कुमारसंभवम्	..	८४	१–४४
४८. किरातार्जुनीयम्	..	८५	९–२२
४९. रघुवंशम्	..	८५	२–२५–९–९३
५०. मेघदूतम्	..	८६	१–४७
५१. शिशुपालवधम्	..	८६	२–५३
५२. कादम्बरी	..	८८	२–
५३. सूर्यशतकम्	..	९५	१३
५४. मेघदूतम्	..	९६	२–१२
५५. कुमारसंभवम्	..	९६	१–१

५६. हनुमन्नाटकम्	..	९७	३–५०
५७. तैत्तिरीय संहिता	..	९९	१–४–१४–१
५८. सूर्यशतकम्	..	९९	५५

इसके अतिरिक्त सैकड़ों श्लोक जिन्हें उन्होंने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है, (यायावरीय) की स्वप्रतिभा के द्योतक हैं ।

काव्यमीमांसा ग्रन्थ की रचना की पद्धति का इतना परिचय देने के पश्चात् अब ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय का समीक्षण प्रस्तुत किया जा रहा हैं ।

काव्यमीमांसा के वर्ण्य-विषय

कविरहस्य अधिकरण के प्रथम अध्याय में लेखक द्वारा काव्यमीमांसा की पूर्व-नियोजित रूपरेखा दी गई है । लेखक की योजना के अनुसार काव्यमीमांसा अठारह अधिकरणों में विभिक्त की गई है तथा ये अधिकरण अध्यायों में । अधि-करणों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—

कविरहस्य, औक्तिक, रीतिनिर्णय, आनुप्रासिक, यमक, शब्दश्लोक-वास्तव, औपम्य, अतिशय, अर्थश्लेप, उभयालंकारिक, वैनोदिक, रुपकनिरुप, णीय, रसाधिकारिक, दोपाधिकरण, गुणौपादानिक एवं औपनिपदिक ।[1] आजकल इन अठारह अधिकरणों में केवल कवविरहस्य अधिकरण ही उपलब्ध हैं । दैवयोग से प्रथम अधिकरण के अठारह अध्यायों का नाम निर्देश भी प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय में मिलता है । ये नाम हैं—शास्त्रसंग्रह, शास्त्र निर्देश, काव्यपुरुषोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासन, वाक्यविधयः, कविविशेप, कविचर्या, राजचर्या, काकुप्रकार, शब्दार्थहरणोपाय, कविसाक्ष्य, देशकालविभाग एवं भवुनकोश[2] । सुविधा के लिये हम इन समस्त अध्यायों के लिये वर्ण्य-विपय को निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

१. काव्य सिद्धान्त ।

२. कविशिक्षा-सम्प्रदाय ।

३. काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय और राजशेखर ।

४. साहित्यशास्त्र को काव्यमीमांसा कीदेन ।

१. काव्यमीमांसा अध्याय १—पृ० १
२. काव्यमीमांसा—अध्याय १ पृ० १-२ ।

काव्य-सिद्धान्त

इस प्रथम खंड के अन्तर्गत, काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य की आत्मा, काव्यभेद, काव्यार्थ के स्रोत, काव्यार्थ की परिधि एवं काव्य में सत्य शिव-सुन्दर की अभिव्यक्ति का समावेश है ।

काव्य का लक्षण : साहित्यशास्त्र सभी मान्य आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से काव्य के स्वरूप का निर्णय किया है राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्यलक्षणों का ऐतिहासिक रीति से अनुशीलन करने के पश्चात् काव्य का निम्नलिखित लक्षण प्रस्तुत किया है:–

गुणवदलंकृतञ्च वाक्यमेव काव्यम् ।[1]

अलंकारों और गुणों से युक्त वाक्य को काव्य कहते हैं । उनकी दृष्टि से वाक्य ही काव्य है, परन्तु यह वाक्य साधारण न होकर गुण और अलंकार से युक्त होना चाहिये । गुण तथा अलंकार—इन दोनों में राजशेखर का आग्रह गुण पर ही अधिक है । उन्होंने काव्य को गुणमय कहा है तथा अलंकारों का स्थान गुणों की अपेक्षा गौण माना है । उन्होंने अलंकारों को केवल अलंकरण रूप में स्वीकार किया है । उनके शब्दों में काव्य-पुरुष की चरितार्थता, उसके गुणमय तथा अलंकारों से विभूषित होने में है ।

समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि । ... अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलंकुर्वन्ति ।[2]

आचार्य राजशेखर का गुणों एवं अलंकारों के प्रति आग्रह उनके सिद्धांतों के अनुकूल है । एक विज्ञ अलंकारज्ञ के साथ-साथ वे महान् कवि भी थे । काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों के प्रति वे समान रूप से जागरूक थे । काव्य में गुणों की सत्ता होने का अर्थ है—उत्कृष्ट रसपरिपाक। यही रस भावपक्ष की आत्मा है । कलापक्ष के अन्तर्गत उन्होंने अलंकारसौष्ठव का महत्व माना है । अतः काव्य के दोनों पक्षों को पुष्ट करने के लिए काव्य में गुण तथा अलंकार दोनों की अनिवार्यता का आग्रह उचित ही है ।

पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य-लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से आचार्य राजशेखर के काव्य-लक्षण की ऐतिहासिक समीक्षा सरलता से की जा सकती है । आचार्य भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्,[3] कहकर काव्य का लक्षण

१. काव्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २४ । २. काव्यमीमांसा अध्याय ३ पृ० ६ ।
३. काव्यालंकार—भामह १।१६ ।

स्थिर किया है । उनके मत में शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं किन्तु ये शब्द और अर्थ दोषहीन होना चाहिये । आचार्य रुद्रट ने सामान्य रूप से 'ननु शब्दार्थों काव्यम्',[1] कहकर भामह की पदावली को ही दोहरा दिया है । भेद इतना ही है कि चारुतापूर्ण शब्द और अर्थ के उपादान पर ही उन्होंने बल दिया है। ये दोनों आचार्य काव्य में शब्द और अर्थ को समान महत्व देने के पक्षपाती हैं। कुछ आचार्य ऐसे हैं जो काव्य में केवल शब्द को ही अधिक महत्व देते हैं । इनमें आचार्य दण्डी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । दण्डी के अनुसार काव्य का लक्षण है—

"शरीरं तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली ।"[2]

अर्थात् काव्य का शरीर ऐसी पदावली से बनता है जो कवि के अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो । अर्थ से व्यवछिन्न पदावली काव्य है । उपर्युक्त आचार्यों में भामह तथा रुद्रट ने काव्य को शब्दार्थगत अर्थात् शब्दार्थोभयनिष्ठ माना, जबकि आचार्य दण्डी ने शब्दमात्र को ही काव्य स्वीकार किया है ।

काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों के नितान्त भिन्न प्रतीत होता है । उन लक्षणों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह भेद स्पष्ट हो जायेगा:—

भामह—शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्[3]

रुद्रट—ननु शब्दार्थौ काव्यम् ।[4]

दण्डी—शरीरं तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली ।[5]

राजशेखर—गुणवदलंकृतञ्च वाक्यमेव काव्यम् ।[6]

काव्यमीमांसाकार ने काव्य लक्षण में आचार्य भामह, रुद्रट के समान शब्द और अर्थ की अथवा दण्डी के समान पदावली का उल्लेख नहीं किया है। वे वाक्य को काव्य मानने के पक्ष में हैं । उन्होंने लक्षण में दो प्रमुख काव्यतत्वों-गुण और अलंकार का उल्लेख किया है । वामन का काव्यलक्षण इसी प्रकार का है—

'काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते ।'[7]

काव्य शब्द, गुण और अलंकार से संस्कृत शब्द और अर्थ के लिये प्रयुक्त होता है । अतः स्पष्ट देखा जा सकता है कि काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण मुख्यतः वामन से प्रभावित है ।

---

१. काव्यालंकार—रुद्रट—३:१ ।
२. काव्यादर्श—दण्डी—१–९।१० ।
३. काव्यालंकार—भामह—१।१६ ।
४. काव्यालंकार—रुद्रट—३।१ ।
५. काव्यादर्श—दण्डी—१।९।१० ।
६. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २४ ।
७. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१:१:१ ।

काव्य लक्षण का मूल्यांकन : वस्तुत: लक्षण अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति दोनों दोषों से मुक्त एवं संतुलित होना चाहिये । इसमें वैकल्पिक गुणों का समावेश होना उचित नहीं । काव्यमीमांसाकार का काव्य लक्षण अतिव्याप्ति से दूषित है। रस को काव्य की आत्मा मानने के कारण प्राय: आचार्यगण रस की अभिव्यक्ति के लिये गुणों की उपस्थिति आवश्यक मानते हैं । वे काव्य में चारुत्व के लिये अलंकारों को भी अनिवार्य मानते हैं । फिर भी यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो मानना होगा कि गुण काव्य के अन्तरङ्ग तथा अलंकार उसके वहिरङ्ग सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक हैं । वे काव्य की शोभा के लिये आवश्यक तो हैं किन्तु उन्हें काव्य रूप के आधायक धर्म मानना उचित नहीं है । ये दोनों तत्व वाञ्छनीय होने पर भी अनिवार्य नहीं कहे जा सकते । शौर्यविहीन मनुष्य मानवता से से विरहित तो नहीं कहा जा सकता और न अभूषणों से रहित सुन्दरी नारीत्व से ही विहीन मानी जा सकती है । अत: काव्यमीमांसाकार ने अपने काव्य-लक्षण में गुण और अलंकार दोनों का समावेश करके लक्षण को अतिव्याप्ति से दूषित कर दिया है फिर भी यह काव्य परिभाषा, उपेक्षणीय है, ऐसी बात नहीं है । राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा माना है ।

'रसवत एव निवन्धो युक्तो न नीरसस्य ।'[1]

अत: गुणों और अलंकारों की सत्ता वे रसाविष्करण के सहायक रूप में ही स्वीकृत करते हैं। भले ही उनकी काव्य परिभाषा में यह आशयपूर्ण रूप से स्पष्ट न हो पाया हो ।

परवर्ती साहित्यकारों ने राजशेखर के इस मन्तव्य को भलीभाँति समझा है। और उन्हीं तत्वों पर उन्होंने अपने काव्यलक्षणों का निर्माण किया । मम्मट के विख्यात काव्यलक्षण का एक अंश 'सगुणावनलंकृति'[2] तथा भोज की परिभाषा 'निर्दोषं गुणवत् काव्यम् अलंकारैलंकृतम्' ।[3] इसका प्रमाण है । हेमचन्द्र के काव्यलक्षण का 'सगुणौ सालंकारौ'[4] वाग्भट का 'सगुणौ प्राय: सालंकारौ,'[5] तथा विद्यानाथ का 'गुणालंकार-सहितौ'[6] से प्रगट होता है कि ये सभी आचार्य राजशेखर के काव्यलक्षण से प्रभावित थे ।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४५ ।
२. काव्यप्रकाश:—मम्मट—१–४–१ ।
३. सरस्वतीकण्ठाभरण:—भोज
४. काव्यानुशासनविवेक:—हेमचन्द्र—पृ० १६ ।
५. काव्यानुशासनविवेक:—वाग्भट—पृ० १५ ।
६. प्रतापरुद्रयशोभूषण:—विद्यानाथ—पृ० ४२ ।

काव्यहेतु : काव्यनिर्माण का सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधन काव्य-हेतु अथवा काव्यकारण कहे जाते हैं। प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य-हेतु पर विचार व्यक्त किया है। केवल वामन ने काव्यहेतु के स्थान पर काव्याङ्ग शब्द का व्यवहार किया है। काव्यहेतुओं पर सर्वाधिक विस्तारपूर्वक विचार काव्यमीमांसा में ही मिलता है। राजशेखर के मत से केवल शक्ति ही काव्य का हेतु है।

तावुभावपि शक्तिमुद्भासयतः। सा केवलं काव्ये हेतुः इति यायावरीयः। विप्रसरति च सा प्रतिभा-व्युत्पत्तिभ्याम्। शक्तिर्तृके हि प्रतिभा व्युत्पत्तिकर्मणी शक्तस्य प्रतिभाति शक्तश्च व्युत्पद्यते।'[1]

अर्थात् शक्ति का विस्तार प्रतिभा और व्युत्पत्ति के द्वारा होता है तथा प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विकास में शक्ति कारणीभूत होती है। आचार्य रुद्रट भी शक्ति को काव्य का प्रधान हेतु मानते हैं। किन्तु उन्होंने प्रतिभा को ही शक्ति के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने कहा है कि एकचित्त होने पर अर्थों का अनेक रूपों में विस्फुरण होता है तथा कमनीय पद स्वयं कवि के सामने प्रतिभासित होते हैं। इसका एकमात्र कारण है शक्ति—

मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः।[2]

इस विषय में काव्यमीमांसा का मत रुद्रट से समानता रखता है। क्योंकि राजशेखर स्वयं कहते हैं—"शक्तिशब्दश्चायमुपचरितः प्रतिभाने वर्तते"[3]

शक्ति को प्रतिभा से उपचरित कर दिया जाता है। इस संदर्भ में उन्होंने श्यामदेव तथा मंगल के मतों का उल्लेख किया है। आचार्य श्यामदेव ने काव्य कर्म में सबसे अधिक सहायक वस्तु समाधि मानी है, जिसे वे चित की एकाग्रता कहते हैं—

'काव्यकर्मणि कवेःसमाधिःपरं व्याप्रियते' इति श्यामदेवः। मनस एकाग्रता समाधिः।[4]

समाहित होने वाला चित्त ही अर्थों का उन्मीलन करता है। आचार्य मंगल अभ्यास को काव्य-कर्म में सबसे अधिक उपयोगी स्वीकार करते हैं—

---

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११।
२. काव्यालंकार—रुद्रट—१–१५।
३. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११।
४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११।

'अभ्यास इति मंगलः ।'[१]

राजशेखर दोनों की विचारधारा में सामञ्जस्य स्थापित कर समाधि तथा अभ्यास को क्रमशः शक्ति के आन्तरिक और वाह्य प्रेरक का मानते हैं ।

प्रतिभा : राजशेखर के शब्दों में जो बुद्धि सार्थक शब्द-समूह को, अलंकार तन्त्र को, कहने के ढंग को तथा ऐसी ही अन्य वातों को हृदय में प्रतिभासित करती है उसे प्रतिभा कहते ।[२] उन्होंने प्रतिभा के दो भेद बतलाये हैं—कारयित्री और भावयित्री । काव्य-कर्म में कवि का उपकार करने वाली प्रतिभा कारयित्री कही जाती है । भावक का उपकार करने वाली प्रतिभा भावयित्री कहलाती है । यह प्रतिभा कवि के श्रम तथा अभिप्राय का वोध कराती है। कारयित्री प्रतिभा के राजशेखर ने तीन भेद वतलाये हैं—सहजा, आहार्या और औपदेशिकी ।[३] पूर्व जन्म में संस्कार की अपेक्षा रखने वाली और इस जन्म के थोड़े ही संस्कार से उद्बुद्ध हो जाने वाली प्रतिभा सहजा कहलाती है । आहार्या को उद्बुद्ध करने के लिये अधिक अभ्यास की अपेक्षा होती है । औपदेशिकी प्रतिभा मन्त्रों तन्त्रों आदि के उपदेश से उद्भूत होती है । तीनों प्रकार की प्रतिभा से क्रमशः सारस्वत, आभ्यासिक और औपदेशिक कवियों का निर्माण होता है।[४] भावयित्री प्रतिभा भावक का उपकार करती है ।

राजशेखर के पूर्व भी आलंकारिकों ने प्रतिभा की महत्ता को स्वीकार किया था । संस्कृत के आद्य आलंकारिक भामह ने काव्यहेतुओं में प्रथम स्थान प्रतिभा को दिया है—

'काव्यं तु जायते कस्यचित्प्रतिभावतः'[५]

फिर भी व्युत्पत्ति तथा अभ्यास की उन्होंने अवहेलना नहीं की ।

शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनम् ।
विलोक्यान्यनिवन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः ॥[६]

---

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ । २. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १२—'सा च द्विधा कारयित्री भावयित्री च कवेरुपकुर्वाणा कारयित्री । साऽपि त्रिविधा सहजाऽऽहार्यौपदेशिकीच ।
४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १२—'जन्मान्तरसंस्कारापेक्षिणी सहजा । जन्मसंस्कारयोनिराहार्या । मन्त्रतन्त्रोपदेशप्रभवा औपदेशिकीति इमे त्रयोऽपि कवयः सारस्वतः आभ्यासिक औपदेशिकश्च ।'
५. काव्यालंकार—भामह १–५ ।
६. काव्यालंकार—भामह १–१० ।

उनकी दृष्टि से शब्द और अर्थ का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके, शब्दार्थ के ज्ञाताओं का सत्संग एवं परिचर्या करके और अन्य लेखकों के निबन्धों को पढ़कर काव्य-क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये। भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी ने काव्योत्पत्ति के साधन रूप में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को आवश्यक बतलाया है। इनके मत में प्रतिभा पूर्व जन्म के संस्कारों पर आश्रित रहती है। प्रतिभा से वंचित कवि भी यदि यत्नपूर्वक शास्त्र की उपासना करे तो उस पर सरस्वती अवश्य अनुकम्पा प्रकट करेगी।[1] वे प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को काव्य-सम्पदा मानने के पक्षपाती हैं।[2] आचार्य दण्डी के पश्चात् वामन ने काव्यहेतु का विवेचन किया है। उन्होंने काव्यहेतु के लिये काव्यांग[3] शब्द का प्रयोग किया है। काव्यांगों के अन्तर्गत लोक, विद्या और प्रकीर्ण—इन तीनों का समावेश है। लोक का तात्पर्य लोकवृत्त[4] से है। विद्या से समस्त शास्त्र-ज्ञान[5] का बोध होता है तथा प्रकीर्ण के अन्तर्गत अन्य कवियों की कृतियों का परिचय, काव्य रचना का उद्यम, काव्य कला के मर्मज्ञों की उपासना, रचना में अधिक से अधिक उचित शब्दों के विधान का अभ्यास तथा कवित्व बीज प्रतिभा एवं चित्त की एकाग्रता की गणना की गई है।[6]

इस प्रकार आचार्य वामन प्रतिभा को कवित्व का बीज मानने पर भी व्युत्पत्ति और अभ्यास को समान महत्व देते हैं। वामन के परवर्ती आचार्य रुद्रट ने 'काव्यहेतु' के अन्तर्गत–प्रतिभा-व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का महत्व स्वीकार किया है,[7] तथापि 'शक्ति' को उन्होंने काव्य का प्रधान कारण माना है। उनके विचार से शक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

'मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमेनकधाभिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः।[8]

चित्तके एकाग्र होने पर अर्थ अनेक प्रकार से विस्फुरित होने लगते हैं तथा कमनीय पद स्वयं प्रतिभासित होते जाते हैं। इस कार्य को संपादित करने वाली वस्तु 'शक्ति' कहलाती है।

---

१. काव्यादर्श—दण्डी १–१०४। २. काव्यादर्श—दण्डी —१–१०३।
३. काव्यालंकारसूत्र—वामन–१-३-१। ४. काव्यालंकारसूत्र–वामन–१-३-३।
५. काव्यालंकारसूत्र–वामन–१-३-१-१। ६. काव्यालंकार सूत्र–वामन–१-३-११.
७. काव्यालंकार—रुद्रट—१–४। ८. काव्यालंकार—रुद्रट—१–१५।

व्युत्पत्ति : राजशेखर ने प्राचीन ग्राचार्यों के मत का उल्लेख करते हुए व्युत्पत्ति का ग्रर्थ 'वहुज्ञता' दिया है ।[१] परन्तु उनका ग्रपना मत इससे भिन्न है। उनके ग्रनुसार—

"उचितानुचितविवेकव्युत्पत्तिः इति यायावरीयः ।"[२]

उचित ग्रौर ग्रनुचित के विवेक को व्युत्पत्ति कहते हैं । इस प्रसंग में उन्होंने पूर्ववर्ती ग्राचार्य मंगल के मत का उल्लेख किया है जो प्रतिभा ग्रौर व्युत्पत्ति के तारतम्य में व्युत्पत्ति को ही श्रेष्ठ मानते हैं। उनके विचार से व्युत्पत्ति कवि के ग्रशक्ति-जन्य समस्त दोषों को दूर कर देती है ।[३]

किन्तु समन्वयवादी ग्राचार्य राजशेखर प्रतिभा ग्रौर व्युत्पत्ति दोनों को समान रूप से उपादेय मानते हैं ।

ऊपर राजशेखर तथा पूर्ववर्ती ग्राचार्यों द्वारा वर्णित 'काव्यहेतु' का जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ने 'शक्ति' को 'काव्यहेतु स्वीकार करते हुए भी प्रतिभा, व्युत्पत्ति ग्रौर ग्रभ्यास को मान्यता दी है। प्रतिभा को वे ग्रन्य दो (व्युत्पत्ति ग्रौर ग्रभ्यास) से श्रेष्ठत्व प्रदान करते हैं । वे कहते हैं कि मेधाविरुद्र ग्रौर कुमारदास ग्रादि कवि जन्म से ही ग्रन्धे थे, किन्तु उनके काव्य में पदार्थों का जो सजीव चित्रण मिलता है, उसका एकमेव कारण प्रतिभा है—

प्रतिभावतः पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव यतो मेधाविरुद्र-कुमारदासादयो जात्यन्धाः कवयःश्रूयन्ते ।[४]

किन्तु ग्रागे चलकर उन्होंने प्रतिभा ग्रौर व्यत्पत्ति के समन्वय पर ग्रधिक बल दिया है ।

प्रतिभाव्युत्पत्ति मिथः समवेते श्रेयस्यौ इति यायावरीयः ।

जैसे लावण्य के विना सुन्दर रूप फीका है ग्रौर रूप-सम्पत्ति के बिना लावण्य ग्राकर्पणहीन है उसी प्रकार प्रतिभा ग्रौर व्युत्पत्ति एक दूसरे से हीन होने पर निरर्थक होती हैं । निरन्तर प्रयास करते रहने को उन्होंने ग्रभ्यास कहा है । ग्रन्त में वे काव्य की सफलता के लिये प्रतिभा-व्युत्पत्ति ग्रौर ग्रभ्यास की समान महत्ता स्वीकार करते हैं । इनके मत में यह दुर्लभ समन्वय है—

---

१. काव्यमीमांसा ग्र० ५ पृ० १६ ।
२. काव्यमीमांसा ग्र० ५ पृ० १६ ।
३. काव्यमीमांसा ग्र० ५ पृ० १६ 'व्युत्पत्तिःश्रेयसी इति मङ्गलः ।
४. काव्यमीमांसा ग्र० ४ पृ० १२ ।
५. काव्यमीमांसा ग्र० ५ पृ० १६ ।

बुद्धिमत्वं च काव्याङ्ग-विद्यास्वभ्यासकर्म च ।
कवेश्चोपनिषच्छक्तिस्त्रयमेकत्र दुर्लभम् ।[1]

काव्य प्रयोजनः—राजशेखर के अनुसार आनन्द, कीर्ति, धन प्राप्ति, शिष्य-हित, हितोपदश, राजोपकार एवं लोकरुचि काव्य के प्रयोजन हैं । सुविधानुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन में से कतिपय प्रयोजन कवि के स्वयं के लिये हैं । उन्हें कविनिष्ठ कहते हैं । कुछ प्रयोजन पाठक या श्रोता से संवन्धित होते हैं । अतः उन्हें पाठकनिष्ठ कहना उचित होगा । कविनिष्ठ प्रयोजन के अन्तर्गत (१) आनन्द, (२) कीर्ति एवं (३) धन प्राप्ति तथा पाठकनिष्ठ प्रयोजन में (१) शिष्यहित, (२) हितोपदेश, (३) राजोपकार एवं (५) लोकरुचि की गणना की जा सकती है ।

कविनिष्ठ प्रयोजनः—राजशेखर का कथन है कि काव्यपुरुष की कथा को जानने वाला कवि इहलोक और परलोक दोनों में आनन्दित रहता है ।[2] उसी प्रकार जो राजा सभापति बनकर काव्यों की परीक्षा करता है, वह सर्वदा सुखी रहता है ।[3]

इस प्रकार आनन्द को उन्होंने स्पष्ट रूप से काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है । पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह[4] और वामन[5] ने प्रीति को काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत माना है, जो राजशेखर-वर्णित आनन्द का ही पर्याय है ।

काव्य का दूसरा प्रयोजन कीर्ति है । कीर्ति को दसों दिशाओं में फैलाने वाले कवि, भावक एवं आश्रयदाता नरेश होते हैं । कीर्ति के विषय में कविराज कहते हैं कि कुछ कवि एसे होते हैं जिनकी रचना उनके घर की चहारदीवारी के भीतर ही विचरण करती है, कुछ कवियों की रचनायें, उनके मित्रों के भवनों तक पहुंच जाती हैं और कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना सभी के मुख पर नर्तन करती हुई विश्व भ्रमण की इच्छा पूर्ण करती हैं ।[6] राजशेखर की सम्मति में जिस कवि की प्रतिभा का अधिक प्रसार होता है उसकी कीर्ति समस्त संसार को धवलित कर देती है[7] । कवि कीर्ति का दूसरा विस्तारक भावक होता है ।

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३ । २. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० १० ।
३. काव्यमीमांसा अ० १० पृ० ५५ ।
४. काव्यालंकार—भामह—करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्य निवन्धनम् १।२
५. काव्यमीमांसा सूत्र—वामन—काव्यंसद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् १।१।५ ।
६. काव्यमीमांसा अध्याय ४ पृ० १४ ।
७. काव्यमीमांसा अध्याय ९ पृ० ४९ ।

राजशेखर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि कवि के उस काव्य से क्या लाभ जिसे आलोचकगण चारों ओर न फैलायें ? कवित्व वही है, जिसका सभी। देशों में निर्बाध रूप से प्रसार हो और यह बात सहृदय पाठकों पर निर्भर होती है। राजाओं का आश्रय मिलने से भी कविगण प्रसिद्ध होते हैं। "राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिम्"।[1] अतः कवि-कीर्ति के प्रसार में राजगण भी सहायक होते हैं। राजशेखर के पूर्व भी प्रायः सभी आलंकारिकों ने कीर्ति की गणना काव्य प्रयोजनों में की है। महर्षि भरत द्वारा प्रयुक्त काव्य का 'यशस्यम्'[2] विशेषण भी कीर्ति का बोधक है। भामह की कारिका में भी कवि के लिये कीर्ति की प्राप्ति बतलाई है। वामन[3] ने काव्य प्रयोजनों को प्रीति और कीर्ति में ही विभाजित किया है। इस प्रकार कीर्ति के संबंध में प्रायः आचार्य एकमत हैं किन्तु राजाओं को कवि-कीर्ति का प्रचारक मानना राजशेखर की अपनी सूझ है।

राजशेखर के विचा ों से पता चलता है कि काव्य की रचना धनोपार्जन हेतु भी की जाती थी। प्रबन्ध किसी के पास धरोहर के रूप में रख देने से, बेच देने से, दान कर देने से, देश त्याग कर देने से, अल्पायु होने से, अपूर्ण रह जाने से, तथा अग्नि एवं जल आदि से विनष्ट हो जाते हैं।[4] इन वाक्यों से इसी बात का संकेत मिलता है कि धनप्राप्ति की गणना भी काव्य प्रयोजनों में की जाती रही है। पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह ने काव्य प्रयोजनों में अर्थ का भी समावेश किया है।

इसी प्रकार आनन्द, कीर्ति और धनप्राप्ति इन तीनों प्रयोजनों का कवि से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण इनकी गणना कविनिष्ठ प्रयोजनों में की गई है।

पाठकनिष्ठ प्रयोजन : पाठक की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण प्रयोजन, जिनका राजशेखर ने उल्लेख किया है, तीन हैं—हितोपदेश, व्यवहारज्ञान एवं राजोपकार। राजशेखर की 'ससासव्यासविन्यासं सैष शिष्यहिताय नः' इस पंक्ति का अभिप्राय यह है कि कविगण पाठकों के हित के लिये भी काव्य की रचना करते हैं। भरत-वर्णित 'हित'[5] यही है। राजशेखर का कथन है कि

---

१. काव्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २७।
२. नाट्यशास्त्र अ० ११४ (धर्म्यं यशस्ययुष्यम्)।
३. काव्यालंकारसूत्र वामन (काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्) १।१।५
४. काव्यमीमांसा अ० १ पृ० ५३ यदित्थं कथयन्ति—'निक्षेपो विक्रयो दानं देशत्यागोऽल्पजीविता-त्रुटिकोवह्निरम्मश्च प्रबन्धोच्छेदहेतवः।'
५. नाट्यशास्त्र भरत—१–११४।

'प्राचीनकाल में विद्वान् सहस्र शाखाओं वाले वेदों एवं उनके अङ्गों का अध्ययन करते थे, शास्त्रों के तत्वों को समझते थे, देशान्तर और द्वीपान्तर का भ्रमण करते थे ।[१] इसका तात्पर्य यही है कि कवि के लिये व्यवहार-ज्ञान भी आवश्यक था । अतः काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार-ज्ञान भी है । इसकी अनुभूति पाठकगण करते हैं । कवियों से राजाओं का भी (आश्रयदाता) उपकार होता है, उनसे उनकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है ।

ख्याता नराधिपतयः कविसङ्गमेन
राज्ञोऽपि नास्ति कविना सदृशः सहायः॥[२]

इस प्रकार पूर्ववर्ती आचार्यों ने जिन काव्य प्रयोजनों का प्रतिपादन किया था उनको और भी अधिक परिभाजित तथा सुन्दर रूप में हम राजशेखर में देखते हैं ।

काव्य की आत्मा : भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यात्मतत्व का सर्वप्रथम विवेचन करने का श्रेय आचार्य वामन को है । वामन के पूर्व आचार्य दण्डी एवं भामह ने अपना विवेचन शब्दार्थ तक ही सीमित रखा है । आत्म-तत्व तक वे न पहुँच सके । यह कार्य आचार्य वामन ने पूर्ण किया । उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा[३] के रूप में प्रतिष्ठित किया । वामन के पश्चात् ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा[४] के रूप में प्रतिष्ठापित किया । राजशेखर ने काव्यशास्त्र के क्षेत्र में शरीर और आत्मा के सहारे काव्यपुरुष के रूपक की कल्पना ही नहीं की अपितु उसके अंगप्रत्यंगों पर भी प्रकाश डाला । काव्यपुरुष के रूपक में उन्होंने शब्द और अर्थ को शरीर, संस्कृतादि भाषाओं को मुखादि अङ्ग तथा अलंकारों को आभूषणों के रूप में स्वीकार किया तथा रस को उसकी आत्मा के स्थान पर अधिष्ठित किया है । उनके पूर्व सभी आलंकारिक रस को महत्व देते आये थे किन्तु उसे सर्वप्रथम आत्मा के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय राजशेखर को ही है ।

परवर्ती आचार्यों ने राजशेखर की इस मान्यता को निर्विवाद रूप में ग्रहण किया । [illegible]र ने काव्य के जीवनतत्व के रूप में रस को मान्यता दी । तत्पश्चात् [illegible] व्यलक्षण में ही रस का समावेश कर दिया ।

काव्यभेद : राजशेखर के मत में वाङ्मय के दो मार्ग हैं—शास्त्र तथा काव्य—'इहहि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च ।'[५] उन्होंने द्वितीय अध्याय में

१. काव्यमीमांसा अ० १४ पृ० ७८ ।
२. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७ ।
३. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१:१ ।
४. ध्वन्यालोकःआनन्दवर्धन १:१ ।
५. काव्यमीमांसा अ० २ पृ० २ ।

शास्त्रों का वर्गीकरण करने के उपरान्त काव्य का विवेचन किया है । प्राचीन आचार्यों ने चारों वेदों, उनके षडंगों और चारों शास्त्रों की गणना चतुर्दश विद्याओं के आधार रूप में की है । ये चौदह विद्यायें भूःर्भुवः और स्वः इन तीनों लोकों में व्याप्त हैं । मनुष्य सहस्र वर्षों से अधिक जीवित रहकर भी इन चौदह विद्याओं का अन्त नहीं पा सकता । राजशेखर ने इन चौदह विद्याओं का आधार एक मात्र 'काव्य' को माना है ।

'सकलविद्यास्थानैकायतनं पचदशं काव्यम् विद्यास्थानम् ।[1]

उन्होंने काव्य को पन्द्रहवीं विद्या कहकर गौरवान्वित किया है । उन्होंने कहा है कि शास्त्र काव्य का अनुसरण करते हैं । इसकी पहली विशेषता यह है कि इस में गद्य और पद्य का मंजुल सामंजस्य मिलता है । उनके मत में काव्य के पूर्व की रचनायें केवल गद्यसृष्टि का निर्माण करती रहीं, पद्यसृष्टि का नहीं । छन्दोवद्ध वाणी का आविष्कार भी प्रथमतः काव्य में ही पाया जाता है । इसकी तीसरी उपयोगिता इसके हितोपदेश से समृद्ध होने में है और सब से बड़ी बात यह कि उप-विद्याओं और कलाओं का उपजीव्य काव्य ही है ।

राजशेखर ने छन्द को आधार मानकर काव्य का विश्लेषण किया है । उनके अनसार काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य तथा मिश्र । छन्दोमयी रचना पद्य, छन्दोरहित गद्य और दोनों का मिश्रण—मिश्र रचना है ।[2]

काव्य के उक्त भेदों की स्थापना राजशेखर से पूर्व ही हो चुकी थी । काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भामह ने रचना शैली की दृष्टि से काव्य को गद्य तथा पद्य में विभक्त किया था ।[3] आचार्य दण्डी ने काव्य के गद्य, पद्य तथा मिश्र ये तीन भेद बताये हैं ।[4] आचार्य वामन ने काव्य को स्थूल रूप से गद्य और पद्य में विभिक्त किया है ।[5] राजशेखर दण्डी के काव्य-भेदों को मान्यता देते प्रतीत होते हैं ।

भाषा की दृष्टि से राजशेखर कवि-राज हैं । कविराज विभिन्न भाषाओं में रचना करने में समर्थ होता है—

---

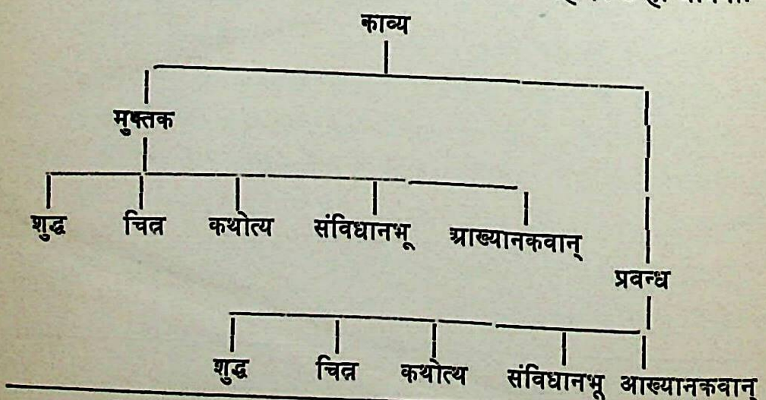
१. काव्यमीमांसा अ० २ पृ० ४ ।
२. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६ ।
३. काव्यालंकार—भामह—'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा ।' १:१६ ।
४. काव्यादर्श—दण्डी—'पद्यं गद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्' १।११
५. काव्यालंकारसूत्र—वामन—'काव्यं गद्यं पद्यं च' १।३।२१ ।

'यस्तु तत्र तत्र भाषाविषये तेषु प्रवन्धेषु
तस्मिंस्तस्मिंश्च रसे स्वतन्त्रःस कविराजः ।[१]

अतः राजशेखर ने काव्य का विभाजन भाषा को आधार मानकर भी किया है । पूर्ववर्ती आचार्यों में रुद्रट ने भाषा के आधार पर काव्य के संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भूतभाषा, मागध, पिशाच, शूरसेन और अपभ्रंश ये भेद वताये हैं ।

भामह ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में विभिक्त किया हैं ।[२] आचार्य दण्डी ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मिश्र रूप में विभाजित किया है ।[३] काव्य की भाषा पर आधारित ये भेद युग-विशेष में भाषा की प्रगति के परिचायक हैं । राजशेखर का भाषाविषयक दृष्टिकोण अन्य आचार्यों की तुलना में व्यापक दिखाई देता है । उनके अनुसार भाषा की दृष्टि से काव्य के ६ भेद हैं—१. संस्कृत, २. प्राकृत, ३. अपभ्रंश, ४. भूतभाषा, ५. पैंशाची ६. मिश्र ।[४] इन भेदों में राजशेखर का युग प्रतिबिम्वित हुआ है । तत्कालीन समाज संस्कृत काव्य से अधिक प्रभावित था । तदान्तर क्रमशः प्राकृत, अपभ्रंश एवं भूतभाषा में रचित काव्य थे । जो कवि अनेक भाषाओं में काव्य रचने की क्षमता रखता था उसे राजदरवार में विशिष्ट स्थान प्राप्त होता था ।

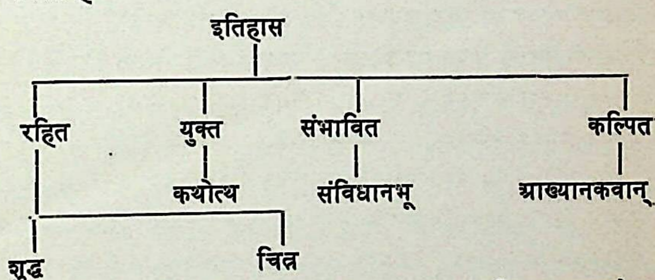
कथानक की दृष्टि से राजशखर के काव्य-वर्गीकरण का तीसरा आधार है कथानक । कथानक की दृष्टि से उन्होंने काव्य के दो भेद किये हैं, मुक्तक और प्रवन्ध । वास्तव में ये भेद काव्यगत अर्थ के हैं । अर्थ के आधार पर ही हम काव्य को मुक्त और प्रवन्ध इन दो भागों में बाँट सकते हैं। मुक्तक और प्रवंध को भी उपभेदों में विभाजित किया गया है । निम्न सारणी से यह स्पष्ट हो जायगा:—



१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १९ ।
२. काव्यालंकार—भामह—१।१।१६ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६ ।
४. काव्यादर्श—दण्डी—१।३२ ।

मुक्त और प्रबन्ध में प्रत्येक के निम्न पाँच भेद हैं—(१) शुद्ध (२) चित्र (३) कथोत्य, (४) संविधानभूः, (५) आख्यानकवान् ।

मुक्तकाव्य से राजशेखर का तात्पर्य स्फुट कविता या स्वतन्त्र कविता से है। प्रबन्ध का अर्थ है—काव्य या महाकाव्य । ऐतिहासिक कथा कथोत्थ कहलाती है । जिसमें घटना संभावित हो वह संविधानभू और जिस में इतिहास की कल्पना की जाय उसे आख्यानकवान् कहते हैं । इस बात को निम्न तालिका से भी स्पष्ट किया जा सकता है :—



राजशेखर का मुक्तक काव्य निश्चित ही वामन का अनिबद्ध काव्य है। दूसरा भेद 'प्रबन्ध' वामन के 'निबद्ध' का वाचक है । अन्य काव्यशास्त्रों में इसके लिये प्रबन्ध शब्द ही प्रचलित है ।

राजशेखर ने मुक्तक के पाँचों भेदों के उदाहरण अमरुशतक से लिये हैं तथा कुछ उदाहरण स्वरचित भी हैं । प्रबन्ध के पाँच भेद भवभूतिकृत मालतीमाधव तथा कालिदास के कुमारसंभव से लिये गये हैं ।

राजशेखर कृत काव्य के भेद अधिक स्पष्ट नहीं हैं । एक काव्यरूप यत्किंचित भेद से दूसरे भेद में समाविष्ट हो सकता है । इसलिये उनका यह वर्गीकरण साहित्यजगत् में ग्राह्य न हो सका ।

काव्यार्थ के स्रोत : वस्तुतः कवि स्वयं स्रष्टा है। ब्राह्मी सृष्टि से उसकी सृष्टि कहीं अधिक उत्कृष्ट है । नियति ने ब्रह्मा के हाथ बाँध रखे हैं किन्तु कवि मुक्त रूप से सर्जन निर्बन्ध है । ब्रह्मा की सृष्टि सुख-दुःख के चक्र में घूमती रहती है; किन्तु कवि जगत में केवल आनन्द ही आनन्द है । ब्रह्मा की सृष्टि में प्रत्येक जीव प्रारब्धकर्म से बँधा रहता है, किन्तु कवि-जगत का प्रत्येक प्राणी कवि-प्रतिभा से ही गुँथा है । ब्रह्मा अपनी सृष्टि के प्रत्येक सदस्य को मधुर के साथ अम्ल, लवण, कटु कषाय और तिक्त रसों का आस्वादन कराता है किन्तु कवि जगत का नागरिक, नव-रसों का आस्वादन करता है । प्रश्न यह है कि इस सृष्टि की

आधारशिला कौनसी है । प्रायः सभी आचार्यों ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है । आचार्य राजशेखर ने कहा है:—

"श्रुतिः, स्मृतिः, इतिहासः, पुराणं, प्रमाणविद्या, समयविद्या, राजसिद्धांतमयी, लोको, विरचना, प्रकीर्णकं च काव्यार्थानां द्वादश योनय इति आचार्याः । उचित-संयोगेन, योक्तृ-संयोगेन उत्पाद्यसंयोगेन संयोंग विकारेण च सह षोडश इति यायावरीयः ।"[1]

अर्थात् वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या (मीमांसा और छै प्रकार का तर्क शास्त्र) राजसिद्धान्तत्रयी (अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र) लोक (सांसारिक या व्यवहारिक वृत्त) विचरना (अन्यान्य कवियों की रचना) प्रकीर्णक (चौंसठ कलायें, आवश्यक आयुर्वेद) ये कवि-सर्जन के आधार हैं ।

वामन ने काव्ययोनि के स्थान पर काव्याङ्ग शब्द का प्रयोग किया है जिसे राजशेखर ने काव्य माता माना है । वामन ने तीन काव्याङ्ग माने हैं—लोक, विद्या और प्रकीर्ण ।[2] लोक का अर्थ है लोक-व्यवहार ।[3] विद्या के अन्तर्गत कोश, छन्दःशास्त्र, कला (चौंसठ प्रकार की कलायें एवं चौदह उप-कलायें), कामशास्त्र, दण्डनीति, (अर्थशास्त्र एवं राजनीति) आती हैं ।[4] प्रकीर्ण फुटकर का द्योतक है । इसके भीतर लक्ष्यज्ञत्व, अभियोग, वृद्धसेवा, अवेक्षण, प्रतिभान और अवधान इन छः का संग्रह है ।[5] अन्य कवियों के काव्यों का परिचय लक्ष्यज्ञत्व कहलाता है । काव्य रचना के लिय उद्योग को अभियोग कहते हैं । वृद्धसेवा से काव्योपदेशक गुरुजनों की सेवा अभिप्रेत है । पदों के आधान और उद्धरण में निपुणता अवेक्षण के अन्तर्गत है ।[6]

राजशेखर ने कवित्व की आठ माताओं में भक्ति का भी उल्लेख किया है । आचार्य वामन की वृद्ध-सेवा में भक्ति भी आ जाती है । उन्होंने प्रतिभानम् के

---

१. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ३५ ।
२. वामन—काव्यालंकारसूत्र—लोको विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि १।३।१
३. वही लोकवृत्ति र्लोकः १।३।२ ।
४. वही श्रुतिस्मृतिरभिधानकोशच्छन्दोविचिति कला कामशास्त्र दण्डनीतिपूर्वाः विद्याः १।३।३ ।
५. " लक्ष्यज्ञत्वभियोगो वृद्धसेवाऽवेक्षणं प्रतिभानमवधानंच प्रकीर्णम् १।३।१३ ।
६. वही तत्र काव्यपारभ्नो लक्ष्यज्ञत्वम् १।३।१२—काव्यवन्धोद्यमोऽभियोगः १।३।१३ काव्योपदेशगुरूशूश्रुषणं वृद्धसेवा १।३।१४, पदाधानोद्धरणमवेक्षणम् १।३।१५ ।

लिये प्रतिभा, अभियोग के लिये अभ्यास और अवेक्षण के लिये दृढ़ता शब्द का प्रयोग किया है ।

राजशेखर आचार्य दण्डी के काव्याङ्गों से भी प्रभावित थे । आचार्य दण्डी ने निसर्गजात प्रतिभा, निर्मल लोक-शास्त्र ज्ञान और अमन्द अभियोग इन तीनों को काव्य-सम्पदा कहा है ।[1] राजशेखर ने भी तीनों को ग्रहण किया है ।

पौर्वापर्य से पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों को अपनाते हुए राजशेखर ने स्वयं भी चार काव्यस्रोतों की कल्पना की है । इनमें प्रथम है—उचित संयोग जिनमें काव्य के वर्णनीय पदार्थों को उपमानोपमेयभाव आदि का संयोग या संबंध समुचित प्रतीत हो । उदाहरणार्थ—कालिदास के रघुवंश के छठे सर्ग को लें । इसमें कवि ने इन्दुमतीस्वयंवर के प्रसंग में दक्षिण दिशा के पाण्ड्य राजा का वर्णन किया है—

पाण्डयोऽयमंसार्पितलम्बहारः कलृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥[2]

अर्थात् दोनों कन्धों से छाती की ओर लटकते हुए शुभ्र मोतियों के लम्बे हार को धारण करने वाला और कुंकम मिश्रित चन्दन का शरीर में लेप किये हुए यह पाण्ड्य देश का राजा सूर्य की किरणों से रंजित शिखरवाले और बहते हुए शुभ्र झरनों से युक्त हिमालय की भाँति शोभित हो रहा है ।

यहाँ जिन आधारों पर पाण्ड्य राजा का सादृश्य हिमालय के साथ बताया गया है वह उचित संयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

योक्तृसंयोग : जहाँ उत्तरोत्तर संबंधकारी संयोग प्रतीत हो वहाँ योक्तृ-संयोग होता है । किसी राजा की विजय यात्रा के प्रसंग में कवि कहता है—

कुर्वद्भिः सुरदन्तिनो मधुलिहामस्वादु दानं...
तन्वानैर्नमुचिद्रुहो भगवतश्चक्षुः सरागं तथा ।
मज्जन् स्वर्गतरंगिणीजलभरे पङ्कीकृते पांसुभि
र्यद्यात्राव्यसनं निनिन्द विमनाः स्वर्लोकनारीजनः ॥[3]

अर्थात् स्वर्ग की देव ललनायें दुःखित हृदय से उस राजा की विजय यात्रा को निन्दित करती हैं, क्योंकि उसकी विजय यात्रा में असंख्य सैनिकों, रथों, हाथियों

१. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१ ।
२. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१ ।

घोड़ों आदि के द्वारा उड़ाई गई धूलि, स्वर्ग में पहुँचकर दिग्गजों की कनपटियों पर जाकर जम जाती है जिससे उनकी कनपटियों से वहता हुआ मदजल स्वर्गीय भ्रमरों के लिये कड़वा हो जाता है। दूसरी ओर वह धूलि देवराज इन्द्र की हजार आंखों में पड़कर उन्हें व्याकुल कर देती है और अन्त में वह एकत्रित धूलि स्वर्ग गंगा के जल में गिरकर उसे भी पङ्किल वना देती है।

यहाँ राजा की विजय यात्रा से धूलि का उड़ना, उसे सुर-सरिता के जल का पङ्किल होना, उससे स्नानार्थिनी सुराङ्गनाओं की विमनस्कता और उससे विजय यात्रा की निन्दा उत्तरोत्तर संवन्धकारी संयोग प्रतीत होता है।

उत्पाद्य संयोग : जहाँ उपमानोपमेयभाव आदि संवन्ध संभाव्य हो। यथा शिशुपालवध में—

उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावकाशगंगापयसः पतेताम्।
तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः ॥[1]

अर्थात् यदि आकाश से स्वर्ग गङ्गा की दो धारायें पृथक पृथक गिरें तो श्रीकृष्ण के नीलवक्षःस्थल पर दोनों ओर लटकती हुई मुक्ता-हार की लड़ियों की उपमा दी जा सकती है।

यहाँ आकाश और वक्षःस्थल का तथा मुक्तालता और गङ्गा-प्रवाह का उपमानोंपमेय भाव संवंध सम्भावित है। अतः उत्पाद्य संयोग है।

संयोग विकार : संयोग या संवन्ध से विकार उत्पन्न होना संयोग विकार कहलाता है। अर्थात्—

गुणानुरागमिश्रेण यशसा तव सर्पता।
दिग्वधूनां मुखे जातमकस्मादर्धकुङ्कमम् ॥[2]

अर्थात् मिश्रित [illegible] चारों ओर फैलते हुए तुम्हारे यश से दिशारूपी वधुओं के [illegible] पर अकस्मात् आधा कुंकुम का टीका लग गया।

श्वेत मस्तक पर लाल गुण एवं श्वेत यश के संयोग से अर्ध कुंकुम रूप विकार उत्पन्न हो गया है। इसीप्रकार चन्द्रोदय के संयोग से समुद्र आदि में उन्माद विकार को काव्य में वर्णित करना संयोग विकार है।

काव्यार्थ की परिधि : काव्य का क्षेत्र कितना व्यापक हो सकता है, इसकी चर्चा सव से पहले आचार्य द्रौहिणि ने की है। उनके मत से काव्य के पात्र दिव्य, दिव्यमानुष तथा केवल मानुष हो सकते हैं।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१। २. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१।

राजशेखर ने अर्थ-व्याप्ति सात प्रकार की बतलाई है। द्रौहिणि-कथित तीन प्रकारों के अतिरिक्त पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय भेद से इसके निम्न सात प्रकार हो सकते हैं। वे हैं—(१) दिव्य, (२) दिव्य मानुष, (३) मानुष, (४) पातालीय, (५) मर्त्य-पातालीय, (६) दिव्य-पातालीय, (७) दिव्य-मर्त्य-पातालीय। दिव्य मानुष के चार अर्थ हैं—(१) दिव्य पुरुष का जन्म लेकर मर्त्य वन जाने पर, (२) मर्त्य पुरुष का प्राण त्याग कर दिव्य वन जाने पर (३) मर्त्य-पुरुष की दिव्य संबंधी कथानक कल्पना करने पर और (४) मर्त्य होकर भी अपने प्रभाव से दिव्य विभूति प्रकट करने पर (अन्य छै भेदों का अर्थ नाम से ही स्पष्ट हो जाता है।)

राजशेखर ने इन पात्रों के विवरण द्वारा नाट्यशास्त्र के विषय को अपने ग्रन्थ में उचित स्थान प्रदान किया है। उनकी मौलिकता का यह प्रवल प्रमाण है।

काव्य में सत्य शिव और सुन्दर की अभिव्यक्तिः काव्य पर दोषारोपण किया गया है कि (१) काव्य असत्य अर्थ का अभिधान करता है, (२) अशोभन वस्तु का उपदेश करता है, (३) असुन्दर, असभ्य अर्थों का भी वर्णन करता है। अतः काव्य का उपदेश मानव समाज के लिये अहितकर है—

'असत्यार्थाभिधायित्वात् नोपदेष्टव्यं काव्यम्।'
'असदुपदेशकत्वात् तर्हि नोपदष्टव्यं काव्यम्।'
'असभ्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेष्टव्यं काव्यम्।'[१]

कविवर राजशेखर इन आरोपों को कैसे सह सकते थे? तीनों का परिहार कर उन्होंने काव्य में सत्य शिव सुन्दर इन तीनों तत्वों को और समाहित कर दिया। प्रथम आरोप के परिहार के लिये वे कहते हैं कि काव्य में कोई भी वस्तु असत्य नहीं होती। जो सत्याभास प्रतीत होता है वह अर्थवाद है जो युगों युगों से वेदों की सूक्तियों में भी दिखाई देता है। इसे हम असत्य नहीं कह सकते। इस कथन की पुष्टि के लिये उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण तथा पातंजल महाभाष्य के पश्पशाह्निक से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अतः जिस अर्थवाद का प्रयोग शास्त्र एवं श्रुति करते आये हैं, उन्हें कविजन अपने काव्य में प्रयुक्त करें तो वह कथमपि असत्य नहीं हो सकता। काव्य सदा सत्य की अभिव्यक्ति करता है।[२]

१. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २४, २६, २७।
२. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७।

(२) काव्य में अनैतिक वस्तु का उपदेश दिया जाता है, इस कथन की पुष्टि में उद्धृत श्लोक (जिस में एक वृद्ध कुलटा अपनी पुत्री के कुलटानियम-विमुख आदर्शों की अवहेलना कर रही है) का आशय स्पष्ट करते हुए राजशेखर कहते हैं कि काव्य में यह अशोभन बातें प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु यह उपदेश निषेध्य रूप में है, विधेय रूप में नहीं है ।

'अस्त्ययमुपदेशः किन्तु निषेध्यत्वेन न विधेयत्वेन "[१]

समाज के चरित्र रक्षण के लिये ऐसे उपदेशों की नितांत आवश्यकता होती है । उसका उत्तरदायित्व कवि काव्य द्वारा पूर्ण करते हैं । तीसरा आक्षेप यह है कि काव्य में असभ्य अर्थ का अभिधान उपलब्ध होता है । यायावरीय इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसे अर्थों का निबन्धन, वेद या शास्त्र में भी प्रसंगानुसार दिखाई देता है । अतः यदि कवि प्रसंगानुसार अर्थ को अभिव्यक्त करें तो वह नितान्त क्षम्य है, क्योंकि काव्य का प्रयोजन सत्य शिव सुन्दर की अभिव्यक्ति है, असत्य, अशिव एवं असुन्दर का आलाप नहीं ।[२]

इन तीन आक्षेपों के परिहार द्वारा यायावरीय ने काव्य में सत्यता शिवता एवं सुन्दरता का समर्थन किया है ।

कवि शिक्षा सम्प्रदाय

'कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय' साहित्यशास्त्र के मान्य सम्प्रदायों (रस, अलंकार, रीति एवं ध्वनि) से नितान्त भिन्न हैं । इस सम्प्रदाय का ध्येय अन्य सम्प्रदायों की भाँति काव्य के आत्मतत्व की गवषेणा एवं स्थापना नहीं है । इसका उद्देश्य है— कवि के व्यक्तित्व एवं कर्तव्य के विकास तथा संवर्धन के लिये उचित मार्गदर्शन करना । कवि-रहस्य अधिकरण का दो-तिहाई भाग कवि-शिक्षा से संबंधित है । इस अधिकरण के तृतीय से पंचम तथा दशम से अष्टादश अध्यायों तक का वर्ण्य-विषय कवि-शिक्षा है ।

राजशेखर ने 'कविशिक्षा' के अन्तर्गत (१) काव्यपुरुष, (२) कवि, (३) भावक,, (४) काव्यपाक, (५) काव्यानुहरण एवं (६) कविसमय का विवेचन किया है ।

काव्यपुरुष : नवम शताब्दी से पूर्व साहित्य-शास्त्र काव्यपुरुष से अपरिचित था । सर्वप्रथम आचार्य दण्डी ने 'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली'

१. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २६ ।
२. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७ ।

कहकर काव्य-शरीर का निर्देश किया, किन्तु उसमें सजीवता लाने के लिए आत्मतत्व की प्रतिष्ठा का प्रयास आचार्य वामन ने किया। उन्होंने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। आचार्य आनन्दवर्धन रीति नामक आत्मतत्व से पूर्णतया असहमत थे। अतः उन्होंने रीति के स्थान पर ध्वनि को काव्य की आत्मा सिद्ध किया। इस प्रकार राजशेखर के पूर्ववर्ती आचार्यों ने काव्य के शरीर एवं आत्मा का जो रूपक बाँधा था, उसकी पृष्ठभूमि में उन्होंने एक 'काव्यपुरुष' की केवल कल्पना की थी, किन्तु यह कल्पना कल्पना ही बनी रही। राजशेखर ने इस कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान किया। काव्यपुरुष के अवतरण की यही पृष्ठभूमि है। काव्यपुरुष का जन्म, भारत भ्रमण एवं विवाह की रोचक कथा राजशेखर की प्रतिभा की देन है। कवि रहस्य अधिकरण का तीसरा अध्याय 'काव्यपुरुषोत्पत्ति' है[1] जिसमें वे कहते हैं—प्राचीनकाल में पुत्र प्राप्ति की इच्छा से सरस्वती ने हिमालय पर जाकर तपस्या प्रारम्भ की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वरदान दिया। फलस्वरूप सरस्वती को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। यही काव्यपुरुष था। सरस्वती का पुत्र होने के कारण यह 'सारस्वतेय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पुत्र ने उठकर माता के चरणों का स्पर्श करते हुए छन्दोबद्ध भाषा में कहा—

"यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते—
सोऽस्मि काव्यपुमान् मातःपादौ वन्देय तावकौ।"[2]

इस प्रकार की छन्दोमयी वाणी केवल वेदों में दृष्टिगोचर होती थी। लौकिक संस्कृत में प्रथमतः उसका आविष्करण सुनकर सरस्वती अत्यन्त प्रसन्न हुई। उन्होंने पद्य की प्रथमतः सृष्टि करने वाले उस बालक की निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा की—

'शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्। समः प्रसन्नो मधुर उदारश्चासि। उक्तिचणं च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिकं च वाक्केलिः अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलंकुर्वन्ति।[3]

अर्थात् शब्द और अर्थ तुम्हारा शरीर है। संस्कृत भाषा मुख, प्राकृत भुजा, अपभ्रंश जघन, पैशाची चरण तथा मिश्र भाषा तुम्हारा वक्षःस्थल है। सम,

१. सारस्वतेय पुरुष का उल्लेख अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है। वायुपुराण के ५७ वें अध्याय, शांतिपर्व के ३४९ वें अध्याय में, शल्यपर्व के ५१ वें अध्याय और हर्षचरित के प्रथम उच्छवास में।
२. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६।
३. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६।

प्रसन्न, मधुर उदार आदि गुणों से तुम युक्त हो। तुम्हारी वाणी उत्कृष्ट है। रस तुम्हारी आत्मा है। छन्द तुम्हारे रोम हैं। प्रश्नोत्तर, प्रवहिलका आदि तुम्हारी वाक्-क्रीड़ा है। उपमा अनुप्रास आदि तुम्हें अलंकृत करते हैं। भावी अर्थ को बतलाने वाली श्रुति भी तुम्हारी वन्दना करती हैं।

चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोअस्य त्रिधा बद्धो
वृषभो रौरवीति महादेवो मर्त्यानाविवेश ॥[1]

अर्थात् चार सींगों, तीन पैरों, दो सिरों एवं सात हाथों वाला, तीनों प्रकार से बंधा हुआ और शब्द करता हुआ यह महादेव मर्त्य लोक में अवतीर्ण हुआ है। पश्चात् एक सघन वृक्ष की छाया में स्थित शिला पर उसे लिटाकर एवं नवजात शिशु-सदृश आचरण करने का उपदेश देकर सरस्वती आकाश गंगा में स्नान के लिये चली गई। मध्याह्न में ताप से बिलखते हुए उस बालक को उशनस् मुनि ने देखा तो वह दयार्द्र होकर उसे अपने आश्रम में ले आये। आश्रम के उस प्रशांत वातावरण में बालक ने उशनस् मुनि को छन्दोबद्ध वाणी से प्रेरित किया जिससे उन्होंने सरस्वती ने स्तुतिपरक उद्गार अभिव्यक्त किये—

"या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम्।
हृदि नः सन्निधतां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥[2]

अर्थात् जिसे कविगण, ग्वालों के समान दिन-रात दुहते रहते हैं, फिर भी जो बिना दुही-ही प्रतीत होती है, वह सूक्तियों की कामधेनु सरस्वती हमारे हृदय में निवास करे। इस छन्दोमय उद्गार के कारण उशनस् मुनि आदिकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। स्नान के उपरान्त सरस्वती बालक को ढूँढने निकली। उस समय वाल्मीकि ने उन्हें उशनस् के आश्रम का पता बतलाया। इस प्रकार वाल्मीकि सरस्वती के कृपा-पात्र बन गये। उन्होंने छन्दोबद्ध रचना के लिये सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त किया। फलस्वरूप एक दिन निषाद के द्वारा सहचरी के मारे जाने पर करुण विलाप करते हुए युवा क्रौंच को देखकर उनके शोक-संतप्त हृदय से यह वैखरी वाक् निकल पड़ी:—

"मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीःसमाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥[3]

---

१. ऋग्वेद ३–८–१०–३ (भिन्न-भिन्न भाष्यकर्त्ताओं द्वारा विविध प्रकार से व्याख्यात इस मन्त्र का उपयोग राजशेखर ने अपनी आवश्यकता के अनुकूल कर लिया है।)
२–३. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ७।

यह वाणी कवि के सारस्वत होने का आधार बन गयी। इस श्लोक का अध्ययन करने वाला कवि भी सारस्वत नाम से सम्बोधित होने लगा। इसी श्लोक को पढ़-कर द्वैपायन मुनि ने शतसाहस्त्री महाभारत संहिता का निर्माण किया।

एक बार ब्रह्म-लोक में ऋषियों और देवताओं में किसी वैदिक विषय पर विवाद छिड़ गया। ब्रह्मा के आदेश से सरस्वती को निर्णयार्थ ब्रह्मलोक जाना पड़ा। सारस्वतेय भी साथ जाने के लिए तैयार हो गया। ब्रह्मा की अनुमति के बिना उसे ले जाना अनुचित समझकर सरस्वती उसे छोड़कर चली गयी। बालक भी पीछे-पीछे जाने लगा। उसे जाते हुए देखकर उसका मित्र कार्तिकेय रोने लगा। अतः उस बालक काव्यपुरुष को मनाने के लिए सरस्वती तथा पार्वती ने साहित्य-विद्या-वधू का सर्जन किया। उन्होंने काव्यविद्या-स्नातकों एवं साहित्य-विद्या-वधू को उनका कर्त्तव्य भी बतलाया।

साहित्य-विद्या वधू एवं काव्य-विद्या स्नातक काव्य-पुरुष की खोज में पूर्व की ओर चल पड़े। अंग वंग, सुह्म एवं पुण्ड्र ब्रह्म आदि जनपदों में पहुँच साहित्य-वधू ने जैसी वेशभूषा धारण की, उसी का अनुकरण तद्देशीय स्त्रियों ने किया। पुरुषों ने काव्य-पुरुष की वेश प्रणाली का अनुकरण किया। जिस वचन-विन्यास का साहित्य-वधू ने प्रयोग किया उसी वचन-विन्यास क्रम को गौडीया रीति का नाम मिला। वधू ने काव्य-पुरुष के मनोरंजन के लिए जिस विलास का प्रदर्शन किया उस विलास विन्यासक्रम को भारती वृत्ति कहा गया तथा उसकी वेशभूषा औड्रमागधी प्रवृत्ति के नाम से विख्यात हुई। इसके अनन्तर काव्यपुरुष पांचाल की ओर चला जहाँ पांचाल शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, बाह्लीक आदि जनपद हैं। इन प्रदेशों की स्त्रियों को भी साहित्य-वधू की वेशभूषा का अनुकरण पूर्वानुसार रुचिकर प्रतीत हुआ। काव्य-जगत में यह वेशभूषा संवलित प्रवृत्ति पांचालमध्यमा कहलाई। वधू की वचनशैली पांचाली रीति तथा विलास-विधि आरभटी वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् काव्यपुरुष और साहित्य वधू अवन्ति की ओर गये, जहाँ अवन्ति, वैदिश, सुराष्ट्र, मालव, अर्बुद्ध एवं भृगुकच्छ आदि देश हैं। वहाँ साहित्य-वधू ने विशिष्ट नेपथ्यविधान किया जिस में पांचाल देश और दक्षिण देशों के वेशों का मिश्रण था। उसका वचन-विन्यास एवं विलासक्रम भी यही प्रकट करता था कि पांचाल और दक्षिण का उन पर पर्याप्त प्रभाव है। यहाँ प्रदर्शित नेपथ्यविधि आवन्ति एवं विलासविधि सात्वती तथा कौशिकी नाम से प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् काव्यपुरुष दक्षिण दिशा की ओर गया, जहाँ मलय, मेकल, कुंतल, केरल, पाल, मन्जर, महाराष्ट्र, गंग और कलिंग आदि जनपद हैं। इन स्थानों पर साहित्य-वधू द्वारा अंगीकृत वेश प्रणाली दक्षिणात्या कहलाई। उन्होंने नृत्य, गीत एवं वाद्यादि की जिस शैली का प्रदर्शन किया वही कैशिकी वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। उन्होंने भाषण में जिस वचन-शैली का उपयोग किया वह वैदर्भी रीति के नाम से प्रथित हुई। साहित्य-विद्या-वधू के वेश-वचन एवं विलास के प्रति क्रमशः आकृष्ट होते हुए काव्यपुरुष ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी। विदर्भ देश में काव्यपुरुष ने साहित्य-वधू के साथ गान्धर्व रीति से विवाह किया।

काव्यपुरुष की सृष्टि का उद्देश्य : राजशेखर का उद्देश्य काव्यपुरुष की रोचक कथा प्रस्तुत करना ही नहीं है। साहित्य-शास्त्र में इस पुरुष की अवतारणा का लक्ष्य है—काव्य का समग्र भव्य और आकर्षक रूप उपस्थित करना। रीति का वृत्ति और प्रवृत्ति के साथ घनिष्ट सम्बन्ध व्यक्त करने तथा गौड़ीया, पांचाली और वैदर्भी की क्रमशः श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए साहित्य-विद्या-वधू द्वारा काव्यपुरुष की खोज में भारत-भ्रमण का आयोजन किया है। रीति वृत्ति एवं प्रवृत्ति का अस्तित्व समाज में ही है, उसके बाहर नहीं, इस तथ्य की ओर भी राजशेखर ने सहृदय पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है। काव्यपुरुष की आत्मा को रस संज्ञा देकर उन्होंने स्वयं को रसवादी प्रमाणित किया है। उसी प्रकार काव्यपुरुष के अंग-प्रत्यंग का वर्णन करके उन्होंने समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। गद्य का अस्तित्व प्राचीनकाल से है किन्तु लौकिक संस्कृत में पद्य (छन्द) का प्रयोग काव्यपुरुष के अवतरण से ही आरम्भ हुआ, यह मत भी पूर्णतः शास्त्रीय है। सामान्यतया वाल्मीकि आदि कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु उशनस को आदि-कवि कहकर उन्होंने गीता के 'कवीनामुशनाकविः' की पुष्टि की है।

राजशेखर ने काव्यपुरुष तथा साहित्य-विद्या का विदर्भ के वत्सगुल्म (वर्तमान वाशिम) नगर में मंगल विवाह रचाकर यह संकेत किया है कि वे विदर्भ की मनोहरता एवं सरसता के विशेष पक्षपाती थे।

कवि : सारस्वत-पथ पर चलने वाले पथिकों में प्रतिभा और व्युत्पत्ति से सम्पन्न, रस के उद्बोध में समर्थ, वर्णन में निपुण व्यक्ति ही 'कवि' संज्ञा का अधिकारी हो सकता है।' कविशब्दश्च कवृ वर्णे इत्यस्य धातोः काव्यकर्मणो रूपम्'[1]

१. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ७।

और उस कवि का कर्म या कृति ही काव्य है । राजशेखर की काव्यमीमांसा में काव्यजगत के संचालक कवियों के भेदोपभेद विस्तार से वर्णित किये हैं । इनके आधार भिन्न-भिन्न हैं । जिन आधारों के माध्यम से कवियों का विभाजन किया गया है वे निम्न हैं:—

(१) प्रतिभा, (२) मौलिकता, (३) विषय, (४) हरण और (५) मनोवृत्ति ।

प्रतिभाजन्य कवि : राजशेखर ने प्रतिभा के दो भेद वर्णित किये हैं—कारयित्री और भावयित्री । इनमें कारयित्री प्रतिभा—सहजा, आहार्या और औपदेशिकी तीन प्रकार की होती है । सहजा प्रतिभा से सम्पन्न कवि सारस्वत, आहार्या प्रतिभा से युक्त आभ्यासिक तथा औपदेशिक प्रतिभा से सम्पन्न कवि 'औपदेशिक' कहलाता है । कवि की विशेषता यह है कि उसे जन्मान्तरीय संस्कारों से ही सारस्वत अनुभवों का बोध हो जाता है ।[1] अतः उनकी रचना में प्रतिभा का स्वतन्त्र विलास दिखाई देता है । आभ्यासिक कवि की प्रतिभा इसी जन्म के अभ्यास से उद्भासित होती है ।[2] अतः इस कवि के लिए अभ्यास अत्यन्त उपादेय होता है । औपदेशिक कवि की स्थिति इन दोनों से भिन्न है । मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान से उसमें कवित्व शक्ति का उद्भव होता है ।[3] बुद्धिमान्, आहार्यबुद्धि एवं दुर्बुद्धि—इन तीनों प्रकार के शिष्यों में दुर्बुद्धि शिष्य ही औपदेशिक कवित्व का पात्र होता है ।

आचार्यों का मत है कि औपदेशिक कवियों को छोड़कर शेष (सारस्वत और आभ्यासिक) कवियों की कवित्व शक्ति के उद्भावन के लिए मन्त्र-तन्त्र आदि के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जो द्राक्षाफल स्वयं ही मधुर है वह फाणित संस्कार की अपेक्षा नहीं करता ।[4] किन्तु राजशेखर आचार्यों की इस विचारधारा से पूर्णतया असहमत हैं । वे कहते हैं कि एक ही कार्य का सम्पादन करने वाले दो साधनों का यदि एक साथ प्रयोग कर लिया जाय तो क्रिया का फल द्विगुणित हो जाता है । अतः सारस्वत और आभ्यासिक

---

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—जन्मान्तरसंस्कारप्रवृत्त सरस्वतीको बुद्धिमान्सारस्वतः ।
२. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—इह जन्माभ्यासोद्भासितभारतीक आहार्यबुद्धिराभ्यासिकः ।
३. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—उपदेशितदर्शितवाग्विभवो दुर्बुद्धिरौपदेशिकः ।
४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—तस्मान्नैतरा तन्त्रशेषमनुतिष्ठताम् नहि प्रकृतिमधुरा द्राक्षा फाणित-संस्कारमपेक्षते इत्याचार्याः ।

कवियों के लिए मन्त्र-तन्त्र का अनुष्ठान उपादेय ही है। आचार्य श्यामदेव का कथन है कि इन तीनों प्रकार के कवियों में क्रमशः औपदेशिक से आभ्यासिक और आभ्यासिक से सारस्वत कवि उत्तरोत्तर कुशल होते हैं—'तेषामुत्तरोत्तरीयो गरीयान्' इति श्यामदेवः।[1] सारस्वत कवि की वाग्धारा नैसर्गिकी प्रतिभा के कारण निर्बाधमति से प्रवाहित होती है। आभ्यासिक कवि की रचना अभ्यास-जन्य होने के कारण परिमित क्षेत्र तक ही व्याप्त रहती है, और औपदेशिक कवि मन्त्र-तन्त्र के अनुष्ठान से कवित्व शक्ति को अर्जित करता है। अतः वह कभी तो सरस और कभी नीरस रचना करता है।

राजशेखर को यह मन्तव्य अभीष्ट नहीं है। उन्होंने रचना के उत्कर्ष को श्रेष्ठता प्रदान की है, सारस्वत, आभ्यासिक एवं औपदेशिक नामों को नहीं। उनके मतानुसार गुणों की ही अधिकता से काव्य में उत्कर्ष होता है। जिस कवि में जितने अधिक गुण होंगे उतनी ही उत्कृष्ट उसकी रचना होगी। वे कहते हैं कि काव्य-रचना में उपकारिणी विद्याओं का प्रखर ज्ञान, काव्य-रचना का अभ्यास तथा गूढ़ कवित्व शक्ति–इन तीनों का एकत्र निवास दुर्लभ है। काव्य, काव्याङ्ग विद्याओं का पूर्ण अभ्यास तथा मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान का रहस्य ज्ञान जिस कवि को है कविराजता उसके लिये अलभ्य नहीं है। कविराज राजशेखर की यह युक्ति इसी ओर इंगित करती है कि वे आचार्य श्यामदेव के मत के समर्थक नहीं हैं। सारस्वत, आभ्यासिक अथवा औपदेशिक कवि में से किसी में भी यदि सर्वगुण विद्यमान हैं तो वही श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

मौलिकता-जन्य कविभेद : राजशेखर ने रचना की मौलिकता की दृष्टि से कवियों की कतिपय श्रेणियाँ निर्धारित की हैं। वे हैं—(१) उत्पादक, (२) परिवर्तक, (३) आच्छादक, (४) संवर्गक। इस विषय में उनका निम्न कथन नितान्त युक्तियुक्त है:—

> नास्त्यचोरः कविजनो नास्त्यचोरो वणिग्जनः।
> स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम् ॥[2]

कवि और वणिग्जन चौर्य-कर्म के विना रह नहीं सकते, परन्तु जो चोरी को छिपाना जानता है वह वस्तुतः आनन्द से रहता है। मौलिक रचना करने वाले कवि नगण्य हैं। जो अपनी प्रतिभा से नवीन रचना करता है उसे उत्पादक कवि कहते हैं। दूसरे की रचना में कुशलता से परिवर्तन करके उसे अपनी बना

---

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १७। २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६२।

लेने वाला कवि परिवर्तक की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो अपनी प्रतिभा से दूसरों की रचना पर इस तरह आवरण डालता है कि उस रचना के अन्यकृत होने का आभास ही नहीं हो पाता, ऐसा कवि आच्छादक कहा जा सकता है। दूसरे की कविता या काव्य को निर्भीकता से अपना कहकर प्रकट करने वाला कवि संवर्गक की कोटि में रखा जा सकता है। राजशेखर की इन दो पंक्तियों से उक्त कवि-श्रेणियों का बोध होता है—

उत्पादकः कविः कश्चित्कश्चिच्च परिवर्तकः
आच्छादकस्तथा चान्यस्तथा संवर्गकोऽपरः ।[1]

विषयानुसार कवि-कोटियाँ : राजशेखर ने वाङ्मय के शास्त्र एवं काव्य इन भेदों के आधार पर कवियों के तीन वर्ग बनाये हैं। जिन कवियों का लक्ष्य अपनी रचना में काव्य को महत्व देता है वे काव्यकवि, जिनका प्रमुख उद्देश्य रचना में शास्त्र को अभिव्यक्त करना है वे शास्त्रकवि एवं जिनका लक्ष्य शास्त्र और काव्य दोनों की समान महत्ता स्थापित करना है वे उभयकवि कहलाते हैं। इस संदर्भ में राजशेखर ने श्यामदेवाचार्य का उल्लेख किया है, जिनके अनुसार शास्त्रकवि से काव्यकवि और काव्यकवि से उभयकवि-श्रेष्ठ माने जाते हैं।[2] राजशेखर इनसे असहमत हैं। उनके मतानुसार अपने-अपने विषय में प्रत्येक कवि श्रेष्ठ है। अतः उनमें से किसी को ऊँचा या नीचा बतलाना ठीक नहीं। नीरक्षीर-विवेक में कुशल राजहंस भी चन्द्रिकापान में असमर्थ होता है और चन्द्रिकापान में दक्ष चकोर भी नीर-क्षीर विवेक में असमर्थ सिद्ध होता है। ठीक इसी प्रकार काव्यकवि और शास्त्रकवि के रचना क्षेत्र नितान्त भिन्न होने के कारण उनकी उच्चा-वचता का प्रश्न ही नहीं उठता? शास्त्रकवि रस-सम्पदा के द्वारा शास्त्र की जटिलता को शिथिल कर उसे रससिक्त करने का प्रयास करता है। काव्यकवि शास्त्र के तर्क-कर्कश अर्थों में भी उक्तिवैचित्र्य के द्वारा, मधुरता को स्पंदित करता है। उभयकवि दोनों प्रकार की विधिओं में दक्ष होता है। अतः राजशेखर का कथन है कि तीनों ही कवि अपने-अपने क्षेत्र में समान के हैं कम या अधिक नहीं। काव्य और शास्त्र की सापेक्षता के कारण दोनों के मध्य उपकार्य-उपकारक भाव रहता है। अतः इन दोनों का सामंजस्य नितान्त अपेक्षित है। इन दोनों के महत्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् राजशेखर ने शास्त्रकवि के तीन प्रकार वर्णित किये

---

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६१।
२. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १७ तेषमुत्तरोतरीयो गरीयान् इति श्यामदेवः।

हैं—(१) शास्त्र का निर्माण करने वाला, शास्त्रविधाता, (२) शास्त्र में काव्य का निवेश करने वाला शास्त्रकाव्यनिधाता एवं (३) काव्य में शास्त्रीय अर्थों को संविष्ट करने वाला शास्त्रकाव्य-संविधाता । काव्यकवि आठ प्रकार के होते हैं : (१) रचना कवि, (२) शब्दकवि, (३) अलंकारकवि, (४) अर्थकवि, (५) मार्गकवि, (६) शास्त्रार्थकवि, (७) उक्तिकवि एवं (८) रस-कवि ।

शब्दकवि यदि नामों का, आख्यातों का या नामाख्यातोभय का प्रयोग विशेष रूप से करता है तो वह विशेषतानुसार नामकवि, आख्यातकवि तथा नामाख्यात-कवि से संबोधित किया जाता है । अलंकारों की रचना में अर्थालंकारों का प्राधान्य होने पर वह अर्थालंकारकवि एवं शब्दालंकारों का बाहुल्य होने पर वही शब्दालंकारकवि की संज्ञा धारण करता है । उपर्युक्त आठ गुणों में से दो तीन गुण विद्यमान होने पर वह निम्न-कोटि का, पाँच गुणों से युक्त होने पर मध्यमश्रेणी का तथा समस्त गुणों से विभूषित होने पर महाकवि कहा जा सकता है क्योंकि महाकवि के लिए रीति, गुण, शब्दार्थसमूह, सूक्तिमुद्रा सभी का अनु-शीलन अनिवार्य है । कतिपय कवियों में दूसरों के काव्य का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी सामान्यतया पायी जाती है ।

इस प्रकार के कवियों के पाँच वर्ग राजशेखर ने माने हैं—(१) भ्रामक, (२) चुम्बक, (३) कर्षक, (४) द्रावक एवं (५) चिन्तामणि ।[1]

(१) प्राचीन कवियों के द्वारा व्यक्त भावों का वर्णन कर पाठकों में मौलिकता की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाला कवि भ्रामक कहलाता है । (२) दूसरे कवि के काव्य में मनोहर एवं नवीन अर्थ का पुट दनेवाला कवि चुम्बक कहलाता है । (३) दूसरे कवियों के शब्दार्थों को अपनी रचना में सजाने वाला कवि कर्षक नाम से पुकारा जाता है तथा (४) दूसरे कवियों के मूल भावों को अपनी रचना में समाविष्ट करके नूतनता की प्रतीति कराने वाला सिद्ध कवि द्रावक कहलाता है । ये चारों प्रकार लौकिक कवियों के हैं । अलौकिक कवि चिन्ता-मणि कहलाता है क्योंकि उसकी पदावली के सुनते ही स्रोताओं के हृदयरस-प्लावित हो जाते हैं । काव्य का तात्पर्य चित्र की भाँति सम्मुख उपस्थित हो जाता है । यही अलौकिकता का रहस्य है । कवियों के ये भेद बतलाते हुए राजशेखर ने कवियों की निम्न दस अवस्थाओं का भी वर्णन किया है ।

१. काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६४—भ्रामकश्चुम्बकः किञ्च कर्षको द्रावकश्च यः ।
स कविर्लौकिकोऽन्यस्तु चिन्तामणिरलौकिकः ।

(१) काव्यविद्यास्नातक, (२) हृदयकवि, (३) अन्यापदेशी, (४) (४) सेविता, (५) घटमान, (६) महाकवि, (७) कविराज (८) आवेशिक, (९) अविच्छेदी तथा (१०) संक्रामयिता ।

जो व्यक्ति कवित्व की कामना से काव्य की विद्याओं तथा उप-विद्याओं के ग्रहण करने के लिए गुरुकुल में जाकर निवास करता है, वही काव्य-विद्या-स्नातक है । (२) जो हृदय में ही कविता को छिपाये रहता है, वह हृदयकवि है । (३) स्वयं कविता करने के पश्चात् दोष के भय के कारण उसे दूसरे की रचना कहकर उसका प्रचार करता है वह अन्यापदेशी कवि है । (४) प्राचीन या पूर्ववर्ती कवियों की छाया को ग्रहण कर रचना करने वाला सेविता कवि है । (५) जो मुक्तक काव्य की रचना कर सकता है प्रबन्ध की नहीं, यह घटमान कवि कहलाता है । (६) प्रबन्ध-काव्य की रचना करने वाला महाकवि तथा (७) सब प्रकार की भाषाओं में विभिन्न रसों का आविष्करण करने में समर्थ कवि राजपद का अधिकारी होता है । (८) मन्त्र तन्त्र की उपासना से काव्य में सिद्धि पाने वाला कवि आवेशिक कहलाता है । (९) जो इच्छा होते ही विना किसी अवरोध के रचना करता है, उसे अविच्छेदी कवि कहते हैं । (१०) जो स्वयं सिद्धमन्त्र होकर मन्त्र के बल पर कन्या या कुमारी में सरस्वती का संक्रमण करता है उसे संक्रामयिता कहते हैं ।

कवि की इन दस अवस्थाओं में प्रथम सात कवि के क्रमिक विकास की द्योतक हैं । आठवीं तथा दसवीं अवस्था का सम्बन्ध औपदेशिक कवि से है ।

काव्य-कला के साधकों की मनोवृत्ति भी कवियों के काव्यभेदों का आधार बन सकती है । कुछ कवि एकाग्र चित्त से, भूमिगृह में बैठकर काव्य रचना में प्रवृत्त होते हैं । उन्हें असूर्यपश्य कवि कहते हैं । कुछ प्रसंग जाने पर ही काव्य रचना करते हैं ऐसे कवि निष्पण्ण कहलाते हैं । कतिपय अन्य कार्यों से निवृत्त होने पर रचना करते हैं उन्हें दत्तावसर कवि कहा जाता है । किसी विशेष प्रयोजन से काव्य-सृजन करने वाले की प्रायोजनिक संज्ञा है ।

राजशेखरकृत कवि का वर्गीकरण, उनके द्वारा वर्णित कवियों की दस अवस्थायें उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं पाण्डित्य की परिचायिका हैं । उन्होंने कवियों के भेदोपभेदों का जो वर्णन किया है वह उनकी मौलिकता का प्रमाण है । काव्य के अन्तस्तल तक पहुँचकर कवियों की मनोवृत्ति की सूक्ष्म व्याख्या उनकी विश्लेषण शक्ति को सूचित करता है । उन्होंने कवियों के असंख्य प्रकारों की ही विवेंचना नहीं की अपितु भिन्न देशीय कवियों की

काव्यपाठ-प्रणाली का भी विवेचन किया है। उन्होंने काव्यमीमांसा में कविचर्या का जो विस्तारपूर्वक निरूपण किया है, उससे प्रतीत होता है कि वे केवल कवि ही नहीं थे, कवियों के श्रेष्ठ मार्ग-दर्शक भी थे।

भावक : राजशेखर ने आलोचक या समीक्षक के लिए 'भावक' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है (भावयतीति भावकः) कवि के श्रम तथा अभिप्राय की भावना करने वाला। द्विविध प्रतिभा में से भावयित्री प्रतिभा भावक की उपकारिणी होती है। कवि का काव्यतरु इसी प्रतिभा के बल पर फलित होता है।

भावक-भेद : राजशेखर ने भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भावकों के तीन भेद बतलाये हैं।[1] ये हैं:—वाग्भावक, हृदय-भावक तथा अनुभाव भावक। वाणी द्वारा भाव प्रकट करने वाला वाग्-भावक कहलाता है। काव्यास्वादन या काव्यपरीक्षण करने के पश्चात् भी जो अपने भावों को हृदय में ही रखता है उसे हृदय-भावक कहते हैं। अनुभाव-भावक काव्य की श्रेष्ठता या अधमता को सात्विक एवं आंगिक भावों द्वारा प्रकट करता है।[2] इन तीन भेदों के अतिरिक्त भी राजशेखर ने भावकों की अन्य चार कोटियाँ वर्णित की हैं—अरोचकी, सतृणाभ्यविहारी, मत्सरी तथा तत्वाभिनिवेशी। अरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी भावक—कोटियों का उल्लेख राजशेखर के पूर्ववर्ती आचार्य मंगल ने भी किया है। इन्हीं दो को वामन[3] ने कवियों में परिगणित किया है।

राजशेखर का कथन है कि अरोचकी भावक उत्कृष्टतम रचना के प्रति भी अरुचि व्यक्त करते हैं। उनकी यह अरोचकता दो प्रकार की होती है—स्वाभाविकी एवं ज्ञानयोनि। स्वाभाविक अरुचि सैकड़ों संस्कारों से भी दूर नहीं हो सकती। जिस प्रकार अनेको संस्कारों के पश्चात् भी राँगे की कालिमा नहीं मिट सकती। ज्ञानजन्य अरुचि के विषय में किञ्चित आशा दिखाई देती है क्योंकि उसमें विशिष्ट ज्ञेय वचनों से प्रभावित होने की उसमें संभावना रहती है।[4] सतृणाभ्यवहारी

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—भावकस्योपकुर्वाणा भावयित्री। सा हि कवेःश्रममभिप्रायं च भावयति। तथा खलु फलितः कवेर्व्यापारतरुः।
२. काव्यमीमांसा अ० ४. पृ० १५—वाग्भावको भवेत्कश्चित्कश्चिद्हृदयभावकः। सात्विकैराङ्गिकैः कश्चिदनुभावैश्च भावकः
३. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—ते च द्विधा अरोचकिनः सतृणाभ्यवहारिणश्च इति मंगलः।
४. काव्यलंकारसूत्र—वामन—१, २—इह खलु द्वे कवयः सम्भवन्ति। अरोचकिजः सतृणाभ्यवहारिणश्चेति।

भावक साधारण कोटि का कहा जा सकता है। प्रतिभा एवं विवेक से हीन होने के कारण उसमें गुण और दोष को पहचानने की क्षमता नहीं होती। अतः अनेक अनुपयुक्त तत्वों का ग्रहण तथा उपादेयों का त्याग उसके लिए सामान्य बात होती है। विवेक का उदय होते ही बुद्धि का परिष्कृत होना प्रारम्भ हो जाता है तथा वह कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करती है। तीसरे प्रकार का भावक मत्सरी है। शोभनीय से शोभनीय काव्य भी उसे नहीं सुहाता। दूसरे के गुणों का वर्णन करने में उसकी वाणी कुण्ठित हो जाती है। तत्वाभिन्वेशी भावक हजारों में एक होता है। यह काव्य रचना के परिश्रम को जानता है, शब्दो की रचना-विधि को भलीभाँति पहचानता है, सुन्दर उक्तियों से आल्हादित होता है और काव्य के तात्पर्य को भलीभाँति समझता है। सचमुच ऐसा आलोचक बड़े ही पुण्य प्रभाव से मिलता है।[1] भावक की महत्ता कविगण ही जानते हैं, अतः भावक काव्यसौन्दर्य का ग्रहण कर दिगदिगन्त में उसका प्रचार करता है। पुस्तकविन्यस्त काव्यबन्ध घर-घर में मिल सकते हैं किन्तु सच्चा काव्य वही है जो भावक के हृदयपट पर अंकित हो जाय। भावक कवि का स्वामी, मित्र, मंत्री, शिष्य, आचार्य सभी होने की क्षमता रखता है। काव्य का रस-ग्रहण करते समय उसके चेहरे पर जो अलौकिक भाव मुद्रित होते हैं, उनका अनुभव करने में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है।[2]

कवि और भावक : कवि का सम्बन्ध कारयित्री तथा भावक का भावयित्री प्रतिभा से है, तथापि दोनों प्रकार की प्रतिभा का निवास एक ही व्यक्ति में हो सकता है या नहीं? इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद दिखाई देता है। राजशेखर ने प्राचीन आचार्यों का मत उद्धृत किया है जो कवि और भावक की एकता पर विश्वास रखते हैं।[3] वे (आचार्य) कहते हैं कि कवि ही भावनासक्षम है और

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—शब्दानां विविनक्ति गुम्फनविधीनामोदते सूक्तिभिः। सान्द्रं लेढि रसामृताविचिनुतेतात्पर्यमुद्रां च यः। पुण्यं संघटते विनेकतृविरहादन्तर्मुखं ताम्यतां। केषामेव कदाचिदेव सुधियां काव्यश्रमज्ञो जनः।

२. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५— नीयन्ते भावकैर्यस्य न निबन्धा दिशो दश सन्ति पुस्तकविन्यस्ताः काव्यबन्धा गृहे-गृहे। द्वित्रास्तु भावकमतः शिला-पट्टनिकुट्टिताः। स्वास्वामी मित्रं च मन्त्री च शिष्यश्चाचार्य एव च। कवेर्भवति हि चित्रं किं हि तद्यन्न भावकः। सत्काव्ये विक्रियाः कश्चिद्-भावकस्योल्लसन्ति ताः। सर्वाभिनयनिर्णीतो दृष्टा नाट्यसृजा न यः।

३. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—कः पुनरुभयोर्भेदो यत्कविर्भवियति भावकश्च इत्याचार्याः।

भावक ही काव्य को सफल बनाते हैं। अतः भावयित्री प्रतिभा से युक्त कवि कभी भी अधमदशा प्राप्त नहीं कर सकता—

प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भुरिधा
भावकस्तु कविःप्रायो न भजत्यधमां दशाम्।[१]

कवि कुलगुरु कालिदास की अनुभूति इन आचार्यों के मत के नितान्त विपरीत है। वे कवित्व और भावकत्व का वास एक ही व्यक्ति में मानने के पक्ष में नहीं हैं।[२] उन्होंने कहा है—

तंसन्तः श्रोतुमर्हन्ति सद सद्व्यक्तिहेतवः[३]

उनके विचार से सद् और असत् काव्य की अभिव्यक्ति के उत्तरदायी सन्त ही होते हैं—

एकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षामोऽन्यः।[४]

एक पत्थर सुवर्ण उत्पन्न करता है और दूसरा उसकी परीक्षा करता है। इसी प्रकार एक वचन-रचना में समर्थ होता है तो दूसरा कविता के गुणदोषों की विवेचना में।

आचार्य राजशेखर कालिदास के विचारों से पूर्णतया सहमत हैं। वे कहते हैं कि स्वरूप-भेद तथा विषय-भेद होने से भावकत्व भिन्न हैं, कवित्व से पृथक हैं।[५] अतः वे एक व्यक्ति में उभयमुखी कवित्व और भावकत्व-प्रतिभा का निवास अंगीकार नहीं करते।

काव्य पाक : राजशेखर के कथनानुसार निरन्तर अभ्यास से सुकवि का वाक्य परिपक्वता को प्राप्त करता है। इसे ही काव्य-पाक कहते हैं।[६] पूर्वाचार्य मंगल के मत को उद्घृत करते हुए उन्होंने कहा है कि मंगल की सम्मति में 'सुपां तिङ्गा च श्रवेण एषा व्युत्पत्तिः अर्थात् सुप् और तिङ्ग के परिज्ञान से परिपक्वता आती है, इसे व्युत्पत्ति भी कहते हैं। आचार्यों का मत है कि पदनिवेशनिष्कम्पता ही पाक-संज्ञा धारण कर सकती है। इस संदर्भ में यायावरीय ने आचार्य वामन के

---

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृः १३। २. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४।
३. रघुवंशः १:१३। ४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४।
५. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३।
६. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—सततमभ्यासवशतः सुकवेः वाक्यं पाकमायाति।

मत का उल्लेख किया है । वामन ने पदपरिवृत्ति असहिष्णुता को शब्दपाक कहा है ।[1] राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी वामन के कथन को मानने के पक्ष में नहीं है । राजशेखर ने उनके मत का भी उल्लेख किया है । वे कहती हैं कि यह पाक नहीं, अपितु कवि की अशक्ति है, क्योंकि महाकवियों द्वारा एक ही वस्तु के विभिन्न शब्दों द्वारा किये गये वर्णन परिपक्व होते हैं । इसलिए रसानुरूप शब्दार्थों से की गयी पद-रचना ही पाक है । "इयमशक्तिर्न पुनः पाकः इत्यवन्ति सुन्दरी ।"[2] आचार्य राजशेखर अवन्तिन्सुदरी के कथन से सहमत हैं किन्तु पाक के निर्णय का कार्य दे सहृदय आलोचकों को सौंप देना चाहते हैं । उनका कथन है कि जहाँ पदों के परिवर्तन की आवश्यकता हो वह शब्दपाकवाला काव्य है । जहाँ रस अलंकार और गुणों का सुन्दर क्रम हो वह वाक्य-पाक है । काव्यपाक का लक्षण देने के उपरान्त उन्होंने उसे ९ भदों में विभिक्त किया है । ये समस्त भेद ग्राह्य नहीं हैं । अतः सरसता के आधार पर इन ९ भेदों को तीन भागों में रख सकते हैं—

मधुर या सरस	सरस-नीरस	नीरस
मृद्वीका	वदर	पिचुमन्द
सहकार	तिन्तिडीक	वार्ताक
नारिकेल	त्रपुस	क्रमुक

स्पष्ट है कि नीरस होने के कारण पिचुमन्द, वार्ताक और क्रमुक पाक सर्वथा त्याज्य हैं । वदर, तिन्तिडीक और त्रपुस मध्यम होने के कारण संस्कार द्वारा परिमार्जित किये जा सकते हैं। भृद्वीका, सहकार और नारिकेल पाक-मधुर या सरस होने के कारण ग्राह्य हैं । आचार्य भामह और वामन ने भी पाक को दो भागों में विभिक्त किया है—सरस और नीरस के कथन पर वे हृद्य और अहृद्य का प्रयोग करते हैं । कपित्थपाक को वे अहृद्य मानते हैं । वामन सहकार पाक को श्लाध्य एवं वार्ताक को गर्हणीय वताते हैं ।

राजशेखर प्रथम आलंकारिक हैं जिन्होंने काव्य-पाक की इतनी विस्तृत रूप से चर्चा की है ।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—आग्रहपरिग्रहादपि पदस्थैर्यपर्यावसाय-स्तस्यात्पदानां परिवृत्तिवैमुख्यं पाक : इति वामनीयाः ।

२. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—इयमशक्तिर्न पुनः पाकः इत्यवन्तिसुन्दरी । यऽकस्निेन्वस्तुनि महाकवीःनामनेकोऽपि पाठः परिपाकवान्भवति । तस्मा-द्रसौचितशब्दार्थ—सूक्तिनिवन्धनः पाकः ।

काव्य-हरण : काव्य की चोरी को काव्यहरण कहते हैं। कहा गया है—

'नास्त्यचोरः कविजनो नास्त्यचोरो वणिग्जनः
स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम्।'[1]

काव्य-रचना करने वाले कवि और क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारी—ये दोनों चोर न हों—ऐसा संभव नहीं है। इन सब में चौर्यवृत्ति न्यूनाधिक मात्रा में पायी जाती है, किन्तु जो चोरी की वस्तु पर स्वप्रतिभा की छाप लगाकर उसे स्वरचित प्रमाणित करने में समर्थ हो, वही प्रशंसनीय है। दूसरे की काव्य-रचना में प्रयुक्त किये गये शब्दों या अर्थों को अपनी रचना में प्रयुक्त करने का नाम 'हरण' है। कतिपय विद्वान् हरण को ग्राह्य मानते हैं और कतिपय त्याज्य। स्वयं राजशेखर की विदुषी पत्नी का मत है कि काव्य-रचना के सौन्दर्य एवं प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए कवि द्वारा शब्दहरण और अर्थहरण उचित है। उस कवि के पद, शब्द या अर्थ का हरण ग्राह्य है जो अप्रसिद्ध या अप्रतिष्ठित हो, दूसरी भाषा का हो या दूसरे देश का निवासी हो, जिसकी काव्य रचना अधिक सरस न हो या जिसके काव्य को जानने वाले सभी मर गये हों अथवा जिसके काव्य का मूल नष्ट हो गया हो। राजशेखर अवन्तिसुन्दरी से सहमत नहीं हैं।[2] श्लेषसहित तीन पदों तक के हरण को मान्यता देने वाले आचार्यों के प्रति असम्मति प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि यदि पद दो अर्थों वाला हो तो उसे ग्रहण करने में दोष नहीं है, परन्तु द्वयर्थक पद को छोड़कर अन्य पद का हरण करना उचित नहीं। राजशेखर ने शब्द हरण के पाँच भेद बतलाये हैं:—

(१) पदहरण, (२) पादहरण, (३) श्लोकार्द्धहरण, (४) वृत्तहरण तथा (५) प्रबन्धहरण।

राजशेखर के अनुसार पद यदि दो अर्थोंवाला हो तो उसका हरण उचित है, अन्यथा नहीं। उदाहरणार्थ—

दूराकृष्टशिलीमुखव्यतिकरान्नो किं किरातानिमा
नाराद्व्यावृतपीतलोहितमुखान्किं वा पलाशानपि।

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६३।
२. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७—अयमप्रसिद्धः प्रसिधिमानहम्, अयमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठावानहम्, अप्रकान्तमिदमस्य संविधानकं प्रक्रान्तं मम, गुडूची वचनोऽयं, मृद्वीकावचनोऽहम्, अनादृतभाषाविशेषोऽयमहमादृतभाषाविशेषः, प्रशान्तज्ञातृकमिदं, देशान्तरिकतकर्तृमिदं उच्छन्ननिवन्धनमूलमिदं, म्लेच्छितकोपनिवन्धनमूलमिदमित्येवमादिभिः कारणैः शब्दहरणे अर्थहरणे चाभिरमेत इति अवन्तिसुन्दरी।

पान्थाः केसरिणं न पश्यत पुरोप्येनं वसन्तं वने
मूढ़ा रक्षत जीवितानि शरणं यात प्रियां देवताम् ।[१]

अर्थात् हे पथिको ! जिन्होंने शिलीमुखी (वाणों और भ्रमरों) के समूहों को दूर से ही खींच रखा है—ऐसे इन किरातों (भीलों और फूले हुए चिरायतों) को क्या तुम नहीं देख रहे हो ? तथा उन पलाशों (पलाश वृक्ष और राक्षसों) को भी नहीं देख रहे हो जिन्होंने अपने मुखों की पीतिमा और लालिमा प्रकट कर दी है। फिर क्या तुम सामने ही वन में खड़े केसरी (नागकेसर और सिंह) को भी नहीं देख रहे हो ? हे मूर्खो ! अपने-अपने प्राणों की रक्षा करो और अपनी प्रिय (इष्ट प्रिया) देवता की शरण में जाओ ।)

इस श्लोक में शिलीमुख शब्द वाण और भ्रमर के लिए, किरात शब्द भीलों और चिरायता के वृक्ष के लिए, पलाश शब्द पलाशवृक्ष और राक्षसों के लिए, केसरी शब्द नागकेसर और सिंह के लिए तथा प्रिय शब्द इष्ट और प्रिया के लिए प्रयुक्त हैं । निम्नलिखित श्लोकों के निर्माता कवि ने उक्त चार श्लिष्ट पदों में से शिलीमुख और किरात इन दो पदों का हरण किया है—

मा गाः पान्थ प्रियां त्यक्त्वा दूराकृष्टशिलीमुखम् ।
स्थितं पान्थानमावृत्य किं किरातं न पश्यसि ।[२]

हे पथिक ! तुम अपनी प्रिया को छोड़कर कहीं न जाओ। क्या तुम शिलीमुखों (वाणों और भ्रमरों) को आकृष्ट करके तथा मार्ग को रोककर खड़े हुए इन किरातों (भीलों और चिरायते के वृक्षों) को नहीं देख रहे हो ? शिलीमुख और किरात इन दो पदों का हरण होने के कारण यह हरण त्याज्य है ।

राजशेखर ने श्लिष्ट पद के एक देश के हरण को मान्यता दी है ।

नाश्चर्यं यदनार्याप्ता वस्तुप्रीतिरियं मयि ।
मांसोपयोगं कुर्वीत कथंक्षुद्रहितो जनः ।[३]

अनार्य या दुष्ट व्यक्ति के साथ संसर्ग हो जाने के कारण उसने मुझसे प्रेम करना छोड़ दिया, इसमें आश्चर्य ही क्या ? क्षुधा से रहित व्यक्ति मांस का उपयोग क्यों करेगा?)

यहाँ क्षुद्रहित पद श्लिष्ट है । क्षुद्र—इसके दो अर्थ हैं । पहला अनार्य का हितैषी इस अर्थ की प्रतीति कराता है (क्षुद्रस्य हितः हितकरः) तथा दूसरा

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ । २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ ।

क्षुद्र-रहित-क्षुधा से रहित अर्थ को व्यक्त करता है। उसी प्रकार मांसोपयोग पद श्लेष युक्त है। मांसोपयोग (माम् सोपयोग का अर्थ है मेरे लिए उपयोगी) तथा संधियुक्त मांसोपयोगं शव्द का अर्थ है मांस का उपयोग। उक्त श्लोक में दूसरे कवि ने मांसोपयोग में से केवल मांस शव्द ग्रहण किया है—

कोपान्मानिनि किं स्फुरत्यतितरां शोभाधरस्तेऽधरः
किं वा चुम्बनकारणाद्दयित नो वार्योविकारादयम्।
तस्मात्सुमु सुगन्धिमाहितरसं स्निग्धं मजस्वादरा-
न्मुग्धे मांसरसं ब्रुवन्निति तया गाढं समालिङ्गितः।[1]

अतः यह हरण ग्राह्य है।

राजशेखर ने यमक अलंकार द्वारा पूरे श्लेषयुक्त पाद के हरण को भी हरण का एक भेद माना है—यथा

हलमपारपयोनिधिविस्तृतं
प्रहरता हलिना समराङ्गणे।
निजयशश्च शशाङ्ककलामलं
निरवधीरितमाकुलमासुरम्॥[2]

इस उदाहरण में 'निरवधीरितमाकुलमासुरम्' पद व्याकुल दैत्य सेना को मर्यादा से च्युत करने या कँपा देने के अर्थ से प्रयुक्त है। अन्य कवि ने इस पद के द्वारा यमक अलंकार की सृष्टि की है—

दलयता विशिखैर्बलमुन्मदं
निरवधीरितमाकुलमासुरम्।
दशसु दिक्षु च तेन यशःसितं
निरवधीरितमाकुलमासुरम्॥[3]

श्लोक के द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में प्रथम श्लोक के' निरवधीरितमाकुलमासुरम्' पाद का यमकरूपेण हरण है। इसी प्रकार—

यस्यां भुजङ्गवर्गः कर्णायतेक्षणम् कामिनीवदनं च।[4]

चरण के 'कर्णायतेक्षणम्', पाद का हरण अन्य कवि ने अपने इस श्लोक में किया है।

किं करोतिकियत्कालं वेश्यावेश्मनि कामुकः
कीदृशं वदनं वीक्ष्य तस्याः कर्णायतेक्षणम्॥[5]

---

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६। २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६।
३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६। ४–५. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७।

अन्तर इतना ही है कि इस श्लिष्ट पद का प्रश्न के उत्तर के रूप में हरण किया गया है ।

निम्न उदाहरण में यमक अलंकार की अभिव्यक्ति हो रही है:—

वरदाय नमो हरये पतति जनोऽयं स्मरन्नपि न मोहरये ।
बहुशश्चक्रन्द हता मनसि दितिर्येन दैत्यचक्रं दहता ।[1]

यहाँ 'चक्रन्द हता' और 'चक्रं दहता' की आवृत्ति से यमक की सृष्टि हुई है । एक अन्य कवि ने 'चक्रं दहता' पद का हरण करके नवीन श्लोक निर्मित किया है—

चक्रंदहतारं चक्रन्द हतारं खड्गेन तवाजौ राजन्नरिनारी ।[2]

यहाँ 'चक्रं दहता' में क्रमशः अरम् और आरम् जोड़कर पुनः यमक का सृजन किया है । यह भी हरण का एक भेद है । इस प्रकार राजशेखर ने पद-हरण के अनेक भेद बतलाये हैं । इसी संदर्भ में राजशेखर ने अन्य आचार्यों के मतों का भी खण्डन किया है । आचार्यों का कथन है कि एक पद का हरण दोष नहीं कहा जा सकता है ।[3] श्लेष रहित तीन पदों तक का हरण ग्राह्य माना जा सकता है । उदाहरणार्थ—

स पातु वो यस्य जटाकलापे
स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगौरः
नीलोत्पलानामिव नालपुञ्जे
निद्रायमानः शरदीव हंसः ।[4]

इस श्लोक के प्रथम चरण के तीन पद स पातु वो यस्य' को अन्य कवि ने अपने श्लोक में ग्रहण किया है—

स पातु वो यस्य हतावशेषा-
स्तत्तुल्यवर्णाञ्जन रञ्जितेषु
लावण्ययुक्तेष्वपि वित्रसन्ति
दैत्याः स्वकान्तानयननोत्पलेषु ।[5]

आचार्यों द्वारा मान्यता-प्राप्त इन तीनों प्रकार के हरणों के विषय में राजशेखर अपनी पूर्ण असहमति प्रकट की है । वे कहते हैं कि अत्यन्त प्रसिद्ध (जिसके

१-२. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६—तत्रैकपदहरणं न दोषाय इति आचार्याः ।
४. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७—त्रिभ्यः पदेभ्यः त्वश्लिष्टेभ्यो हरणम् इति आचार्याः ।
५. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५७ ।

श्रवण-मात्र से कर्त्ता का स्मरण हो जाय) पाद का ही नहीं पादका हरण भी उचित है ।[१] भारवि के किरातार्जुनीय के तीसरे सर्ग का दसवाँ श्लोक—'इत्युक्तवानुक्ति विशेषरंम्यम्' पदावली से प्रारंभ होता है । यह श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि अन्य कवि अपने श्लोक में इस समूचे पाद का हरण कर लें तो कोई भी वता सकेगा कि पादहरण कहाँ से किया गया है, अतः इसे हरण नहीं कह सकते। किन्तु जहाँ कवि-प्रतिभा का व्यय हो, ऐसे उल्लेखनीय पद का हरण गर्हित कहलायेगा । यथा—

नमः संसारनिर्वाण विषामृतविधायिने ।
सप्तलोकौर्भिभङ्गाय, शंकरक्षीरसिन्धवे ॥[२]

इस श्लोक में शंकर को क्षीरसागर कहा है तथा उन्हें संसाररूपी विष और मो रूपी अमृत का जनक माना है । इसे दूसरे कवि ने अपने निम्न श्लोक में अपने नाम से प्रकाशित किया है—

प्रसरद्बिन्दुनादाय शुद्धामृतमयात्मने ।
नमोऽनन्तप्रकाशाय शंकरक्षीरसिन्धवे ।[३]

यहाँ श्लोक के 'शंकरक्षीरसिन्धवे' पद का हरण किया गया है । यह सर्वथा अनुचित है, क्योंकि पहले श्लोक के निर्माण में कवि की प्रतिभा का व्यय हुआ है ।

आचार्यों का कथन है कि किसी श्लोक में यदि किसी एक पाद के ही विपरीत पद का कारण वताकर ग्रहण किया जाय तो वह हरण नहीं अपितु स्वीकरण कहलायेगा ।[४]

त्यागाधिकाः स्वर्गमुपाश्रयन्ते
त्यागेन हीनाःनरकं व्रजन्ति ।
न त्यागिनां किंचिद्साध्यमस्ति
त्यागो हि सर्वंव्यसनानि हन्ति ।[५]

अपने उच्चतम त्याग के कारण उत्कृष्ट व्यक्ति, स्वर्ग को प्राप्त करते हैं और त्यागहीन व्यक्ति नरक को जाते हैं । त्यागियों के लिए असाध्य कुछ भी नहीं है । त्याग से सभी प्रकार के कष्ट दूर होते हैं ।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ । २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ । ४. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।
५. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।

उपर्युक्त श्लोक के 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण को अन्य कवि ने ग्रहण किया है किन्तु विपरीत बनाकर—

त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ती–
त्यलीकमेतद् भुवि सम्प्रतीतम् ।
जातानि सर्वव्यसना नि तस्या
स्त्यागेन मे मुग्धविलोचनायाः ॥[1]

यहाँ 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण विपरीत अर्थ का साधक है । 'त्याग सब कष्टों को दूर करता है, यह बात लोक में मिथ्या हो चुकी है । क्योंकि उस सरल नेत्रोंवाली प्रियतमा के त्याग से ही तो मुझे सारे कष्ट झेलने पड़ रहे हैं ।' आचार्य इस प्रकार के हरण को ग्राह्य मानते हैं ।

अर्ध-प्रयोग द्वारा हरण : राजशेखर इस कथन से सहमत नहीं हैं, उन्होंने इसे भी हरण की कोटि में रखा है । इस हरण के उन्होंने कतिपय भेद बतलाये हैं ।

{ पादस्ते नरवर दक्षिणे समुद्रे
पादोऽन्यो हिमवति हेमकूटलग्ने

{ आक्रामत्यलघु महीतलं त्वयीत्थं
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्नु कुर्युः
आक्रामत्यलघु महीतलं त्वयीत्थं
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्नु कुर्युः

{ इत्थं ते विघृतपदद्वयस्य राज–
न्नाश्चर्यं कथमिव सीवनी न भिन्ना

नमें पूर्व श्लोक के उत्तरार्द्ध का हरण किया गया है ।

(२) **अस्त-व्यस्त रूप से हरण :**

तत्तावदेव शशिनः स्फुटितं महीयो
यावन्न तिग्मरूचिमण्डलभम्युदेति ।
यावन्नकिंचिदपि गौरतराहसन्ति
अभ्युद्गते सकलधामनिधातु
तस्मिनाताभिः पुनर्विहसताननपंकजाभिः ।
इन्दोः सिताभ्रकलशस्य च को विशेषः ।

यहाँ पहले श्लोक के प्रथम और चतुर्थ पाद का हरण किया है ।

(३) एक ही पाद में परिवर्तन करके दूसरे छन्द का निर्माण भी हरण अन्तर्गत है—

अरण्ये निर्जने रात्रावन्तर्वेश्मनि साहसे
न्यासापह्नवने चैव दिव्या सम्भवति क्रिया ॥

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८ ।

निम्न श्लोकार्ध में ऊपर के उत्तरार्ध का हरण किया गया है—

तन्वङ्गी यदि लभ्येत दिव्या सम्भवति क्रिया ।

(४) पादत्रय का हरण : इसमें तीन पाद यथास्थान रखकर एक पाद को हटाकर एक नया पाद जोड़ दिया जाता है यथा—

यस्य केशेषु जीभूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मनेनमः ॥

इस श्लोक के तीन पाद लेकर—

यस्य केशेपु जीवूता नद्यः सर्वाङ्ग सन्धिषु ।
कुक्षा समुद्रा श्चत्वारः स सहेत स्मरानलम् ॥

इस श्लोक की रचना की गई है । इसमें तस्य तोयान्मने नमः इस पद को हटाकर और स सहेत स्मारनलम्' यह एक पद जोड़ दिया गया है ।

हरण में भी कवित्वः—

किमिह किमपि द्दष्टं स्थानमस्ति श्रुतं वा
व्रजति दिनकरोऽयं यत्र नास्तं कदाचित्
भ्रमति विहगसार्थानित्थमा पृच्छमानो
रजनिविरहभीतश्चक्रवाको वराकः ॥१॥

जयति सितविलोलव्यालयज्ञो पवीती ।
घनकपिल जटान्तभ्रन्तिगंगाजलौघः
अविदित मृगचिन्हा मिन्दुलेखां दधानः
परिणतशितिकण्ठश्यामकण्ठः पिनाकी ॥२॥

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥३॥

किमिह किमपि दृष्टं स्थानमस्ति श्रुतं वा
धनकपिल जटान्तर्भ्रान्तिगंगाजलौघः ।
निवसति स पिनाकी यत्र यायां तदस्मिन्
हतविधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥४॥

यहाँ कवि ने चौथे उदाहरण में प्रथम श्लोक का प्रथम, दूसरे का दूसरा, तीसरे का चौथा चरण लिया है । केवल तीसरा चरण निजी प्रतिभा से निर्मित किया है। अतः यह हरण नहीं कवित्व है ।

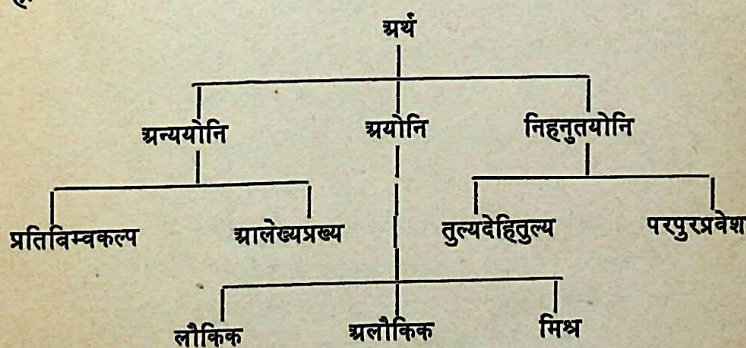
(२) या व्यापारवती रसान् रसयितुं काचित्कवीनां नवा
दृष्टिर्या परिनिष्ठितार्थविषयोन्मेषा च वैपश्चिती
ते द्वे अप्यवलम्ब्य विश्वमनिशं निर्वर्णयन्तो वयं
श्रान्ता नैव च लब्धमब्धिशयनं त्वद्भक्तितुल्यं सुखम् ।
लब्धमुत्पलदृशां प्रेम्णः समानं सुखम्,

अब्धिशयनं, द्त्वभक्तितुल्यंसुखम् के स्थान पर उत्पलदृशां प्रेम्णः समानं सुखम् जोड़ देने से यह भक्ति रसात्मक रचना शृंगारमयी हो गयी है ।

(३) असहकलहसितत्वात्क्षालितानीव कान्त्या
मुकुलितनयनत्वादव्यक्तकर्णोत्पलानि ।
पिवति (पिवतु) मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणां
त्वयि (मयि) विनिहितभारः कुन्तलानामधीशः ।।

इस श्लोक के तृतीय चरण में पिवति के स्थान पिवतु तथा चतुर्थ चरण में त्वयि के स्थान पर 'मयि' कर देने से श्लोक प्रार्थनापरक हो गया है ।

शब्दहरण की विवेचना करने के पश्चात् आचार्य अर्थहरण के भेद वतलाते हैं:—



अर्थ तीन भागों में वंटा है । अन्ययोनि, निह्नुतयोनि तथा अयोनि—अन्ययोनि तथा निह्नुतयोनि । प्रत्येक के दो स्थूल भेद हैं, जिन्हें क्रमशः प्रतिबिम्बकल्प, आलेख्य-प्रख्य, तुल्यदेहितुल्य एवं परपुरप्रवेश कहा गया है । इन चारों में प्रत्येक के आठ

भेदयुक्त होने के कारण अन्ययोनि तथा निह्नुतयोनि अर्थ ३२ उपभेदों में विभक्त दिखाई देता है । निम्नतालिका में ३२ भेदों के नाम दिये हैं:—

अर्थ

अन्ययोनि		निह्नुतयोनि	
प्रतिविम्वकल्प	आलेख्यप्रख्य	तुल्यदेहितुल्य	परपुरप्रवेश
व्यस्तक	समक्रम	विषयपरिवर्त	हुड़युद्ध
खण्ड	विभूषणमोष	द्वंद्वविच्छिति	प्रतिकञ्चुक
तैलविन्दु	व्युत्क्रम	रत्नमाला	वस्तुसंचार
नटनेपथ्य	विशेषोक्ति	संख्योल्लेख	धातुवाद
छन्दोविनिमय	उत्तंस	चुलिका	सत्कार
हेतुव्यत्यय	नटनेपथ्य	विधानापहार	जीवंजीवक
संक्रान्तक	एकपरिकार्य	माणिक्यपुंज	भावमुद्रा
सम्पुट	प्रत्यापत्ति	कन्द	तद्विरोधी

अन्योन्ययोनि के प्रथम भेद, प्रतिविम्वकल्प का लक्षण है—

अर्थःस एवं सर्वो वाक्यान्ताविरचनापरं यत्र
तदपरमार्थविभेदं काव्यं प्रतिविम्बकल्पं स्यात् ॥[1]

जिस रचना में किसी प्राचीन कवि का सारा अर्थ ले लिया गया हो । भेद केवल वाक्य विन्यास में हो, कोई तात्विक-भेद न हो उसे प्रतिविम्वकल्प कहते हैं ।

दूसरे काव्य का प्रतिविम्व होने से यह हरण सर्वथा त्याज्य है । इसके आठ भेद हैं—

(१) जिसमें पूर्व श्लोक के क्रम को वदल लिया जाय, अथवा श्लोक के पौर्वापर्य का विपर्यय कर दिया जाय उसे व्यस्तक कहते हैं ।
(२) विस्तृत अर्थ के खण्ड का प्रणयन खण्ड माना जाता है ।
(३) संक्षिप्त अर्थ को विस्तारपूर्वक वर्णित करना तैलविन्दु है ।
(४) दूसरी भाषा की रचना का भाषान्तर करना नटनेपथ्य प्रकार कहा जाता है ।

१. काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६३ ।

(५) छन्द की परिवृत्ति छन्दोविनिमय भेद का निर्माण करती है ।
(६) कारण की परावृत्ति का ही नामान्तर हेतु-व्यत्यय है ।
(७) दृष्टि पदार्थ के धर्मों का दूसरे पदार्थ में संक्रमण संक्रान्तक है ।
(८) दो पद्यों का अर्थ जहाँ मिश्रित किया जाय वह संक्रान्तक कहलाता है ।

अन्ययोनि अर्थ का दूसरा भेद आलेख्यप्रख्य है। यह प्राचीन काव्य से भिन्न न होने पर भी अनेक नवीन सामग्री से संस्कार युक्त होने के कारण ग्राह्य है यथा—

कियतापि यत्र संस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नवद् भाति
तत कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम् ।[1]

जहाँ प्राचीन कवि द्वारा प्रयुक्त वस्तु कुछ संस्कार कर देने से भिन्न प्रतीत हो उसे आलेख्यप्रख्य कहते हैं । इस आलेख्यप्रख्य के भी आठ भेद हैं—(१) सदृश्य उच्चारण समक्रम कहलाता है, (२) अलंकृत उक्ति को अलंकृत कर वर्णित करना विभूषणमोष है, (३) क्रम को विपरीत कर वर्णन करना व्युत्क्रम कहलाता है, (४) सामान्य को विशेप रूप में कहना विशेषोक्ति कहलाता है, (५) गौण भाव को प्रधानता से कहना उत्तंसभेद है, (६) प्रस्तुत को अन्यथारूप से कहना नटनेपथ्य है, (७) जो कारण सामग्री प्राचीन उक्ति में कही गई हो उसी सामग्री क्री किसी भिन्न कार्य के विषय में कहना एकपरिकार्य है तथा (८) विकृत रूप से कही गई वात प्रकृत रूप में कहना प्रत्यापत्ति कहलाता है । ये समस्त भेद अर्थ की समता होने पर भी वैचित्र्य उत्पन्न करते हैं ।

निह्नुतयोनि के दो भेद हैं—तुल्यदेहितुल्य तथा परपुरप्रवेश ।

तुल्यदेहितुल्य वह भेद है जिसमें शरीर की पृथकता होने पर भी दोनों उक्तियों की आत्मा एक समान ही रहती है । इसके भेद निम्न हैं—

(१) विषय में विषयान्तर मिलाकर उसका स्वरूपान्तर कर देना विषयपरिवर्तन, (२) दो प्रकार से किये गये वर्णन को एक रूप में ही कहना द्वन्द्वविच्छित्ति, (३) पूर्व अर्थों का अर्थान्तरों के द्वारा परिवर्तन रत्नमाला, (४) संख्या वैषम्य के द्वारा अर्थ का प्रणयन संख्योल्लेख, (५) सम का विपम द्वारा अथवा विषम का सम द्वारा वर्णन चूलिका, (६) निषेध का विधि रूप में वर्णन विधानापहार (७) वहुत अर्थों का एकत्र उपसंहार माणिक्यपुञ्ज तथा समष्टि का व्यष्टि रूप से वर्णन करना कन्द कहलाता है ।

१. काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६३ ।

परपुरप्रवेश के आठ भेद भी इस प्रकार हैं—

(१) निवद्ध वस्तु को युक्तिपूर्वक बदल देना हुडयुद्ध, (२) एक प्रकार की वस्तु को अन्य प्रकार की वर्णन करना प्रतिकञ्चुक, (३) एक उपमान को दूसरे उपमान में बदल देना वस्तुसञ्चार, (४) शब्दालंकार को अर्थालंकार में बदलना धातुवाद, (५) वस्तु का उत्कर्ष के साथ परिवर्तन कर देना सत्कार, (६) पहले जो सदृश्य था उसे असदृश्य कर देना जीवंजीवक, (७) प्राचीन उक्ति का अभिप्राय लेकर प्रवन्ध की रचना भावमुद्रा तथा (७) पूर्वार्थ परिपन्थिनी रचना का निर्माण तद्विरोधी कहलाता है ।

इस प्रकार राजशेखर ने अन्ययोनि तथा निह्नुतयोनि अर्थ के कुल बत्तीस भेद बतलाये हैं । निम्न भेदों में समानता लक्षित होती है—

आलेख्यप्रख्य	**प्रतिविम्बकल्प**
समक्रम	सङ्क्रम
व्युत्क्रम	व्यत्यक
विशेषोक्ति	तैलविन्दु

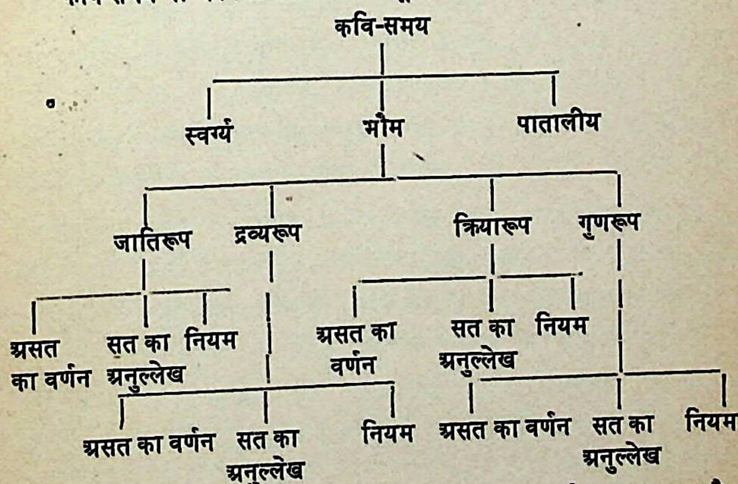
आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में काव्य-संवाद का उल्लेख किया है, किन्तु उसका विस्तृत तथा विशिष्ट भेदोपभेदों द्वारा अनुशीलन करना राजशेखर की निजी उद्भावना है ।

परवर्ती आचार्यों में क्षेमेन्द्र, हेमचन्द्र तथा वाग्भट ने इस विषय की चर्चा राजशेखर के आधार पर ही की है ।

कवि समय : राजशेखर कहते हैं कि—प्राचीन विद्वान सहस्त्रों शाखाओं वाले वेदों का अंगों के सहित अध्ययन करते थे । शास्त्रों का तत्वज्ञान प्राप्त कर एवं देशान्तरों और द्वीपान्तरों का भ्रमण कर वे जिन वस्तुओं को देखते सुनते थे उन्हें समझकर उनका वर्णन करते थे। उन वस्तुओं का और पदार्थों का देश-काल और कारण-भेद से भेद हो जाने या विपरीत हो जाने पर भी उसी प्राक्तन अविकृत रूप में वर्णन करना कवि-समय है । इस कवि समय शब्द का प्रयोग उसके मूल तत्व को न जानने वाले कुछ लोगों ने केवल प्रयोग को देखकर ही प्रचलित कर दिया और वह रूढ़ हो गया । वस्तुतः कवि लोग जिस अशास्त्रीय अलौकिक और केवल परम्परा-प्रचलित अर्थ का उल्लेख करते हैं वह कवि-समय कहलाता है । इस शब्द से मिलता-जुलता एक और शब्द अलंकार-शास्त्र में प्रयुक्त हुआ है और वह है काव्य-समय । इस शब्द का आद्य और अन्तिम प्रयोग वामन के

काव्यालंकारसूत्र में पाया जाता है जिसमें पुनरुक्ति, परित्याग, सन्धिनित्यता, लघु-गुरू भाव, पादादि में खलु आदि का निषेध, बहुव्रीहिपरक कर्मधारय का निषेध, नञ् का प्रयोग, विशेषण का प्रयोग, सर्वनाम से समासगत का परामर्श परम्परा-संबंधपरक षष्ठी, देशज पदों का प्रयोग, प्रचलित लिङ्ग और अध्याहार, प्रचलित लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग, लक्षण प्राचुर्य का निषेध एवं जाति-व्यक्ति के भेदाभेद का विवेचन किया है। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भामह और दण्डी ने काव्य-समय का प्रयोग नहीं किया किन्तु आचार्य भामह ने स्पष्ट रूप से दोष प्रकरण में देश, काल, कला, न्याय और आगम विरोधी तथा प्रतिज्ञा हेतु और दृष्टान्त से हीन वर्णन की दोषों में गणना की है। आचार्य दण्डी ने भी देश-काल-कला-लोक-न्यायगत विरोधी अर्थ को दोष रूप में मान्यता दी है। आचार्य वामन ने लोक-विरुद्ध और विद्या-विरुद्ध वाक्य और वाक्यार्थ को शुद्ध कहा है। संक्षेप में पूर्ववर्ती आचार्य शास्त्र और लोक से रहित, बातों के उल्लेख को दोष मानते हैं। ऐसी दोषयुक्त वस्तु का उल्लेख वे उचित नहीं समझते थे। यायावरीय राजशेखर कहते हैं कि इसके द्वारा कवियों का उपकार होता है। यह काव्यमार्ग का प्रदर्शक है। अतः यह दोष नहीं है।

कवि-समय या कवियों का आचार स्थूल रूप से तीन प्रकार का है—



भौम कवि-समय १२ प्रकार का है जिसका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।

असत् का वर्णन : जो पदार्थशास्त्र में या लोक में देखा या सुना न गया हो काव्य-रचना में उसका उल्लेख करना असत् का निबन्धन है। जाति, द्रव्य, क्रिया और गुणानुसार यह चार प्रकार का है।

जातिगत : नदियों में कमल कुमुद आदि का वर्णन, सभी जलाशयों में हंस सारस आदि पक्षियों का वर्णन, सभी पर्वतों में सुवर्ण रत्न आदि की खानों का वर्णन जातिगत असत् वर्णन के अन्तर्गत आता है। कालिदास ने मेघदूत में क्षिप्रा नदी के प्रवाह में हंस और कमल का वर्णन किया है। कवि-समय के अन्तर्गत ही यह माना जा सकता है अन्यथा नदी प्रवाह में हंस कमल आदि कैसे हो सकते हैं।

द्रव्यगत : अन्धेरे को मुष्टि से ग्रहण करने योग्य या सूची से भेदन करने योग्य कहकर वर्णन करना, चाँदनी का घड़ों में भरा जाना आदि द्रव्यगत असत् के वर्णन कवि-समय के अन्तर्गत आते हैं। राजशेखर ने विद्धशालभंजिका में अन्धकार के सूचिभेद्य होने तथा चन्द्रिका के घड़े में भरने योग्य होने का वर्णन किया है।

रात्रि में चकवा-चकवी का जलाशय के भिन्न-भिन्न तटों पर पृथक रहना, चकोरों का चन्द्रिकापान करना क्रियागत असत् अर्थ के उदाहरण हैं।

गुणगत : यश का श्वेत एवं अयश का कृष्ण होना, अनुराग की रक्तवर्णता और क्रोध की श्यामवर्णता गुणगत असत् के उदाहरण हैं।

सत् का अनुल्लेख : लौकिक जगत में विद्यमान, दृश्य वस्तुओं का कवि जगत् में उल्लेख न करना, सत का अनुल्लेख कहलाता है। यह भी जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया के भेदानुसार चार प्रकार का है:—

जातिगत अनुल्लेख : (१) वसन्त में मालती का अनुल्लेख (२) चन्दन-वृक्ष का पुष्परहित होना, (३) अशोक के फलों का वर्णन न करना आदि।

द्रव्यगत अनुल्लेख : (१) कृष्णपक्ष में चाँदनी का वर्णन न करना, (२) शुक्लपक्ष को अन्धकार हीन वताना आदि।

क्रियागत अनुल्लेख : (१) दिन में कमलों का विकास न होना, (२) रात्रि में शेफालिका के कुसमों का डाल से न गिरना आदि।

गुणगत अनुल्लेख : (१) कुन्दकलिका एवं कामिनियों के दाँतों का रक्तवर्ण, (२) कमल-कलिका का हरितवर्ण तथा (३) प्रियंगु पुष्पों का पीतवर्ण आता है।

उपर्युक्त वर्णनों से सत् के अनुल्लेख की प्रतीति होती है।

नियम : राजशेखर ने कवि-समय का तीसरा आधार "नियम" वतलाया है। नियम से तात्पर्य है—किसी वस्तु का किसी विशेष स्थान के प्रसंग में ही वर्णन करना। और उसके अन्यत्र मिलने पर भी उस विशिष्ट स्थान के प्रसंग

में ही वर्णन करना । यह नियम भी निम्न प्रकार का है—

जातिगत : समुद्र में ही मकरों का वर्णन करना (२) मोतियों का स्रोत ताम्रपर्णी को ही बताना ।

द्रव्यगत : (१) मलयगिरि को ही चन्दन का उत्पत्ति-स्थान तथा (२) हिमालय को ही भूर्जपत्र का प्रभव स्थान मानना ।

क्रियागत : (१) कोयल के कूकने का केवल वसन्त में ही वर्णन करना । (२) वर्षा में ही मयूरों के कूजन एवं नृत्य का वर्णन ।

गुणगत : (१) सामान्यतः माणिक्य में ही रक्तत्व, फूलों में शुक्लता एवं मेघों में ही कृष्णता का वर्णन ।

स्वार्य कवि-समय स्वर्ग लोक की बातों से संबंधित है । जैसे चन्द्रमा के कलंक को खरगोश या हिरण मानना, कामदेव के ध्वज में मकर या मीन का वर्णन करना, चन्द्रमा का जन्म अत्रि के नेत्र अथवा समुद्र से मानना, शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रकला को हमेशा बालत्व प्रदान करना, कामदेव को मूर्त्त तथा अमूर्त्त दोनों रूप में वर्णित करना, द्वादश आदित्यों को, नारायण, माधव, दामोदर, शेष, कूर्म, कमला और सम्पत्ति को एक मानना ।

पातालीय कवि-समय के अन्तर्गत : नागों एवं असुरों को एक मानने का उल्लेख है । यह कवि-समय, काव्य-शास्त्र में यायावरीय के द्वारा ही प्रथमतः विवेचित है, किन्तु संस्कृत रूपकों, नाटकों एवं काव्यों में कवि-समय के सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं । अतः काव्य-क्षेत्र में कवि-समय की उद्भावना का श्रेय राजशेखर को ही है ।

निष्कर्ष : उक्त प्रसंग के अन्तर्गत काव्यपुरुष, कवि भावक, काव्यपाक, काव्यहरण, कवि-समय आदि का विवेचन किया गया है । ये समस्त विषय कवि के लिए शिक्षाप्रद हैं । काव्यपुरुष का ज्ञान कवियों के लिए नितान्त आवश्यक है । अतः इस पुरुष का परिचय देने के पश्चात् राजशेखर कवियों को आत्म-निरीक्षण के लिए अग्रसर करते हैं । ज्ञान का होना ही पर्याप्त नहीं है । स्वीकृति का निष्पक्ष रूप से मूल्यांकन होने से ही श्रम की सार्थकता होती है । अतः भावक विवेचन की योजना की गयी । क्योंकि वही कवि के कार्य की परीक्षा कर सकता है । मूल्यांकन के पश्चात् भी सुकवि के काव्य में परिपक्वता होनी चाहिये । इस तथ्य का विवेचन 'काव्यपाक' प्रकरण में उपलब्ध है । हरण की प्रवृत्तिगर्हणीय किन्तु कुछ स्थलों पर ग्राह्य भी मानी जा सकती है । यह काव्य-हरण प्रसङ्ग में बतलाया गया है । कवियों के लिए अत्यन्त उपादेय वस्तु

"कवि-समय" का विवेचन भी इसी प्रसंग में वर्णित है । इस प्रकार कवियों के लिए उपकारक समस्त विषयों का विवेचन इस 'कवि शिक्षा सम्प्रदाय' में उपलब्ध है ।

काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदाय एवं राजशेखर

रस-सम्प्रदाय एवं राजशेखर : नाट्याचार्य भरत रस-सम्प्रदाय के प्रणेता माने जाते हैं । उन्होंने रस को नाटक का प्राण स्वीकार किया है । उनके अनुसार नाटक का प्रयोजन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा प्रेक्षकों में रस उत्पन्न करना है । इस प्रकार भरत ने रस का विवेचन नाटक के संदर्भ में ही किया है, प्रमुख विवेच्य के रूप में नहीं ।

आचार्य अभिनव गुप्त भरत से पूर्णतया सहमत हैं । जिस प्रकार माला सूत्र में पिरोयी रहती है, उसी प्रकार नाट्यकृति रस में अनुविद्ध रहती है ।[1] इस प्रकार भरत और अभिनव गुप्त के रस-सिद्धांत प्रमुखतः नाट्यशास्त्र से और गौण रूप में काव्यशास्त्र से सम्बन्धित हैं ।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में भरत को रूपक-निरूपणककर्ता तथा नन्दिकेश्वर को रस का आद्याचार्य कहा है । नन्दिकेश्वर के नाम से यद्यपि कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, तथापि वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि वे महादेव के अनुयायी थे, तथा उन्होंने एक हजार अध्यायों में कामशास्त्र की रचना की थी । सम्भवतः इन्होंने प्रमुखतः श्रृंगार रस का ही प्रतिपादन किया होगा, जो आगे चलकर नाट्याचार्य भरत के द्वारा विशेष रूप से विवेचित हुआ ।

आचार्य अभिनव गुप्त ने नन्दिकेश्वर द्वारा वर्णित रोचित अलंकार पर एक पद्य उद्धृत किया है ।[2] शायद उन्हें भी नन्दिकेश्वर की कोई कृति उपलब्ध न हो सकी थी । शारदातनय के भाव-प्रकाशन के तृतीय अध्याय में उल्लेख है कि नन्दिकेश्वर ने भरत को नाट्य की शिक्षा दी और उन्हें आदेश दिया कि वे अन्य भरतों को प्रशिक्षित करें । प्राध्यापक मनमोहन घोष ने अभिनव-दर्पण नामक ग्रन्थ का ३२४ पद्यों में सम्पादन किया । उन्होंने नन्दिकेश्वर को अभिनव दर्पण का रचयिता बताया है । इस ग्रन्थ में भरत के अनेक सिद्धांतों का उल्लेख है । कहीं-कहीं भरत से भिन्नता भी दिखाई देती है । अतः उल्लेखों के आधार पर यह रचना भरत के पश्चात् प्रतीत होती है । इसी सन्दर्भ में भरतार्णव नामक

१. एक एव तावत्परमार्थतोरसः सूत्रस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति—अभिनव भारती, भाग १ पृष्ठ २७३ ।
२. अभिनवभारती, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज—खण्ड १ पृ० १७१ ।

ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि सुमति नामक किसी विद्वान ने नन्दिकेश्वर का सारांश लेकर भरतार्णव ग्रन्थ की रचना की थी।[1] संगीत रत्नाकार में नाट्य से संबन्धित अनेक देवताओं, मुनियों तथा विद्वानों का उल्लेख है। उसमें नन्दिकेश्वर का नाम भी है।[2]

वात्स्यायन, अभिनव गुप्त एवं प्रो० मनमोहन घोष के कथन तथा भरतार्णव एवं संगीत-रत्नाकार के साक्ष्य से नन्दिकेश्वर का आचार्यत्व तथा उनका रसाविष्कर्ता होना निस्सन्देह सिद्ध होता है। राजशेखर भी नन्दिकेश्वर को आदि रसाचार्य मानते हैं। अतः नन्दिकेश्वर को रसाचार्य मानना समीचीन होगा। दुर्भाग्यवश वह नन्दिकेश्वर का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ, काल के गर्त में लीन हो गया।

आचार्य राजशेखर की रस-सिद्धांत विषयक मान्यतायें अधोलिखित हैं—

१. रस काव्य की आत्मा है।

२. काव्य में सरस अर्थ का निवन्धन होना आवश्यक है, नीरस का नहीं।

३. सरसता या नीरसता वस्तुनिष्ठ नहीं है, व्यक्तिनिष्ठ है।

काव्यमीमांसा के कवि-रहस्य अधिकरण के तीसरे अध्याय में राजशेखर ने काव्यपुरुष के सजीव वर्णन के माध्यम से रस को काव्य की आत्मा सिद्ध किया है—'शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्। समः प्रसन्नो मधुर ओजस्वीचासि। उक्तिचरणं च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिकं च वाक्केलिः अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलंकुर्वन्ति।[3] भविष्यतोऽर्थस्याभिधात्री श्रुतिरपि भवन्तमधिस्तौति।' राजशेखर से पूर्व भी काव्य की आत्मा का निर्णय अनेक सम्प्रदायों द्वारा किया गया, किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता नहीं दी थी। आचार्य राजशेखर उन आचार्यों में से हैं जिन्होंने काव्य के प्राणविधायक के रूप में रस को अङ्गीकार किया।

राजशेखर के चार शताब्दी पश्चात् कविराज विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" लिखकर राजशेखर के मत को ही पुष्ट किया। अलंकारशेखरकार को भी यह विचार मान्य था—'अलंकारस्तु शोभायां रस आत्मात्र परे मनः'

---

१. काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० पी० वी० काणे—पृ० २, ३।
२. संगीत रत्नाकर—१–१५, १९।
३. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६।

अग्निपुराणकार ने भी रस को ही काव्य का जीवन माना है—"वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।"

राजशेखर ने अर्थव्याप्ति नामक अध्याय में आचार्य आपराजिति का उदाहरण देकर रस की महत्ता का पुनः प्रतिपादन किया है । वे कहते हैं—'अस्तु नाम निःसीमार्थसार्थः किन्तु रसवत् एव निवन्धो युक्तो न नीरसस्य । अर्थ समूह भले ही असीम हों, किन्तु निवन्ध (काव्य) में सरस अर्थ का होना अत्यावश्यक है, नीरस का नहीं ।

भौतिक जीवन के पदार्थ स्वरूपतः रमणीय दिखाई देते हैं, किन्तु उनके वर्णन में रसानुकूलता अवश्य होनी चाहिये । रसानुकूलता का तात्पर्य रसातिशयोक्ति से नहीं है और न असमीचीन रसाभिव्यक्ति से । लोल्लट भट्ट इस, प्रसंग में अपना विचार प्रगट करते हुए कहते हैं कि मज्जन (जलक्रीड़ा) पुष्पावचय, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन सरस होने पर भी अधिक मात्रा में तथा प्रस्तुत प्रसंग एवं रस के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । कविगण नदी, पर्वत, समुद्र, नगर, घोड़े, हाथी, रथ आदि के वर्णनों में जो प्रयास करते हैं, वह उनकी कवित्व शक्ति का द्योतक मात्र है । सुधीजन उसे उचित नहीं समझते ।[1] आचार्य लोल्लट के इस कथन से राजशेखर ने—'आम् इति यायावरीयः' कहकर अपनी सहमति प्रगट की है । अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—"अस्ति चानुभूयमानो रसस्यानुगुणो–विगुणश्चार्थः । काव्येतु कविवचनानि रसयन्ति विरसयन्ति च, नार्थाः । अन्वयव्यतिरेकाव्यां च इदमुपलभ्यते ।" अनुभव द्वारा यह सिद्ध है कि कोई अर्थ रस के अनुकूल होता है और कोई उसके प्रतिकूल, किन्तु काव्य में अर्थ सरसता या नीरसता उत्पन्न नहीं करता, रसाविष्कर्ता तो वास्तव में उनका कवि होता है, उसके वचन होते हैं । उदाहरणार्थ[2] निम्नोक्त नदी वर्णन में रसवत्ता की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही हैः—

एतां विलोक्य तलोदरि ताम्रपर्णी–
मम्भौनिधौ विवृत्तशुक्तिपुटोद्धृतानि ।
यस्याः पयांसि परिणाहिषु हारमूर्त्या–
वामभ्रुवां परिणमन्ति पयोधरेषु ।।[3]

१. काव्य मीमांसा–अ०९ मन्जनपुष्प वचयन–सन्ध्या–चन्द्रोदयादिवाम्यामिह नातिवहुलं प्रकृतरसानन्वितं रचयेत् । यस्तु सरिदद्रिसागरपुरतुरग रथ दिवर्णने यत्नः कविशक्तिख्यातिफलौ सुधियाँ नौ मतः स इह ।।
२. काव्यमीमांसा–अध्याय ९ पृ० ४५ ३. काव्यमीमांसा–अध्याय ९ पृ० ४५

हे कृशोदरि! समुद्र में मिलती हुई इस ताम्रपर्णी नदी को देखो। सीपियों के सम्पुट से निकाले गये जिसके जल-कण, सुन्दरियों के विशाल स्तन-तटों पर मोतियों के हार के रूप में शोभा पाते हैं।

यहाँ कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा सुन्दरियों के पयोधरों पर सुशोभित जल-विन्दुओं को हार के रूप में परिणत कर उद्दीपन विभाव प्रदर्शित किया है।

राजशेखर ने रसानुभूति के इस प्रसंग द्वारा भारतीय रस-शास्त्र के जिस महत्वपूर्ण तत्व का आविष्करण किया है वह है प्रकृति के रमणीय दृश्यों के वर्णन में मानव-भावना के संस्पर्श द्वारा रसोत्पत्ति। वस्तु का सौन्दर्य तभी निखर सकता है, जब भाव-सौन्दर्य से उसका मार्जन किया जाय।

राजशेखर ने रस की व्यक्तिसापेक्षता का भी विशुद्ध विवेचन किया है और इस प्रसंग में उन्होंने जैन आचार्य पाल्यकीर्ति एवं अवन्तिसुन्दरी के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

आचार्य पाल्यकीर्ति का मत है कि "यथा तथा वास्तु वस्तुनोरूपम् वस्तुप्रकृति विशेषायत्ता तु रसवत्ता। तथा च यमर्थः रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते।"[1] वस्तु का रूप चाहे कैसा भी हो, सरसता तो कवि की प्रकृति के आधार पर ही होती है। यदि कवि का मन सरस है तो नीरस वस्तु भी सरस हो जाती है और यदि उसका मन ही नीरस हो तो सरस वस्तु भी नीरस प्रतीत होती है। अनुरक्त व्यक्ति जिस वस्तु की स्तुति करता है विरक्त व्यक्ति उसी की निन्दा करता है और मध्यस्थ व्यक्ति उस सम्बन्ध में उदासीन रहता है।

तीन प्रकृतियों के तीन व्यक्ति चन्द्र के प्रति अपना भाव प्रगट करते हैं। जिसे प्रियतमा का सान्निध्य प्राप्त है, उसे चन्द्रमा शीतल प्रतीत होता है, । विरही मनुष्य को वही चन्द्रमा अंगार की भाँति दाहक लगता है, संयोग-वियोग की भावना से निरपेक्ष व्यक्ति के लिए चन्द्रमा न सुखद है न दुःखद, न उष्ण है न शीत। उसके लिए वह शीशे के समान शोभित हो रहा है।

'येषा वल्लभया समंक्षणमिव स्फाराक्षपा क्षीयते
तेषां शीततरःशशी विरिहिणामुल्केव सन्तापकृत्।
अस्माकं न तु वल्लभा न विरहस्तेनोमय भ्रंशिना—
मिन्दू राजतिं दर्पणाकृतिरयं नोष्णो न वा शीतलः ॥[2]

---

१. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६। २. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६।

अवन्तिसुन्दरी ने भी पाल्यकीर्ति के सिद्धान्त की पुष्टि की है—

'विदग्धभणितिभंगिनिवेद्यं वस्तुनो रूपं नियतस्वभावम्' इति अवन्ति-सुन्दरी ।[१] उनके विचार से भी किसी वस्तु का स्वरूप नियत नहीं है । कुशल कवि की उक्ति विशेष से ही वह सगुण या निर्गुण हो जाती है ।

काव्य-जगत में किसी भी वस्तु का स्वभाव नियत नहीं है । वस्तु के गुण-दोष कविरसना पर अवलम्बित है । इसका एक प्रमाण यह भी है कि चन्द्रमा की प्रशंसा करने वाले उसे अमृतांशु कहते हैं तो अन्य उसे दोषाकर कहकर पुकारते हैं ।

'वस्तु स्वभावोऽत्रकवेरतन्त्रो
गुणगुणावुक्तिवशेन काव्ये ।
स्तुवन्निवघ्नात्यमृतांशुमिन्दुं
निन्दंस्तु दोषाकरमाह धूर्तः ॥[२]

राजशेखर इन दो आचार्यों की विचार-धाराओं से पूर्णतया सहमत हैं ।[३] 'उभयमुपपन्नम्' कहकर वे उनसे अपनी स्वीकृति प्रकट करते हैं । वे इस विषय में अप्रत्यक्ष रूप से आनन्दवर्धनाचार्य से प्रभावित हैं । आनन्द के मत से यदि कवि शृंगारी है, तो इसका संसार रसमय होता है, किन्तु यदि नीरस हो तो सम्पूर्ण काव्य नीरस होता है ।

शृंगारी चेत्कविः काव्येजातं रसमयं जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वभव तत् ॥

काव्य-कवि के अष्टविध भेदों में राजशेखर ने रसकवि का भी उल्लेख किया है राजशेखर की रस सम्बन्धी मान्यता का आधार भरत का नाट्यशास्त्र है । भरत के आधार पर नवम शताब्दी के आचार्य लोल्लट, शङ्कुक एवं भट्टनायक आदि ने रस की व्याख्या की थी । ये आचार्य राजशेखर के समकालीन थे । अतः स्वाभाविक था इन आचार्यों ने परस्पर एक दूसरों को प्रभावित किया हो ।

अलंकार-सम्प्रदाय तथा राजशेखर

अलंकार-सम्प्रदाय की ऐतिहासिक भूमिका : इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रतिनिधि भामह और उद्भट माने जाते हैं । ये आचार्य काव्य में रस की महत्ता से परिचित थे किन्तु उन्होंने काव्य में अलंकार का स्थान प्रमुख तथा रस को गौण माना ।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६ । २. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६ ।
३. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६ ।

इन्होंने रस का अन्तर्भाव रसवत् अलंकारों में किया । भामह का कथन है—'न कान्तमपि निर्भूषंविभाति वनितामुखम्"[1] रमणी का सुन्दर मुख भी आभूषण रहित होने पर शोभित नहीं होता वैसे ही अलंकार-विहीन काव्य रुचिकर नहीं माना जा सकता । यह वक्रोक्ति है, जो काव्यों में प्राणों का संचार करती है ।[2]

राजशेखर के समय तक अलंकार सम्प्रदाय का पूर्ण विकास हो चुका था । राजशेखर उसके महत्व से पूर्ण परिचित थे । यहाँ सम्प्रदाय के विषय में उनकी मान्यताओं का निर्देश किया जा रहा है ।

(१) 'उपकारकत्वादलंकारः सप्तमङ्गम् इति यायावरीयः ।"[3]
अलंकार शास्त्र वेदों के छै अंगों के समान उनका सातवाँ अंग है ।

(२) आनुप्रासिकं प्रचेताः, यमो यमकानि, चित्रं चित्रांगदः, शब्दश्लेषं शेषः वास्तवं पुलस्त्यः, औपम्यमौपकायनः, अतिशयं पाराशर; अर्थश्लेषमुतथ्यः ।[4]

अनुप्रास, यमक, चित्र शब्दश्लेष, वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा अर्थश्लेष क्रमशः प्रचेता, यम, चित्रांगद शेष पुलस्य, औपकायन, पाराशर तथा उतथ्य द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं ।

(३) अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलंकुर्वन्ति ।[5]
काव्य को अनुप्रास उपमा आदि अलंकार अलंकृत करते हैं ।

(४) काव्य-कवि की आठ श्रेणियाँ हैं । अलंकार-कवि उनमें से एक है । अलंकार के शब्द और अर्थ-भेद से द्विविध होने के कारण अलंकार-कवि भी दो प्रकार के होते हैं ।

(५) गुणदलंकृतश्च वाक्यमेव काव्यम्[6] —गुण और अलंकारों से युक्त वाक्य ही काव्य कहलाता है ।

वेद के शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः अंग हैं । राजशेखर ने अलंकार को सातवाँ वेदांग कहा है और काव्य में ही नहीं अपितु शास्त्र में भी इसकी अनिवार्यता सिद्ध की है । पूर्ववर्ती आचार्य भामह दण्डी, उद्भट और रुद्रट अलंकारों को महत्व देते हैं । उनके महत्व का क्षेत्र काव्य तक ही सीमित है ।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४६ सेषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते-यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽअलंकारोऽनया विना २।८५ । २. काव्यमीमांसा अ० २ पृ० ३ । ३. काव्यमीमांसा अ० १ पृ० १ । ४. काव्यमीमांसा अ० २ पृ० ३ । ५. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २४ । ६. (उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा काव्यस्येतेह्यलङ्काराश्चत्वारः परिकीर्तिताः—नाट्यशास्त्र १६ : ४३ ।

राजशेखर की दृष्टि काव्य पर ही जाकर नहीं रुकी। वे सम्पूर्ण वाङ्मय में अलंकार की प्रभुता को स्वीकार करते हैं। अलंकार क्षेत्र में उनकी यह मौलिक स्थापना है। नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चार अलंकारों का ही वर्णन है ।[1]

आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट चार अलंकारों में प्रथम तीन उपमा रूपक और दीपक अर्थालंकार की श्रेणी में आ सकते हैं । यमक शब्दालंकार है । भरत ने अलंकारों का शब्दालंकार और अर्थालंकार यह वर्गीकरण नहीं किया ।

आचार्य भामह ने अड़तीस अलंकारों का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने भी शब्द-मूलक एवं अर्थ-मूलक अलंकारों का विभाजन नहीं किया। वामन के ग्रन्थ में दो शब्दालंकारों तथा इकतीस अर्थालंकारों का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। दो इन्होंने अलंकारों को शब्द और अर्थ के भेद के अनुसार वर्गीकृत किया ।[2] पश्चात्वर्ती आलंकारिकों ने इनमें दो को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है ।

भट्ट, उद्भट ने अलंकारों की संख्या ४१ वतायी है । इन्होंने पुनरुक्त-वदाभास, काव्यलिङ्ग, छेकानुप्रास, दृष्टांत और संकर इन पाँच नवीन अलंकारों की स्थापना की । ये पाँचों अलंकार, भामह और दण्डी के ग्रन्थों में नहीं पाये जाते हैं ।

अलंकार क्षेत्र में रुद्रट का नाम महत्वपूर्ण है । पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा से हटकर इन्होंने वैज्ञानिक आधार पर अलंकारों का विभाजन करने का प्रयास किया है। इनके अलंकार के चार विभाजन-आधार हैं—वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष; जिनकी संख्या क्रमशः २३, २१, १२ और १० है। इन्होंने कतिपय अलंकारों को नवीन नाम दिया है । जैसे भामह वर्णित व्याज-स्तुति को व्याज श्लेष स्वभावोक्ति को जाति, और उदान्त को अवसर। रुद्रट ने कतिपय नवीन अलंकारों का भी निर्देश किया—वे हैं (१) मत, (२) साम्य, (३) पिहित और (४) भाव ।

कवि रहस्य नामक अधिकरण के प्रथम अध्याय में राजशेखर ने कुछ अलंकारों तथा उनके प्रतिपादनकर्त्ताओं के नाम दिये हैं । इस विषय में वे रुद्रट से अत्याधिक प्रभावित हैं । उन्होंने रुद्रट के वही नाम ज्यों के त्यों ले लिये हैं—जैसे वास्तव, औपम्य, अतिशय और अर्थश्लेष को राजशेखर ने भी वही नाम दिया है ।

१. तत्र शब्दालंकारौद्वो—४–१–०; ४–१–१–वामन काव्यालंकारसूत्र सम्प्रत्यर्थालंकाराणां प्रस्ताव ४–२–२ । २. वही ।

भरत से लेकर राजशेखर तक अलंकारों का विवेचन करने वाले आचार्यों में राजशेखर ही प्रथम हैं जिन्होंने अलंकारों के साथ उनके प्रतिपादनकर्त्ताओं का भी नामोल्लेख किया है।

रुद्रट ने वक्रोक्ति की गणना अलंकारों में की है। राजशेखर वक्रोक्ति को अलंकार मानने के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने उसे पाठ-धर्म के रूप में स्वीकार किया है।

अलंकार के महत्व के विषय में राजशेखर और उनके पूर्ववर्ती आचार्यों का मत समान है। भामह, दण्डी, वामन आदि के साथ राजशेखर भी अलंकारों को काव्य का मण्डन मानते हैं। काव्य-पुरुष के चित्रण में उन्होंने अनुप्रास, उपमा आदि को उसके अलंकरणों के स्थान पर ही रखा है।

शास्त्र संग्रह नामक अध्याय में उन्होंने श्लेष अलंकार के ही अर्थ-श्लेष और शब्द-श्लेष ये दो भेद माने हैं किंतु अलंकार कवि की परिभाषा देते समय उन्होंने शब्दालंकारिता और अर्थालंकारिता के विभाजन का समर्थन किया है।

काव्य के दो अनिवार्य तत्वों में एक तत्व अलंकार है, ऐसी उनकी मान्यता है।

राजशेखर एवं रीति-सम्प्रदाय

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में सुवर्णनाम को रीति-निर्णय का जनक माना है। काव्यमीमांसा का रीति-निर्णय अधिकरण अनुपलब्ध है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि इस अधिकरण की रचना राजशेखर ने की थी। उनका यह कथन कि "रीतयस्तु तिस्रस्तास्तु पुरस्तात् तथा वृत्तिरीतिस्वरूपं यथावसरं वक्ष्यामः" इस तथ्य की पुष्टि करता है।

काव्यमीमांसा में तीन रीतियों का उल्लेख मिलता है। वे हैं—वैदर्भी, गौड़ीया और पाञ्चाली। रीति-रूप वाक्य भी तीन प्रकार के होते हैं।[1] वामन ने भी रीतियों की संख्या तीन ही बतलायी है—वैदर्भी, गौड़ीया, और पाञ्चाली।[2] राजशेखर ने कर्पूरमंजरी में जिन रीतियों का नामोल्लेख किया है, वे हैं—वैदर्भी, मागधी और पाञ्चालिका। राजशेखर के पश्चात् भोज ने मागधी का नामोल्लेख खण्ड रीति में किया है।

---

१. काव्यमीमांसा अ० ७ पृ० ३१—तञ्च त्रिधा रीतित्रयभेदेन वैदर्भी गौड़ीया पाञ्चालीचेतरीतियस्तिस्त्रः।

२. काव्यालंकार सूत्र—वामन १:२:९—सात्रेधा वैदर्भी गौड़िया पाञ्चालीचेति'

बालरामायण में राजशेखर ने मैथिली रीति का भी उल्लेख किया है। इसकी विशेषता है, अर्थातिशयता (अर्थ चमत्कार) के साथ स्वाभाविकता एवं पूरे प्रबन्ध में सन्दर्भ तथा समास का अल्प प्रयोग और योग परम्परा के अनुरूप उक्ति।

यत्रार्थतिशयोऽपि सूत्रितजगन्मर्यादया मोदते
सन्दर्भश्चसमासमासनवदप्रस्तारविस्तारितः।
उक्तिर्योगपरम्परापरिचिता काव्येषु चक्षुष्मतां
सा रम्या नवचम्पकांगिभवतु त्वन्नेत्रयोः प्रीतये।[1]

राजशेखर द्वारा मैथिली रीति की उद्भावना सर्वथा नवीन है। राजशेखर के पश्चात् श्री पाद नामक लेखक ने इसका वर्णन किया है, यद्यपि उसने इसे मागधी का पर्याय माना है। केशव मिश्र ने, अलंकार-शेखर में श्रीपाद के मत का उल्लेख किया है, वहाँ मैथिली रीति वैदर्भी रीति के समान अल्प-समासवाली कही गयी है। इस प्रकार राजशेखर ने रीति के वैदर्भी, पाञ्चाली, गौड़ीया, मागधी, तथा मैथिली ये भेद माने हैं।

रीति का उद्भव : कहा जा चुका है कि काव्य-पुरुष की खोज में उनकी प्रियतमा साहित्य-विद्या-वधू चारों दिशाओं में जाती है। वह उसे आकर्षित करने के लिए विशेष स्थानों में विशिष्ट वेषभूषा धारण कर लेती है, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन शैली के वचन-विन्यास का भी आश्रय लेती है तथा मनोरंजन के लिये विविध विलासों का प्रदर्शन करती है। इस प्रकार साहित्य-संसार में प्रवृत्ति, रीति और वृत्ति का उद्भव होता है।

पूर्ववर्ती आचार्य भामह, दण्डी, रुद्रट, वामन तथा आनन्दवर्धन ने रीतितत्व को मान्यता दी है, किन्तु रीति का उद्भव किस प्रकार होता है इसकी चर्चा किसी ने भी नहीं की है। आचार्य भरत ने केवल, प्रवृत्ति तथा वृत्त का वर्णन किया है।[2] इनके मतानुसार पृथ्वी पर के नाना देशों के वेश, भाषा तथा आचार की व्याख्या का स्थापना करने वाली प्रवृत्ति होती हैं।

रीति के साथ प्रवृत्ति तथा वृत्ति के सामंजस्य के लिए राजशेखर भरत के ही ऋणी हैं। उन्होंने 'वचनविन्यासक्रमः रीतिः' अर्थात् वचन के विन्यास की शैली को रीति कहा है। यह परिभाषा पूर्ववर्ती आचार्य वामन की परिभाषा

---

१. बालरामायण—१०।९५।
२. नाट्यशास्त्र—पृथिव्यां नानादेश-वेषभाषाचारवार्ताः ख्यापयतीति प्रवृत्तिः

'पदरचना रीतिः' से भिन्न नहीं है। केवल शब्दों का अन्तर है। वचन का अर्थ है—शब्द या पद और विन्यास का अर्थ है रचना। काव्यपुरुष के रूपक में रीति का प्रसंग होने के कारण राजशेखर ने वाणी से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने पद के स्थान पर वचन और रचना की जगह विन्यास क्रम-शब्द रख दिये हैं।

आचार्य वामन के पूर्ववर्ती भामह और दण्डी ने भी रीति की चर्चा की है, परन्तु दोनों में से किसी ने भी रीति की परिभाषा नहीं दी। वामन ने काव्यालंकार-सूत्र में विशिष्ट पद-रचना को रीति कहा है।[1] विशिष्ट पद से उनका तात्पर्य गुणासम्पन्नता है। काव्यशोभाकारक धर्म को वे गुण कहते हैं। इस प्रकार के काव्य के शोभाकारक शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त पदरचना को रीति मानते हैं।

आनन्दवर्धन ने पद-संघटना को रीति नाम दिया है। पद संघटना वाक्य में पदों की स्थिति या क्रम को कहते हैं। वामन का पद-रचना और आनन्दवर्धन का संघटना शब्द दोनों पर्याय हैं। हाँ, दोनों के मान-दण्ड भिन्न हैं। आनन्दवर्धन के अनुसार रीति रसाश्रयी है। वामन के समक्ष कोई स्वतन्त्र मानदण्ड न था। अर्थगत और शब्दगत सौंदर्य को ही उन्होंने महत्वपूर्ण समझा।

रीति की परिभाषा में आचार्य कुन्तक ने एक क्रान्ति उपस्थित की। कवि के मानस पक्ष को महत्व देते हुए उन्होंने रीति को कविप्रस्थान हेतु कहा है। भोज के मतानुसार रीतिशब्द गत्यर्थकरीङ धातु से व्युत्पन्न हुआ है।[2] कुन्तक ने जिस कविगमन मार्ग को कविप्रस्थानहेतु कहा है, वही भोज के शब्दों में रीति है।

पूर्वाचार्यों द्वारा वर्णित तीन रीतियों के लिए मम्मट ने वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है "वृत्तिर्निथतवर्णगतो रस-विषयो वाक्य व्यापारः' अर्थात् रीति वर्ण-सुगम्फन का नाम है। उस में वर्ण नियत होते हैं और वे रस के सहायक होते हैं।

विश्वनाथ ने मम्मट के वर्ण-व्यापार के साथ-साथ पद-संघटना को महत्व दिया। पदों की संघटना का नाम रीति है जो अंगसंस्थान की भाँति[3] है।

रीति का मूल-तत्व : रीति के विषय में राजशेखर ने नवीन तत्वों की उद्भावना की है। उन्होंने समास के साथ-साथ अनुप्रास को रीति का मूल-तत्व माना

---

१. वामन—काव्यालंकारसूत्र—१:२:७ विशिष्ट पदरचनारीति (२) विशेष-गुणात्मा। १:२:८।

२. रञ्जताविति धातोःसा व्युत्पत्या रीतिरुच्यते।

३. पदसंघटनारीतिरंगसंस्था-विशेषवत्-उपकर्त्री रसादीनाम्।

है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीनों रीतियों के नये आधार-तत्व की भी कल्पना की है। यथा गौडीया समासवती, अनुप्रासवती, योगवृत्तिपरम्परागर्भा पाञ्चाली ईषदसमासा, ईषदनुप्रासा, उपचारगर्भा। वैदर्भी-स्थानानुप्रासवती-असमासा योग वृत्तिर्यमा—उनके मतानुसार गौड़ीया रीति में योगवृत्तिपरम्परा तथा समास और अनुप्रास का प्रचुर रूप में होना पाया जाता है। पाञ्चाली में उपचार-गर्भता तथा समास और अनुप्रास की अल्पता होती है। वैदर्भी में योगवृत्ति का सद्भाव, समास का अभाव और स्थानानुप्रास होता है।

भोज ने राजशेखर का अनुसरण किया है। उन्होंने रीति के मूलतत्वों में समास और गुण दोनों की गणना करते हुए राजशेखर के योगवृत्ति नामक आधारभेद को और व्यापक कर दिया है। पूर्ववर्ती आचार्यों में दण्डी ने गुणों को रीति का मूलतत्व माना है। वामन भी इसी मत के समर्थक हैं।

वामन के पश्चात् रुद्रट ने समास को रीति का मूलतत्व माना। उन्होंने पाञ्चाली को लघुसमासा, लाटीया को मध्यसमासा, गौड़ीया को दीर्घसमासा तथा वैदर्भी को असमासा कहकर रीति के मूल में समास को स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों को रीति के आन्तरिक तत्व और समास को वाह्य तत्व माना है।

ध्वनि-सम्प्रदाय तथा राजशेखर

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में ध्वनि-सम्प्रदाय का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया, तथापि उसके सिद्धांतों को यथास्थान उद्धृत किया है। उनके समय तक ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना हो चुकी थी।

काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में औक्तिक प्रकरण का उल्लेख है। संभवतः राजशेखर इस प्रकरण में ध्वनि-सम्प्रदाय सम्बन्धी अपना मन्तव्य प्रकट करना चाहते थे। उनकी सम्मति में औक्तिक प्रकरण के आद्याचार्य उक्ति-गर्भ थे।

राजशेखर ने कविरहस्य प्रकरण के पाँचवें अध्याय में प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विषय में आनन्दवर्धन के विचार लिये हैं। "प्रतिभाव्युत्पत्त्योः प्रतिभा श्रेयसी इत्यानन्दः।" अर्थहरण प्रकरण में—"महात्मनां हि संवादिन्यो बुद्धय एकमेवार्थमुपस्थापयन्ति, तत्परित्यागाय तानाद्रियेत इति च केचित्।" अर्थात् सूक्ष्मदर्शी महात्माओं की बुद्धि समान प्रकार की होती है। अतः उन्हें समान रूप से ही अर्थ-विशेष की प्रतीति होती है। इसलिए एक ही प्रकार के भाव

विशेषों का परित्याग करने एवं नवीन भावों की प्राप्ति के लिए दूसरों की रचनाओं का अवलोकन करना चाहिये । यहाँ उन्होंने आनन्दवर्धन की विचारधारा को 'केचित' शब्द द्वारा प्रस्तुत कर स्पष्ट रूप से उसे अस्वीकार किया है ।

राजशेखर ने अर्थहरण को आधार मानकर कवियों का जो विभाजन किया है, वह आनन्दवर्धन से पूर्णतः प्रभावित है ।

कवि-प्रभेद के प्रसंग में राजशेखर ने उक्ति-कवि का स्थान प्रमुख माना है तथा उक्ति वैचित्र्य की महत्ता काव्य में स्वीकार की है जो ध्वनि सम्प्रदाय के ही अनुकूल है ।

वक्रोक्ति-सिद्धान्त पर राजशेखर का प्रभाव

रुद्रट ने वक्रोक्ति को एक शब्दालंकार माना है । उन्होंने कहा है कि किसी वाक्य को सुनकर श्रोता उसके किसी शब्द को भिन्न अर्थ में ग्रहण कर जो अवांछित या अकल्पित उत्तर देता है वह वक्रोक्ति कहलाता है ।

आचार्य रुद्रट का मत है कि काकु भी वक्रोक्ति नाम का एक अलंकार है । इसका विरोध करते हुए राजशेखर अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं कि काकु एक साभिप्राय पठन धर्म अर्थात् पढ़ने का या बोलने का एक प्रकार है । वह अलंकार कैसे हो सकता है ?[1]

आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को अलंकार न मानकर उसे काव्य का मूल-तत्व माना है । उनकी वक्रोक्ति का लक्षण है—"वैदग्धीभङ्गी भणितिः"—अर्थात् किसी वस्तु का साधारण लौकिक प्रकार से भिन्न अलौकिक ढंग से कथन ही काव्य का जीवन है ।

कुंतक राजशेखर से अत्यधिक प्रभावित थे । उन्होंने अपने सिद्धांत की आधारशिला राजशेखर के "काव्यस्याप्येपजीवितम्" इस उक्ति को बतलाया है । अतः वक्रोक्ति सम्प्रदाय के जनक यद्यपि कुंतक माने जाते हैं तथापि इस सम्प्रदाय का बीज राजशेखर के 'काव्यस्याप्येपजीवितम्' में मानना अनुचित न होगा । राजशेखर ने काव्य में भणितिगुण को ही महत्व दिया है । उन्होंने आलोचक वर्ग से याचना की है कि यद्यपि मेरी बालरामायण रचना सदोष है तथापि काव्य-श्रेणी में स्थापित्त होने के लिये आवश्यक भणितिगुण का उसमें

---

१. काव्यमीमांसा अ० ७ पृ० ३१—काकुर्वक्रोक्तिर्नामशब्दाऽलंकारोऽयम्' इति रुद्रटः ।। 'अभिप्रायवान्पाठधर्मः काकुः स कथमलंकारः स्यात् ? इति यायावरीयः ।

प्राचुर्य है । अतः इस भणिति को कसौटी मानकर ही वे इस रचना का मूल्यांकन करें ।

राजशेखर का वक्रोक्ति क्षेत्र आचार्य कुंतक की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है । उन्होंने वक्रोक्ति का साम्राज्य विस्तार, लोक, काव्य और शास्त्र तीनों में माना है, जबकि आचार्य कुंतक वक्रोक्ति को काव्य तक ही सीमित रख पाये हैं ।

साहित्य-शास्त्र को राजशेखर की देन

संस्कृत साहित्य-शास्त्र के विकास के कई सोपान हैं । समय-समय पर इस शास्त्र को विभिन्न नाम दिये गये । आरम्भ में काव्य-सौंदर्य की परख करने वाले इस शास्त्र को काव्य-शास्त्र कहा गया । भामह, रुद्रट, उद्भट, वामन आदि के कथन इसके साक्षी हैं । दूसरे चरण में काव्य-शास्त्र का नाम पड़ा अलंकार-शास्त्र । अलंकारों का प्राधान्य इस नामकरण के मूल में था । तीसरी अवस्था में यह शास्त्र काव्यशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ । इसी युग के पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह, वामन, रुद्रट आदि ने काव्य को शब्दार्थमय स्वीकार किया था । किन्तु किसी ने साहित्य शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थों में नहीं किया । वर्तमान अर्थ में साहित्य शब्द का प्रथम प्रयोग काव्यमीमांसा में मिलता है ।

प्राचीन आचार्यों ने चार विद्याएँ मुख्य बताई हैं---आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति । राजशेखर की स्थापना है कि इन चारों विद्याओं का निष्यन्द-सार होने के कारण साहित्य पञ्चमी-विद्या है । "पञ्चमी साहित्य विद्या । साहिचतसृणामपि विद्यानां निष्यन्दः ।" शब्दार्थयोर्यथावत् सहभावेन विद्या साहित्यविद्या । साहित्यविद्या में शब्द और अर्थ का यथार्थ रूप में समन्वय होता है ।

काव्यपुरुष की उत्पत्ति के विषय में रोचक आख्यात प्रस्तुत करते हुए उन्होंने काव्य और साहित्य विद्या का मंजुल सामंजस्य व्यक्त किया है । परवर्ती साहित्यकारों ने आचार्य की इस स्थापना को पैतृक निधि के रूप में ग्रहण किया । इनकी मौलिकता का दूसरा उदाहरण है, साहित्य-शास्त्र के उद्गम की गवेषणा । इन्होंने बतलाया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने इस काव्य-विद्या का उपदेश परमेष्ठि वैकुण्ठादि चौंसठ शिष्यों को किया था । उनमें से प्रथम शिष्य स्वयंभू-ब्रह्मदेव ने इस विद्या का दूसरी बार उपदेश अयोनिज ऋषि को दिया । इन शिष्यों में सरस्वती का पुत्र 'काव्य-पुरुष' भी था । ब्रह्मदेव ने उसे भूःभुवः और स्वः तीनों

लोकों में रहने वाली प्रजा को काव्य-विद्योपदेश देने का आदेश दिया। काव्यपुरुष ने इसका सर्वप्रथम उपदेश सहस्राक्षादि दिव्य काव्य-विद्या-स्नातकों को किया। प्रत्येक शिष्य ने अठारह भागों में से एक एक विषय पर विशेषता प्राप्त करके पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की। यह आख्यायिका पौराणिक शैली की जान पड़ती है। परन्तु इस प्रकार का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

काव्यपुरुष का अवतरण

ऋग्वेद में वेद-पुरुष का वर्णन मिलता है। वेद अपौरुषेय माने गये हैं। अतः वेद-पुरुष भी दिव्य है। साहित्यशास्त्र में काव्य का लक्षण निर्धारित करते हुए आचार्य दण्डी ने शब्द और अर्थ दोनों के संयोग को ही काव्य का शरीर माना है। आचार्य भामह के 'शब्दार्थौ' से विदित होता है कि वे शब्द को काव्यशरीर मानते हैं। आचार्य वामन ने शरीर की ओर दुर्लक्ष्य करके काव्य के आत्मतत्व की खोज की। आचार्य आनन्दवर्धन ने इस दिशा में वामन के पथ का अनुसरण किया। अन्तर इतना ही है वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा, आनन्द ने ध्वनि को काव्य का जीवनविधायक तत्व माना। इस प्रकार आचार्य भामह से आनन्दवर्धन तक काव्य-शास्त्र में काव्य के शरीर तथा आत्मा-तत्व की स्थापना हो चुकी थी। साहित्य क्षेत्र में काव्यपुरुष की कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय राजशेखर को ही है। उनके मत में काव्यपुरुष का शब्दार्थ शरीर है, संस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, अपभ्रंश जंघा, पैशाच पैर तथा मिश्र भाषा उसका उर है। उसका स्वभाव सम, प्रसन्न, मधुर, उदार तथा ओज आदि-गुणों से युक्त है। उक्ति वैशिष्ठ्य उसके रोम हैं। उसकी वाक्क्रीड़ा में प्रश्नोत्तर एवं प्रवह्लिकादिक हैं। अनुप्रासादिक उसके अलंकार हैं तथा रस उसकी आत्मा है। काव्यपुरुष का ऐसा चित्र साहित्य के क्षेत्र में सर्व-प्रथम राजशेखर ने ही उपस्थित किया। यह उनकी मौलिकता का प्रमाण है।

रीति-वृत्ति प्रवृत्ति का सामञ्जस्य

आचार्य भरत ने वृत्ति और प्रवृत्ति का नाट्य की दृष्टि से विवेचन किया है। भामह, वामन, दण्डी, आनन्दवर्धन, रुद्रट आदि ने अपनी अपनी दृष्टि से रीति का विवेचन साहित्यशास्त्र के सन्दर्भ में किया है। परन्तु राजशेखर ही वे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने प्रवृत्ति का सामंजस्य किया।

भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में रीति की चर्चा की है। वामन और आनन्दवर्धन ने रीति का लक्षण निरुपित किया है किन्तु रीति के उद्गम का

विस्तृत विवेचन केवल यायावरीय ने ही किया है । काव्यपुरुष को आकर्षित करने के लिये साहित्यविद्या-वधू ने जिस वचन, वेश और विलास का आश्रय लिया वे वचन, वेश और विलास क्रमशः रीति, प्रवृत्ति और वृत्ति नाम से साहित्य जगत में प्रसिद्ध हुए । यायावरीय की यह उद्‌भावना काव्यशास्त्र के इतिहास में सर्वथा नवीन है ।

राजशेखर की रीति-संवन्धी एक और मान्यता है । भरत, भामह, वाण और दण्डी के संकेतों से स्पष्ट है कि आरंभ में प्रवृत्तियों या रीतियों का वर्गीकरण प्रदेशानुसार ही हुआ था । इस प्रादेशिक विभाजन से राजशेखर भी पूर्ण सहमत थे । इन्होंने प्रदेशों की सीमा-रेखा और भी स्पष्ट कर दी है ।

गौडी रीति का क्षेत्र, अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, व्रह्म, पुण्ड्र आदि देशों तक विस्तृत है । पाञ्चाल, शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, वाह्लीक, वाह्लवेय आदि जनपद पाञ्चाली के क्रीड़ाक्षेत्र हैं । मलय, कुन्तल, केरल, पाक्त, मञ्जर, महाराष्ट्र, गंगा, कलिग आदि जनपद वैदर्भी के कार्यक्षेत्र हैं ।

रीति निरूपण में समास के साथ अनुप्रास तथा योगवृत्ति, उपचार-योग-वृत्ति परम्परा को रीति का आधार मानना उनकी निजी कल्पना है ।

पञ्चदशं काव्यं विद्यास्थानम् ।
उपकारकत्वाद लंकारः सप्तमङ्गम्'

साहित्य क्षेत्र में काव्य को पन्द्रहवीं विद्या का स्थान, अलंकार को सप्तम, वेदांङ्ग का तथा साहित्य को पञ्चमी विद्या का स्थान देने का प्रशंसनीय कार्य राज शेखर द्वारा ही प्रथमतः किया गया है। काव्य की महनीयता से प्रायः सभी आचार्य सहमत हैं किन्तु केवल राजशेखर ने ही 'पञ्चदशं' काव्यम् विद्यास्थानम्' कहा है।

अलंकारों को भामह, वामन, दण्डी, रुद्रट आदि ने काव्य को शोभाप्रदान करने वाले तत्व माना है । राजशेखर भी अलंकारों को काव्य के शोभाकारण धर्म मानते हैं । अलंकार-शास्त्र का उद्‌गम उसका नामकरण तथा उस शास्त्र का समुचित स्थान निर्धारित करने का कार्य राजशेखर ने किया । वास्तव में किसी आचार्य ने इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न नहीं किया । 'अलंकारः सप्तमङ्गम्' इस स्थापना में अलंकार का अर्थ अलंकार शास्त्र है । जिसके विना वेदार्थ भी विनष्ट हो जाता है । अतः शास्त्रों का भी उपकारी होने के कारण उन्होंने अलंकार-शास्त्र को षड्‌वेदांगों के पश्चात् सातवें वेदाङ्ग का स्थान दिया ।

अलंकार क्षेत्र में मौलिकता

अलंकार क्षेत्र में उक्त नवीनताओं के अतिरिक्त कतिपय मौलिकतायें भी आचार्य राजशेखर ने दी हैं—जैसे

वक्रोक्ति : आद्याचार्य भामह ने वक्रोक्ति अलंकार को अलंकारों का जीवन विधायक तत्व माना है। वे ऐसे अलंकार की कल्पना ही नहीं कर सकते जो वक्रोक्ति से रहित हो। आचार्य दण्डी ने भी समस्त वाङ्मय को दो भागों में बांटा है—स्वभावोक्ति तथा वक्रोक्ति। उनके अनुसार अतिशय कथन वक्रोक्ति का मूल है। उसमें श्लेष की विद्यमानता उसे और भी निखार देती है। भामह की वक्रोक्ति का क्षेत्र व्यापक है। दण्डी ने उसे भामह की तुलना में संकुचित किन्तु विशिष्ट स्थान दिया है। आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को अर्थालंकार कहा है। उनके मत से वक्रोक्ति सादृश्य के ऊपर आश्रित होने वाली लक्षणा है। लक्षणा के अनेक आधार हो सकते हैं। परन्तु सादृश्य के आधार पर होने वाली लक्षणा वक्रोक्ति कही जा सकती है। आचार्य रुद्रट के समय में यह शब्दालंकार बन गई। रुद्रट कहते हैं—काकुवक्रोक्तिर्नामशब्दाऽलंकारोयम्' वक्रोक्ति शब्दालंकार है, जिसे काकु कहते हैं—

'अभिप्रायवान्पाठधर्मः काकुः स कथमलंकारः स्यात्।'

राजशेखर के इस वाक्य में वक्रोक्ति सम्प्रदाय का बीज निहित है। वे कहते हैं—'साभिप्राय पठन' अर्थात् पढ़ने का या बोलने का प्रकार काकु है। वह अलंकार कैसे हो सकता है? आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति सम्प्रदाय के जनक माने जाते हैं उन्होंने वक्रोक्ति को 'वैदग्धी-भंगी भणितिः' अर्थात् कहने का लौकिक प्रकार से भिन्न ढंग कहा है। निःसंदेह लगभग एक शताब्दी पश्चात् वक्रोक्ति को काव्य का मूलतत्व मानने वाले आचार्य कुन्तक ने राजशेखर के इन्हीं वचनों का दोहराया है, किसी नवीन विचार की उद्भावना नहीं की। साहित्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय की नींव डालने का महत्व कार्य राजशेखर ने ही किया था।

श्लेष-यमक : भरत, भामह, दण्डी, वामन आदि सभी आचार्यों ने यमक अलंकार का निरूपण किया है। रुद्रट ने ५८ श्लोकों में यमक का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने श्लेष के भी आठ प्रकार बताये हैं, किन्तु उनके पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी साहित्यकार ने हरण की दृष्टि से श्लेष तथा यमक अलंकारों का वर्णन नहीं किया। राजशेखर ने शब्दहरण प्रकरण में श्लेषयुक्त पूरे एक पद का यमक अलंकारों द्वारा हरण तथा यमकालंकार का यमक द्वारा

हरण एवं श्लेष का श्लेष द्वारा ही हरण करने का उदाहरण देकर अलंकारों की दिशा में नवीनता का सृजन किया है ।

वाङ्मय-विभाजन : प्राच्य और पाश्चात्य दोनों श्रेणियों के ही विद्वानों ने साहित्य को कई भागों में बाँटने की चेष्टा की है । आचार्य दण्डी ने वाङ्मय को स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में विभक्त किया है । किन्तु उनका दृष्टिकोण सीमित है । भारत में इस प्रकार का प्रयत्न सबसे पहले राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमांसा में किया है । साहित्य को उन्होंने दो भागों में विभिक्त किया है—

'शास्त्रं काव्यं चेति वाङ्मयं द्विधा'

वाङ्मय या साहित्य शास्त्र और काव्य भेद से दो प्रकार का होता है । साहित्य का यह विभाजन अंग्रेज विद्वान डिक्विन्सी से मिलता है जिसने साहित्य को ज्ञान और शक्ति के रूप में विभक्त किया है ।

राजशेखर ने केवल शास्त्र और काव्य का ही उल्लेख नहीं किया । उन्होंने समग्र शास्त्रों का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूप में वर्णन किया है, जो इतर साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता ।

काव्यस्रोतों में मौलिकता : पूर्ववर्ती आचार्यों ने काव्यवस्तु के स्रोतों का वर्णन किया है । राजशेखर भरत, भामह, रुद्रट आदि द्वारा वर्णित काव्यार्थों से पूर्णतया सहमत हैं, किन्तु इन बारह काव्यार्थों[1] के अतिरिक्त उन्होंने स्वप्रतिभाजन्य अन्य चार काव्यार्थों की भी कल्पना की है । वे हैं उचित संयोग, योक्तृ-संयोग, उत्पाद्यसंयोग और संयोग-विकार ।

आचार्य द्रौहिणि ने काव्यार्थ की व्यापकता को परिमित करने का प्रयास किया है । उन्होंने कथानक के पात्रों का दिव्य, दिव्यमानुष और मानुष होना बतलाया है । पश्चात् आचार्य राजशेखर ने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया । उन्होंने इन तीन भेदों के अतिरिक्त पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय, और दिव्यमर्त्यपातालीय भेदों का वर्णन कर अर्थव्याप्ति की सीमा विस्तृत कर दी है । पूर्ववर्ती आचार्य उद्भट ने अर्थराशि को विचारितसुस्थ और अविचारित-रमणीय विभागों में रखा है । अविचारित रमणीय कविकल्पित होता है उससे वास्तविकता कोसों दूर रहती है । राजशेखर इससे असहमत हैं । उन्होंने

---

१. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ३५—"श्रुतिः स्मृतिः इतिहास : पुराणं प्रमाणविद्या राजसिद्धान्तत्रयी लोको विरचना प्रकीर्णकं च काव्यार्थानां द्वादश योनयः" इति आचार्यः ।

उद्भट की समस्या का निराकरण किया। उनके मतानुसार कवि वैज्ञानिक वस्तु की वास्तविकता को प्रतिभा के पुट से लोक-रंजना में परिवर्तित करता है। शास्त्र विश्लेषणात्मक होते हैं, काव्य संश्लेषणात्मक। राजशेखर का यह मन्तव्य आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों को सर्वथा मान्य है।

कवि कर्म ही काव्य कहलाता है। अलंकार शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय काव्य ही है। कवि का जितना विस्तृत विवेचन राजशेखर ने किया है उतना किसी पूर्ववर्ती या परवर्ती आचार्य ने नहीं। आचार्य वामन ने अरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी कवियों के ये दो भेद गिनाये हैं, किन्तु राजशेखर ने भिन्न-भिन्न आधारों को लेकर कवियों के २७ भेद बतलाये हैं। ये उनकी सूक्ष्म विचार शक्ति के परिचायक हैं। अवस्थाजन्य कविश्रेणी भी साहित्य क्षेत्र में नवीन हैं।

कवि-शिक्षा : भामह से राजशेखर पर्यन्त आलंकारिकों ने काव्य-विषय का मंथन किया है, किन्तु कवि के मानसिक पक्ष की ओर किसी भी दृष्टि नहीं गई। राजशेखर अलंकार क्षेत्र में प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने काव्यमीमांसा में कवि शिक्षा विषयक तत्वों के बीज का वपन किया। परवर्ती आचार्यों के लिये यह धरोहर स्वरूप है। कवि-शिक्षा सम्प्रदाय के जनक के रूप में राजशेखर काव्य-जगत में अमर रहेंगे। कवि-शिक्षा के अन्तर्गत जिन तत्वों का प्रथमावतार राजशेखर ने किया है वे हैं :—

, (१) कविचर्या (२) काव्यगोष्ठी (३) कवि-सम्मेलन (४) काव्य पाठ (५) अनुहरण (५) कवि-समय।

वात्स्यायन ने कामसूत्र में "नागरक-वृत्ति" शीर्षक के अन्तर्गत नागरिकों के रहन-सहन, निवास-स्थान एवं क्रमबद्ध दिनचर्या का सुविस्तृत विवेचन किया है। साहित्यशास्त्र में हमें ऐसा वर्णन कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। राजशेखर ही प्रथम आचार्य है, जिन्होंने वात्स्यायन की नागरिकचर्या को सामने रखकर कवि-चर्या पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

काव्यगोष्ठी की उद्भावना साहित्य क्षेत्र में नूतन नहीं है किन्तु राजशेखर की लेखनी ने उसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। राजा के सभापतित्व में काव्यगोष्ठी की आयोजना परिकल्पित करके उन्होंने उसे सम्मान प्रदान करने की प्रेरणा दी है। राजा के नेतृत्व में आयोजित कवि-सम्मेलन सामान्य सभा-मण्डप में नहीं हो सकता। अतः उस सम्मेलन के लिये उन्होंने विशिष्ट मण्डप की रचना का निर्देश दिया है। इस कवि-भवन में सोलह खम्भे चार दरवाजे और आठ मत्तवारणी हैं। उस के बीच में एक हाथ ऊँची चार खम्भों वाली एक मणि-वेदिका बनायी

जाय। इस मणिवेदिका पर राजा का सिंहासन हो। राजा के चारों ओर भिन्न-भिन्न भाषाओं के गुणी तथा कविजन बैठें। राजा के उत्तर की ओर संस्कृत भाषी पूर्व की ओर प्राकृतभाषी, पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषी तथा दक्षिण की ओर पैशाची-भाषी कवि बैठें। ऐसी सजी हुई सभा में बैठकर राजा काव्य-गोष्ठी का सभापतित्व करें।

महर्षि पाणिनि ने वर्णों के उच्चारण की विधि बतलाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार व्याघ्री अपने पुत्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने दाँतों से दबाकर लेजाती है और दाँतों से उन्हें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुंचाती क्योंकि वह डरती है कि कहीं बच्चे मर न जायें या दाँत उनमें चुभ न जायें। उसी प्रकार वर्णों के उच्चारण करने वालों को भी सावधान होना चाहिये कि कहीं वर्ण उसके मुँह से गिर न जाय और कहीं कोई वर्ण मुँह के भीतर ही रहकर अनुच्चरित न रह जाय। इसी को आधार मानकर राजशेखर ने कवि रहस्य अधिकरण में काव्य पाठ के चार भेद बतलाये हैं—

गभीरत्वमनैश्वर्यंनिर्व्यूढ़िस्तारमन्द्रयो :
संयुक्तवर्णलावण्यमिति पाठगुणाःस्मृताः।
विभक्तयःस्फुटायत्र, समासाश्च कदर्थिताः।
अम्लानःपदसन्धिश्च तत्र पाठःप्रतिष्ठितः॥
न व्यस्तपदयोरैक्यं न भिदां तु समस्तयोः।
न चाख्यात पदम्लानिं विदधीत सुधीःपठन्।

अर्थात् गम्भीरता, सस्वरता, ऊँच नीच स्वर का निर्वाह और संयुक्त वर्णों के पढ़ने में विशेष सुन्दरता ये पाठकों के गुण माने गये हैं। सुन्दर पाठ वह है जिसमें विभक्तियाँ स्पष्ट हों, समास भी स्पष्ट हो और पदो की संधि भी स्पष्ट हो। बुद्धिवान् को पाठ करते समय न तो व्यक्त पदों को मिलाना चाहिये और न समस्त पदों को अलग करना चाहिये। आख्यान पदों को भी विकृत या मलिन नहीं करना चाहिये। यही उनकी पाठ प्रतिष्ठा का आधार है।

वाराणसी, मगध, गौड़, कर्नाट, द्रविड़, लाट, सुराष्ट्र, त्रवण, कश्मीर और पाञ्चाल जनपद के काव्य पाठ की प्रणाली का वर्णन उनकी अपूर्व देन है। सर्वप्रथम राजशेखर ने ही रीति के बदले प्रान्तीय प्रणाली के आधार पर काव्य पाठ का वर्णन किया है। उन्होंने प्रायः सभी प्रान्तों की कवि-पाठ प्रणाली का उल्लेख किया है।

अनुहरण

सर्वप्रथम आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में अनुहरणकी एक झलक मिलती है। किन्तु इसका विस्तृत तथा विशिष्ट अनुशीलन राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में किया है। पूर्वकथित निह्नुतयोनि के दूसरे भेद परपुरप्रवेश एवं उसके आठ भेदो की उद्भावना राजशेखर की अपनी है। अनुहरण विषयक कवि की धारणायें साहित्य-जगत में नूतन ही हैं।

कवि-समय : आचार्य वामन ने काव्यालंकार सूत्र में प्रायोगिक नामक पञ्चम अधिकरण में काव्य-समय का उल्लेख किया है, जिसमें व्याकरण-नियमों की रूपरेखा दी गयी है यद्यपि काव्य में तो कवि-समय का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग हुआ, किन्तु काव्य-शास्त्र में कवि-समय का विवेचन प्रथमतः आचार्य, राजशेखर ने किया है।

आलोचक भेद : पूर्ववर्ती आचार्य मंगल ने आलोचक के दो प्रकार बताये हैं— अरोचकी और सतृणाभ्यवहारी। आचार्य मंगल के इन कथन-प्रकारों से सहमत होते हुए आलोचक के दो अन्य प्रकार भी राजशेखर ने माने हैं। वे हैं–तत्वाभिनिवेशी एवं मत्सरी। इस प्रकार आचार्य मंगल के विभाजन को राजशेखर ने मनो-विज्ञान का पुट देकर व्यावहारिकता के समीप लाने का प्रयास किया है।

काव्य-पाक : काव्य-पाक के क्षेत्र में आचार्य भामह एवं वामन का नाम उल्लेखनीय है,किन्तु इन आचार्यों ने काव्य-पाक को दो भेदों तक सीमित कर दिया। आचार्य राजशेखर ने इसका परिवर्धन किया तथा काव्य-पाक को नौ भेदों में विभाजित किया। इस प्रकार राजशेखर ने वर्तमान भारतीय समीक्षा का वास्तविक सूत्रपात्र किया।

काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में औपनिषदिक एवं वैनोदिक ये दोनों प्रकरण अत्यन्त नवीन हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में औपनिषदिक प्रकरण मिलता है। राजशेखर औपनिषदिक कवि से सम्बन्धित जानकारी इस प्रकरण में देना चाहते होंगे। उनके कथन से लगता है कि वे इस प्रकरण में कलाओं का वर्णन भी करना चाहते थे।

काव्यमीमांसा ऐसा ग्रन्थ है जिसमें पूर्ववर्ती ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के केवल नामों का नहीं, अपितु सिद्धान्तों का भी उल्लेख मिलता है। ज्ञात आचार्यों में रुद्रट, आनन्द, उद्भट के अनुयायी, वामन के अनुयायी (वामनीया) अवन्तिसुन्दरी, अपराजित, कालिदास, द्रौहिणि एवं पाल्यकीर्ति की गणना की जा सकती है।

मंगल, श्यामदेव और सुरानन्द आदि अज्ञात आचार्यों का उल्लेख राजशेखर ने पहली बार किया। उन्होंने जहाँ पूर्ववर्ती आचार्यों की उद्भावनाओं का उपयोग

किया है वहाँ अपनी मौलिकता की भी छाप लगा दी है। उन्होंने कभी भी पूर्ववर्तियों की पुनरावृत्ति नहीं की। जिस विषय पर उन्हें कोई मौलिक बात नहीं कहनी होती है, उसे वे छोड़ देते हैं।

उनकी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रूपरेखा में आमूल परिवर्तन। अब तक के ग्रन्थों में अलंकार शास्त्र के किसी एक विषय पर विशेष रूप से बल दिया जाता था किन्तु इस काव्यमीमांसा में सभी विषयों का सामञ्जस्य करने का प्रयास किया गया है। समन्वयवादी ग्रन्थ-रचना की परिपाटी राजशेखर ने ही आरम्भ की।

संस्कृत आलंकारिक काव्य के तात्विक सिद्धान्तों से परिचित थे किन्तु उन्हें व्यावहारिक शिक्षा देने का श्लाघनीयकार्य राजशेखर ने किया है। अपनी मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा राजशेखर युग-प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। उनकी ये उद्भावनायें साहित्य जगत में प्रकाश-स्तम्भ की भाँति आचार्यों एवं कवियों का मार्गदर्शन करती रहेंगी।

खण्ड ४

राजशेखर-कालीन भारत

"पूर्वापरयोः समुद्रयोर्हिमवद्विन्ध्ययोश्चान्तरमार्यावर्तः।
तस्मिंश्चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यं च। तन्मूलश्च सदाचारः॥"

राजशेखर-कालीन भारत

राजशेखर ने भारतवर्ष को उत्तरापथ, दक्षिणापथ, पूर्वदेश, पश्चाद्देश और मध्यदेश इन पाँच खण्डों में विभक्त कर तत्कालीन भारत की समग्र झाँकी प्रस्तुत की है, जो संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपूर्व है। उनके इस विभाजन का केन्द्र-विन्दु कान्यकुब्ज था।

भौगोलिक सीमाएँ

उत्तरापथ : महोदय केन्द्र में था। पृथूदक से आगे शक, केकय, वोक्काण हूण, वाणायुज, काम्वोज, वाह्लीक, वह्लव, लिम्पाक, कुलूत, कीर, तंगण, तुषार, तुरुष्क, वर्वर, हरहूरव, हूहुक, सहुड़, हंसमार्ग, रमठ और करकण्ठ जनपद उत्तरापथ खण्ड का निर्माण करते थे।

पूर्वदेश : वाराणसी से आगे के अंग, वंग, कलिंग, कोसल, तोसल, उत्कल मगध, मुद्गर, विदेह, नेपाल, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, ताम्रलिप्तक, मलद, मल्लावर्तक, सुह्म और ब्रह्मोत्तर आदि जनपद पूर्वदेश के अन्तर्गत आते थे।

पश्चाद्देश : देवसभा से आगे, देवसभ, सुराष्ट्र, दशेरक, त्रवण, भृगुकच्छ, कच्छीय, आनर्त, अर्बुद, ब्राह्मणवाह और यवन प्रदेश पश्चाद्देश कहलाते थे।

दक्षिणापथ : माहिष्मती से आगे दक्षिणापथ का भू-भाग प्रारम्भ हो जाता था। महाराष्ट्र, माहिषक, अश्मक, विदर्भ, कुन्तल, क्रथकैशिक, सूर्पारक, कांची, केरल कावेर, मुरल, वनवासक, सिंहल, चोड़, दण्डक, पाण्ड्य, पल्लव, गाङ्ग, नासिक्य, कोंकण, कोल्लगिरि, वल्लूर, आदि जनपद दक्षिणापथ के अंग थे।

मध्यदेश : इन चार खण्डों के मध्य का देश "मध्यदेश" कहलाता था। राजशेखर ने मध्यदेश के जनपदों, पर्वतों, नदियों और उपज के अतिप्रसिद्ध होने के कारण उनकी नामावली नहीं दी है। उन्होंने मनु द्वारा निर्दिष्ट सीमारेखा को मान्यता दी है, जिसके अनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में विनशन से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम का भू-भाग मध्यदेश कहलाता था।

नदियाँ : राजशेखर के मतानुसार उत्तरापथ की प्रमुख नदियाँ गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, कुहू और देविका थीं। पूर्व देश की गंगा और करतोया थीं। पश्चादेश की सरस्वती, श्वभ्रवती, वार्तघ्नी, मही और हिडिम्वा एवं दक्षिणापथ की नर्मदा, तापी पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भीमरथी, वेणा, कृष्णावेणा, वंजुरा, तुंगभद्रा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती और रावणगंगा थीं।

पर्वत : उत्तरापथ में हिमालय, कलिन्द, इन्द्रकील, चन्द्राचल, पूर्वदेश में वृहद्गुरु, लोहितगिरि, चकोर, दर्दुर, नेपाल और कामरूप, पश्चाद्देश में गोवर्धन, गिरिनगर, देवसभ, माल्यशिखर, अर्वुद तथा दक्षिणापथ में विन्ध्य-दक्षिणपाद, महेन्द्र,मलय, मेकल, पाल, मंजर, सह्य और श्रीपर्वत थे।

इन जंनपदों, कतिपय नदियों और कुछ पर्वतों के आधुनिक नाम निम्न हैं:—

उत्तरापथ :

शक—भारत के सीमान्त के पास का सीदिया क्षेत्र।
केकय—झेलम और व्यास नदी के मध्य-भू-भाग में स्थित जलालपुर।
हूण—रशिया के आसपास का प्रदेश।
वाणायुज—अरव प्रदेश।
काम्बोज—हिमालय का रामपुर।
वाल्हीक—बलख।
वल्लव—पंजाव का वाहीक प्रदेश (पूर्वी पंजाव)
लिंपाक—लघमन।
कुलूत—कांगड़ा जिले का कुलू प्रदेश।
कीर—पंजाव का कीर ग्राम।
तंगण—गढ़वाल जिले का तंगणपुर।
तुषार—वलख और वदख्शाँ प्रदेश।
तुरुष्क—तुर्किस्तान का पूर्वी-भाग।
वर्वर—वलूचिस्तान का उत्तर प्रदेश।
हरहूरव—सिन्धु और झेलम के मध्य का प्रदेश।
हुहूक—काश्मीर का हुष्कपुर।
सहुड़—सब्जकोह और सब्ज-वाजार के पास का प्रदेश।
रमठ—रोमक पर्वत के पास का प्रदेश।

पूर्वदेश :

अंग—भागलपुर, मुंगेर जिलों के आसपास का प्रदेश।
कलिंग—उड़ीसा से विज़गापट्टम तक का प्रदेश।
तोसल—पुरी जिले का धौली प्रदेश।
मगध—आधुनिक पटना और गया।
विदेह—तिरहुत।
पुण्ड्र—बौगरा जिले का महा स्थान।
ताम्रलिप्तक—दक्षिणी पश्चिमी बंगाल का तमलुक प्रदेश।
मल्लवर्तक—बिहार के हजारीबाग और मानभूमि जिलों का भाग।
ब्रह्मोत्तर—बर्मा के आस-पास का प्रदेश।
हंसमार्ग—उत्तरी-पश्चिमी आसाम का हम्ज़ा प्रदेश।
करकण्ठ—बन्नू जिले का कारापथ प्रदेश।
बंग—बंगाल।
कोसल—रायपुर, बिलासपुर और सम्बलपुर।
उत्कल—मिदनापुर जिले का पश्चिम भाग।
मुद्गर—मुंगेर।
नैपाल—नैपाल।
प्राग्ज्योतिष-गोहाटी
मलद—शाहाबाद।

पश्चाद्देश :

देवसभा—देवास।
सुराष्ट्र—दक्षिण काठियावाड़।
दशेरक—राजपूताने का मारवाड़ प्रदेश।
भृगुकच्छ—भड़ोंच।
कच्छीय—कच्छ की खाड़ी के आसपास का प्रदेश।
आनर्त—द्वारका के आसपास का प्रदेश।
अर्बुद—आबू पर्वत के आसपास का प्रदेश।
ब्राह्मणवाह—सिन्धु के पूर्वतट का प्रदेश।
यवन—भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा से मिला प्रदेश।

दक्षिणापथ :

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र।

माहिषक—माहेश्वर या मान्धाता।
अश्मक—निजामाबाद का बोधन प्रदेश।
विदर्भ—बरार।
कुन्तल—कनारा जिले का उत्तरी भाग।
सूर्पारक—केरल से अपरान्तक का भाग।
कांची—कांजीवरम्
केरल—केरल (मालाबार ट्रावणकोर और कोचीन प्रदेश)।
कावेर—कावेरी नदी के पास का प्रदेश।
मुरल—मुरला नदी के समीप का प्रदेश।
वानवासक—उत्तर कनारा का वनवासी प्रदेश।
सिंहल—सिलोन।
चोल—तंजोर और त्रिचनापल्ली के आसपास का प्रदेश।
दण्डक—डिण्डीवन।
पाण्ड्य—मदुरा, तिनावेली जिलों एवं रामनद, त्रावणकोर कोचीन राज्यों का भाग।
पल्लव—कांची के चारों ओर का भाग।
गांग—कांगो प्रदेश।
नासिक्य—नासिक।
कोंकण—परशुराम क्षेत्र कोंकन।
कोल्लगिरि—कोल्हापुर।
वल्लर—वेंकटगिरी, चित्तूर, वैल्लोरी प्रदेश।

नदियाँ—जिन नदियों के नाम बदल गये हैं वे नदियाँ और उनके आधुनिक नाम निम्नलिखित हैं—

शतद्रु—सतलज।
विपाशा—व्यास।
देविका—दीग।
कुहु—काबुल।
वार्तघ्नी—साबरमती की सहायक वागक।
चन्द्रभागा—चिनाव।
इरावती—रावी।
वितस्ता—झेलम।
श्वभ्रवती—साबरमती।
पयोष्णी—पेनगंगा।
हिडिम्बा—चर्मवती, चम्बल

पर्वत : इसी प्रकार हिमालय की जिस श्रेणी विशेष से यमुना का उद्गम होता वह कलिंद, ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थल लोहितगिरि है। इसके अतिरिक्त इन्द्रकील

ग्रौर कामरूप हिमालय की शाखाएँ हैं। बृहद्गुरु ही माउण्ट एवरेस्ट है। चन्द्र-भागा जिस पर्वत से निकलती है वह चन्द्राचल, ग्रमरकंटक की वह श्रेणी, जिससे नर्मदा का उद्गम होता है मेकल, बिन्ध्याचल की देवगढ़ स्थित श्रेणी दर्दुर, ग्रासाम स्थित हिमालय की श्रेणी कामरूप ग्रौर मिर्जापुर का चुनार पर्वत चकोर कहलाता है। ग्रन्य पर्वतों के नाम समान हैं।

राजशेखर से पूर्व भारत के जनपदों, ग्रामों नदियों एवं पर्वतों का उल्लेख कालिदास की रचनाग्रों तथा पातञ्जल महाभाष्य में मिलता है किन्तु वैज्ञानिक ढंग से भारत का पाँच खण्डों में विभाजन राजशेखर के सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान का ही परिणाम है। सातवीं शताब्दी में भारत में भ्रमण करने वाले चीनो यात्री ह्वेन-त्सांग ने भी भारत को (Five Indies) पाँच खण्डों में विभक्त किया है। वे पाँच खण्ड हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ग्रौर मध्यदेश। प्रतीत होता है कि भारत को पाँच खंडों में वर्गीकृत करते समय इन सभी के विचार राजशेखर के मष्तिष्क में थे। उन्होंने सबका मनन कर समयोपयोगी एवं ग्रधिक स्पष्ट रूपरेखा को ग्रपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है।

उन्होंने इन जनपदों के ग्रतिरिक्त ग्रनेक नगरों का भी उल्लेख किया है। वे हैं—मिथिला, लंका, ग्रयोध्या, चेदि, ग्रवन्ति, कुशस्थली, लाट, ग्रोड्र, प्रयाग, महोदय कान्यकुब्ज, गाधिपुर, वाराणसी एवं मालव ग्रादि।

देशानुसार वेश-प्रणाली

राजशेखर ने भारत के बिभिन्न देशों के विभिन्न परिधानों की एक झलक काव्यमीमांसा में दी है—

पूर्वदेश–ग्रंग वंग, सुह्म, ब्रह्म तथा पुण्ड्र ग्रादि जनपदों की स्त्रियाँ उत्तरीय वस्त्र इस प्रकार धारण करती थीं जिसमें घूंघट मस्तक का चुम्बन करते थे ग्रौर बाहूमूल का स्पष्ट रूप से प्रदर्शन होता था।

पांचाल, शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, वाह्लीक, वाह्लवेय, ग्रादि देशों की स्त्रियों का ग्राधा वस्त्र जघन से लेकर घुटने तक लटका रहता था ग्रर्थात् वहाँ की स्त्रियाँ कमर से लेकर घुटने तक लटकते हुए ग्राकर्षक घाँघरे पहनती थी।

दक्षिणापथ की-मलय, मेकल, कुन्तल, केरल, पाल, मंजर, महाराष्ट्र, गांग ग्रौर कलिंग जनपद की कामिनियाँ भुजाग्रों के नीचे से कसकर साड़ियाँ बाँधती थी।

ग्रवन्ति, प्रदेश की स्त्रियाँ कभी घुटनों तक लटकने वाले घाँघरे तथा कभी भुजाग्रों के नीचे से कसकर साड़ियाँ धारण कर ग्राकर्षण का केन्द्र वनी रहती थीं।

पुरुषों को वेश विशेष अलंकृत नहीं करता । उनका आभूषण तो उनकी वैखरी होती है। राजशेखर ने इस देश विशेष की वैखरी का अत्यन्त सरस एवं वास्तविक वर्णन किया है जिसे देशानुसार पाठ प्रणाली शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा रहा है।

देशानुसार पाठ-प्रणाली

राजशेखर का कथन है कि वाराणसी से पूर्व जो मगधादि के निवासी हैं वे संस्कृत पाठ उत्कृष्टता से करते हैं, किन्तु प्राकृत बोलने में उनकी वाणी कुंठित हो जाती है। गौड़ देश के विद्वान न तो अत्यन्त स्पष्ट पढ़ते हैं और न अत्यन्त क्लिष्ट ही। उनका पाठ न तो अधिक रुक्ष रहता है और न अधिक कोमल, न अत्यन्त गम्भीर और न अत्यन्त ऊँचा। कर्नाटक देश के निवासी चाहे कोई रस हो कोई रीति या गुण हो, गर्व के साथ अन्त में टंकारयुक्त पाठ करते हैं। द्रविड़ देश के कवि गद्य, पद्य या चम्पू सभी को गाकर पढ़ते हैं। लाट के निवासी संस्कृत पसंद नहीं करते किन्तु प्राकृत पाठ आकर्षक रीति से करते हैं। सुराष्ट्र और त्रवण के निवासी संस्कृत और प्राकृत दोनों को सुन्दरता से पढ़ते हैं। काश्मीर के कवि का पाठ कानों में गुडूची रस की प्रतीति कराता है। उत्तरापथ के कवि सर्वदा सानुनासिक पाठ करते हैं। पाञ्चाल देश की स्त्रियों की वेशभूषा और पुरुषों का मधुर काव्यपाठ नेत्र और श्रवण को तृप्त कर देता है।

प्रान्तविशेष की भाषाएं : राजशेखर के युग में गौड़ादि प्रदेशों में संस्कृत भाषा का बोलबाला था। लाट देशवासी प्राकृत में विशेष रुचि रखते थे। सारा मरुप्रदेश अपभ्रंशभाषी था। अवन्ति, परियात्र तथा दशपुर के निवासी भूतभाषा पैशाची का सेवन करते थे किन्तु मध्यदेशीय कवि न केवल इन सभी भाषाओं में रुचि रखते थे अपितु सभी में निपुण भी थे।

प्रान्तानुसार साहित्यिक विशेषताएं : राजशेखर ने समकालीन साहित्यिक विशेषताओं का भी अत्यन्त एवं गम्भीर सूक्ष्म अध्ययन किया था। वे कहते हैं कि विदर्भ देश के निवासियों को सुबन्त शब्द अति प्रिय हैं। वे सुबन्त शब्दों का ही प्रधानता से प्रयोग करते हैं। गौड़-देशीय समस्त वेदों में विशेष रुचि रखते हैं। अतः उनकी भाषा समासबहुला होती है। दक्षिण देश के वासी तद्धित शब्दों से प्रीति रखते हैं। अतः उनकी भाषा भी तद्धितमयी दिखायी देती है। उदीच्यों की विशेषता कृदन्तों का प्रचुरता से प्रयोग करने में दिखायी देती है। अपनी-अपनी विशेषताओं को लिए हुए ये बुद्धिजीवी तिङन्त का समान रूप से, समान अभिरुचि से ही प्रयोग करते पाये जाते हैं।

शिक्षा का केन्द्र : उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र ये दोनों शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। जहाँ काव्यकारों एवं शास्त्रकारों की परीक्षा होती थी। उज्जयिनी में कालिदास, भर्तृमेण्ठ, अमर, उपवर्ष, आर्यसूर, भारवि, हरिश्चन्द्र, और चन्द्रगुप्त आदि परीक्षा में सम्मिलित होकर सफल घोषित हुये थे। फलस्वरूप उन्होंने पट्टबन्ध का गौरव भी प्राप्त किया था। उज्जयिनी केवल काव्यकारों की परीक्षा का केन्द्र थी।

पाटलिपुत्र में शास्त्रकारों की परीक्षा होती थी। जहाँ से आचार्य उपवर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि, वररुचि, तथा पतञ्जलि परीक्षित हुए थे तथा पट्टबन्ध से गौरवान्वित भी।

राजशेखर और परवर्ती साहित्य

नाट्य साहित्य : राजशेखर के पश्चात् स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर सट्टक का जिन्होंने निर्माण कार्य किया, वे हैं १—नयचन्द्र २—रुद्रदास ।

रुद्रदास : चन्द्रलेखा के कर्ता रुद्रदास सन् १९६० के आसपास के हैं। इन्होंने इस सट्टक में मानवेद तथा चन्द्रलेखा के प्रणय का वर्णन किया है। चन्द्रलेखा की शैली कर्पूरमंजरी की शैली से बहुत कुछ मिलती है। कर्पूरमंजरी पर ही यह आधारित है। भावों एवं शब्द का साम्य भी पर्याप्त मात्रा में दिखायी देता है। यथा—

कर्पूरमंजरी	चन्द्रलेखा
रइरहसकला लोलचोलाप्पिआर्णं[1]	एदे चूसिअ-चोल-बाल महिला भालिदुसेआअया ।[1क]
दो आगदं दे अण्णाएण पंडितएं[2]	जदो पुरुवं एव्व अम्हाणं पुण परंपराए समागअं पंडिअत्तणं ।[2क]
माह एक्कं कणणारअणं दिहं, तामिहाणीअइं[3]	इह महिअले जा कण्णाआणं रअण भूआ कणणआ तं पुरदो दंसेहि[3क]
कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि[4] ।	माणिक्क-भणिति काअं विक्किणी आदि[4क] ।
सहअं णाच्चिदव्वं[5] ।	सट्टओ णट्टिदव्वो[5क] ।
एत्थ सहअवरे[6]	अस्सिं खु सहअ वरे[6क] ।
अहं वड्ढावओतुज्झ । तुयं वड्ढाविआ मज्झ[7] ।	दाणिं अहं वड्ढावइस्सं अय्यउत्त, अहं हि तुमं वड्ढावइस्सं[7क] ।

१. कर्पूरमंजरी १—१५ १क. चन्द्रलेखा १—१३ २. कर्पूरमंजरी १—१८
२क. चन्द्रलेखा १—२६ ३. कर्पूरमंजरी १—२५ ३क. चन्द्रलेखा १—२९
४. कर्पूरमंजरी १—२० ४क. चन्द्रलेखा २—९ ५. कर्पूरमंजरी १—४
५क. चन्द्रलेखा १—४ ६. कर्पूरमंजरी १—७ ६क. चन्द्रलेखा १।२३—२४
७. कर्पूरमंजरी १—१२ ७क. चन्द्रलेखा १—१३

जदोण कत्थूरिग्रा कुग्गामें वणे वा विक्किणीअदि[1] ।	किं कत्थूरी पक्कणे विविक्कणी अदि[1क]
एदं जेव ग्राग्रछदि देवी ता कुज्जवामणकिरादवरिसवर सोविदल्लाणं एसो हलवोलो[2] ।	एसा खु देवी इदो एव्व ग्राग्रच्छदि त्तिसे कुज्ज किराग्र वारिसवर वामन पुरस्सरस परिवार ग्रणस्स एसो कल-कलो[2क] ।
विहिंगिग्रा—ग्रपंच चामलग्गाहिणीग्रो पुव्व दुवारामि तिस्से रक्खं कादुं ठाविग्राग्रो ।	ग्रणंगसेना—त्ति पंच चामरधारि-णाग्रों—रक्खानिमित्तहे पुव्व दिसाए गिउत्ताग्रो ।
कलहांसिग्रा—पंच सेरंधीग्रो उत्तरदु-वाराम्मि पोसिदाग्रो	ग्रणंगसेना—पंच सेरन्धीग्रो दक्खिण-णादिसाए णिवेसिदाग्रो ।
कुन्दमाला—तम्वोलकरंकवाहिणीग्रो पच्छिमदिसाए ठाविदाग्रो—ग्रणं-गकेली—मज्जणपालीग्रो उत्तर-दिसाए ग्राणत्ताग्रो ।	पत्तलेहा—ग्र पंच तम्वोल दाड़णीग्रो —सठाविग्राग्रो तमालिग्रा—णहागोवग्ररण संपादणीग्रो पच्छिम दुवारम्मि पेरिदाग्रो ।
मन्दारवदी—सुहासिदपढिग्राग्रो ग्रज्झकखीकिदाग्रो—[3]	मंदरिग्रा—दाहिण दुवाराम्मे णिग्रो-ईदाग्रो—[3क] ।

जयचन्द्र-रम्भामंजरी : नायक जैत्रचन्द्र ग्रौर रम्भा के प्रणय पर ग्राधारित इस सट्टक पर राजशेखर की छाप स्पष्ट दिखायी देती है । ग्रपनी रम्भामंजरी को उन्होंने कर्पूरमंजरी की ग्रपेक्षा श्रेष्ठ कहकर गर्वोक्ति की है किन्तु वस्तुतः उसमें राजशेखर का ग्रनुकरण ही लक्षित होता है ।

राजशेखर की ग्रनुकृति निम्न ग्रंशों से स्पष्ट हो जाती हैः—

कर्पूरमंजरी	रम्भामंजरी
पिए विब्भमलेहए। एक्को ग्रहं वडढावग्रो तुज्झ एक्का तुमं वड्ढाविग्रा मज्झ। किं उण दुवे वि ग्रम्हे वड़-वाविग्रा कंचणचण्ड[4] ।	देवी—वर्द्धयाप्यसे—ता ग्रहंपि पडि-वद्धावियापर्यवि पडिवत्तुमिच्छामि प्रिये वसन्तसेने नाहं वर्धापकस्तव नापि त्वमवि वर्द्धापिका मम । किंतु ग्रावयोर्वर्धापकः परमहंसो[4क]।

१. कर्पूरमंजरी १–१८ १क. चन्द्रलेखा २–९ २. कर्पूरमंजरी ३–३४
२क. चन्द्रलेखा ३–२४ ३. कर्पूरमंजरी ४–९ ३क. चन्द्रलेखा ४–२६
४. कर्पूरमंजरी १।१६ ४क. रम्भामंजरी पृ० ११–१२

विदूषक-तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे अहम् एको कालक्खरिओ जस्स मे ससुरस्स ससुरो पंडिअघरे पुत्थिआइ वहतो आसि[1]	जस्स मे पाणवल्लहाए पियामहो पाण्डियाणं पुत्थयवाहभाणाणं—विचारगे आसि[1क]
तदो आगदं दे अण्णएण पंडित्तए[2]।	अहो पारंपज्जेणेव पवाहिदा तुम्हाणं कुले विज्जा[2क]।
ण कत्थूरिया कुण्णये वने ना विक्कीणी अदि।[3]	कि रयणं कत्थूरिआ कुग्गामे विक्कयदि।[3] आः मह इहिं राउले आगच्छतरस जं जीवयव्वहरो स्थाम्मिराउले—दासीओ आग्घिज्जंति दासिओ पूइज्जंति उत्तमाण वंभणणं—ण कोवि वुज्झेदि।[4]
ईदिसस्स राअलउलस्स भद्दं भोदु जहि चेडिआ वम्हेणेण समं समसीसिआए दीसदि—[4]	
णिअगेहणीए—गेहे जेव्व घिठिठस्सं ण हु व हु आगामिस्सं।[5]	ता भद्दं भोदु स्यस्स रायकुलस्स गियवल्लहाए—गिहज्जेव चिट्टिस्सं इह नागमिस्सं।[5क]

विश्वेश्वर-सिङ्गारमञ्जरी : १८ वीं शताब्दी के विश्वेश्वर ने राजा राजशेखर और शृंगारमंजरी के प्रणय की कथा सिङ्गारमंजरी सट्टक में वर्णित की। सिङ्गारमंजरी में कर्पूरमंजरी के भाव और वर्णन की छाया स्पष्ट दिखायी देती है।

इन परवर्ती साहित्यकारों ने केवल कर्पूरमंजरी का ही अनुकरण नहीं किया। इस सन्दर्भ में विद्धशालभंजिका भी दृष्टव्य है। कश्मीरी कवि विह्लण की कर्णसुन्दरी नाटिका की कथावस्तु एवं वर्णन शैली आदि पर विद्धशालभंजिका का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

(कर्णसुन्दरी) नायक स्वप्न में किसी अनन्यसुन्दरी को देखता है। वह सुन्दरी शीघ्र ही चली जाती है। राजा उसी का स्मरण करके अधीर होता है।

१. कर्पूरमंजरी १।१६–१७
२. कर्पूरमंजरी १–१८–१९
३. कर्पूरमंजरी पृ० २३
४. कर्पूरमंजरी पृ० ३०
५. कर्पूरमंजरी पृ० ३२

१क. रम्भामंजरी पृ० १४–१।३१
२क. रम्भामंजरी १–३३–३४
३क. रम्भामंजरी पृ० १६
४क. रम्भामंजरी पृ० १९५ व पृ० २०
५क. रम्भामंजरी पृ० २०

उसका मित्र विदूषक उसे मदनोद्यान चलने के लिए कहता है जिससे विरही राजा का मन स्थिर हो। प्रकृति शोभा का निरीक्षण करते हुए वे तरंगशाला पहुँचते हैं वहाँ भित्ति पर उसी स्वप्नदृष्टा नायिका की प्रतिकृति चित्रित है। नायिका उस नायिका के सौन्दर्य के वर्णन में मग्न है इसी समय देवी अपनी सखी हारलता के साथ प्रवेश करती है। राजा से यह पूछने पर कि वह किसके गुणों का गान कर रहा है— रानी का कहकर रानी को निःशंक करती है। किन्तु वह चित्र स्पष्ट रूप से कर्ण-सुन्दरी का है। अतः रानी राजा की मनःस्थिति समझ जाती है।

दूसरे अंक में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राजा कुपिता रानी को मनाने में सफल हो गया है। प्रमुख दृश्य में विरहाकुल राजा को तरंग-शाला में सुन्दरी का चित्र देखकर मन बहलाने की सलाह विदूषक देता है। दोनों तरंगशाला में पहुँचते हैं। राजा उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए अत्युत्सुक है। उन्हें नायिका लीलावन के सरोवर में स्नान करती हुई दिखायी देती है। मज्जनोमज्जन क्रिया का वर्णन करते हैं। नायिका स्नान के पश्चात् लता गुल्म में प्रवेश करती है और विदूपक उसका अनुसरण करते हैं। नायिका भी मदन-झरोखे से राजा का स्मरण करती हुई वह विरहदाह को न सह सकने के कारण मूर्च्छित हो जाती है। गुल्म में छिपा हुआ राजा शीघ्र वहाँ पहुँचता है। चेतना-लब्ध नायिका एवं नायक के मिलन की वार्ता देवी को ज्ञात होती है। रानी की शंका से नायिका रानी के आने के पूर्व ही वहाँ से प्रस्थान कर देती है।

तृतीय अंक में रानी कर्णसुन्दरी का वेश धारण कर तथा सखी हारलता कर्णसुन्दरी की सखी का रूप धारण कर राजा के समक्ष उपस्थित होती हैं। राजा के मन का रहस्य जानने के बाद वह अपना वास्तविक रूप दिखाती हैं। राजा अपराधी की भाँति उसके चरणों पर अपंना मस्तक झुकाने की कोशिश करता है किन्तु क्रुद्धा रानी भनभनाती हुई चली जाती है।

चतुर्थ अंक में नायिका कर्णसुन्दरी को विवाह नेपथ्य से अलंकृत कर, वरवेष में राजा को भी सुशोभित कर रानी दोनों का पाणिग्रहण कराती है। इसी समय राजा के दूत का आगमन होता है जो राजा के चक्रवर्ती होने की घोषणा करता है। भरतवाक्य के पश्चात् पात्र चले जाते हैं।

इस नाटिका में यद्यपि रत्नावली का अनुकरण है, (वासवदत्ता सागरिका के वेश में राजा से मिलने जाती है। इस नाटिका में रानी कर्णसुन्दरी के वेश में) तथापि विद्धशालभंजिका का प्रभाव अधिक लक्षित होता है।

कतिपय भावसाम्य के अंश निम्न हैं:—

विद्धशालभंजिका	कर्णसुन्दरी
स्वप्न: किमेषकिमु संविदियंतुसाक्षाज् ज्ञानं किमेत दुभयात्मक मन्यदेव। दृश्यते—तरलायताक्षी अत्रान्तरे[1] ललितहारलता नितम्ब संवाहन-स्खलित वेगतरंगितांगी। देवी व्यपास्य शयनं धृतमानतन्तु रन्त:पुर गतवती सह सौविदल्लै:।[2]	स्वप्नोऽसौ किमुतेन्द्रजालमपरं संवादोऽपि न यस्य—दृष्टा कुरंगेक्षणा[1] —नोकिंचित्करूक्षाक्षरं निगदितं नो दर्शित: संभ्रम:। कासावित्युपहासगार्भितरूपा प्रश्नोऽपि नाविष्कृत:। निश्वास: परिवृत्य किं तु ज्ञानके: श्यामीकृतप्रज्वलाभनानारत्नमयप्रदीप किरणश्रेणिर्विमुक्तस्तवा।
पणअपणमंतसामंतसहस्सअं अत्थाण मंडवभगगम् उजझीअ झमिण खिडाक्किआदुवारेण पमोअउज्जाणं-पविसिअ[3]	इदो सेवागदणविन्दसहस्ससंकिण्णं विलास सांचिअतेल्लोकमुन्दरजणं अत्थाणंगणं परिहरिअ रण-अदुआ रिआए खिडक्किआदो णीसरीआ[3]

किसी भी कवि का व्यक्तित्व कितना उच्च एवं महान् है इसका महत्वपूर्ण संकेत इस बात से मिलता है कि उसने उत्तरवर्ती कवियों अथवा काव्यरूपों पर अपनी कितनी तथा कैसी छाप छोड़ी। उपर्युक्त चर्चा से राजशेखर के नाट्य-साहित्य की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

काव्यशास्त्रीय साहित्य

काव्यमीमांसा में संस्कृत साहित्य शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा के परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप का दर्शन होता है। पूर्ववर्ती आचार्यों के विचार, उनका

१. विद्धशालभंजिका १–२१, कर्णसुन्दरी १–३१।
२. विद्धशालभंजिका १–१९, कर्णसुन्दरी १–४०।
३. विद्धशालभंजिका १–२२, कर्णसुन्दरी १–४८।

यथावसर समर्थन एवं खण्डन काव्यमीमांसा ग्रन्थ में विद्यमान है, किन्तु कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय काव्यशास्त्र के लिए सर्वथा नवीन है । राजशेखर की इसी मौलिकता का प्रभाव परवर्ती आचार्यों पर स्पष्ट देखा जा सकता है । कतिपय आचार्यों ने इस सम्प्रदाय के कुछ विषय शब्दशः ग्रहण किये हैं ।

चतुर्दश, पञ्चदश एवं षोडश अध्यायों में वर्णित कवि-समय को जिन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है, वे आचार्य हैं—१. जिनसेन, २. अमर, ३. देवेश्वर, ४. केशव मिश्र, ५. हेमचन्द्र एवं ६. वाग्भट ।

आचार्य हेमचन्द्र एवं आचार्य वाग्भट ने राजशेखर वर्णित अर्थव्याप्ति, हरण, देश-विभाग एव काल-विभाग विषयों को शब्दशः उद्धृत करने में गौरव समझा है । परिशिष्ट में संलग्न सूची से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी । यहाँ केवल अध्याय एवं पृष्ठों का निर्देश किया जा रहा है[1] ।

विषय	काव्यमीमांसा राजशेखर	काव्यानुशासन-विवेक हेमचन्द्र	काव्यानुशासन-वृत्ति वाग्भट
काव्यार्थ योनि . .	अ० ८ पृ० ३५–४१	अ० १ पृ० ५, ६, ७, ११	अ० १ पृ० ५, ६,
अर्थव्याप्ति .	अ० ९ पृ० ४२–४४	अ० ३ पृ० १२२, १२३	अ० ४ पृ० ६०–६१
हरण .	अ० ११–१२–१३ पृ० ५६ ६४	अ० १ पृ० ८–१०	अ० १ पृ० १२–१३
देश विभाग .	अ० १७ पृ ८९ ९८	अ० ३ पृ० १२६-१३०	अ० १ पृ० ३–४
काल-विभाग .	अ० १८ पृ० ९८ ११२	अ० ३ पृ० १३०, १३५	अ० ४ पृ० ६५–६७

राजशेखर एवं विश्वनाथ

काव्य-पुरुष के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का निर्देश करते समय राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा माना है । परवर्ती आचार्यों में विश्वनाथ भट्ट राजशेखर से अत्याधिक प्रभावित हुए । उन्होंने काव्य लक्षण में ही 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर रस की अनिवार्यता को स्पष्ट किया है । राजशेखर द्वारा प्रणीत काव्यमीमांसा की समन्वयात्मक रचनाशैली की अनुकृति मम्मट के ग्रन्थ में उपलब्ध होती है । आचार्य विश्वनाथ का नाम भी साहित्य दर्पण में समन्वयात्मक प्रणाली को प्रणयन करने के कारण उल्लेखनीय है । दोनों ही आचार्य राजशेखर के कृतज्ञ हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजशेखर की रचना, शैली एवं विषय का स्पष्ट प्रभाव परवर्ती आचार्यों की रचनाओं में लक्षित होता है ।

नाटककारों एवं आचार्यों में राजशेखर का स्थान

राजशेखर ने अपने विषय में लिखा है:—

'बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्योभवभूतिरेखया
स वर्त्तते संप्रति राजशेखरः ॥[1] (बालरामायण)

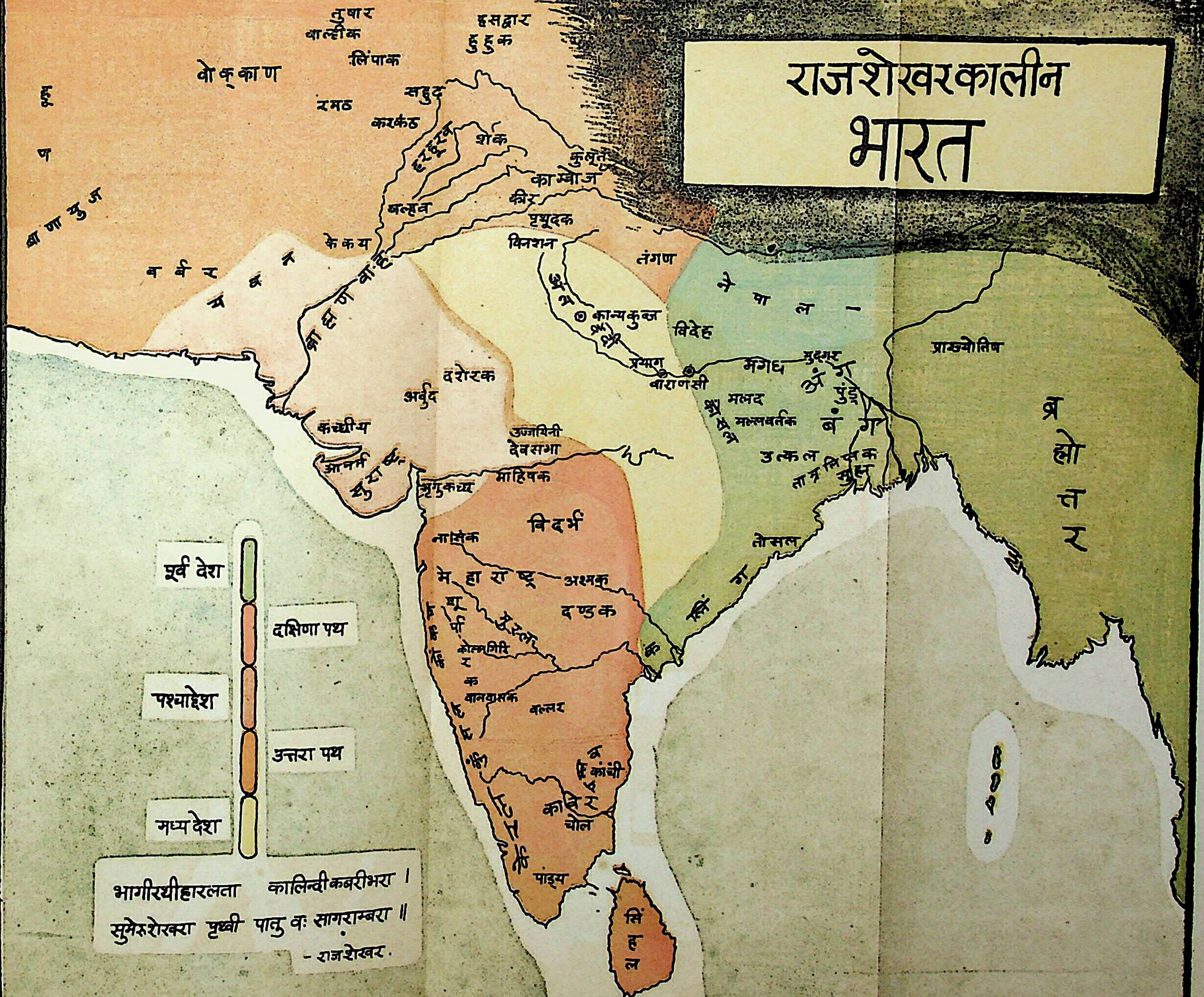
संस्कृत साहित्य में वाल्मीक आदि कवि हैं । उनके बाद भर्तृमेण्ठ हुए । उसी पथ पर भवभूति चले और आज वे ही राजशेखर के रूप में अवतरित हुए हैं । उपर्युक्त श्लोक में राजशेखर ने न केवल अपना परिचय दिया है वरन् स्वयं को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति के समकक्ष माना है ।

वाल्मीकि एवं राजशेखर : महर्षि वाल्मीकि आदि कवि हैं । राजशेखर को 'बालरामायण' की रचना में वाल्मीकि से स्फूर्ति तथा प्रेरणा मिली है । किन्तु आदि कवि ने महाकाव्य का प्रणयन किया है, राजशेखर ने नाटक का । अतः जो नाटकीय तत्व हैं वे रामायण में नहीं मिलते । राजशेखर के पात्र भी रामायण से भिन्न अपनी कुछ विशेषतायें रखते हैं । जैसे रावण के चित्रण में आदि से अन्त तक शृंगार एवं उद्दाम वासनाओं का प्राधान्य है । सीता को तत्कालीन राजाओं की पर्याप्त जानकारी है । दशरथ क्षत्रिय धर्म की अपेक्षा जैन धर्म के तटस्थवाद को अधिक महत्व देते हैं । ये विशेषतायें रामायण में नहीं मिलतीं । समयानुकूल पात्रों का चित्रण, नाटक में काव्य तत्व की सुन्दर अभिव्यक्ति तथा प्रकृति का मानवीकरण इन सब दृष्टियों से काव्य-कला में समृद्ध होते हुए, राजशेखर ने वाल्मीकि से प्रेरणा पाकर अपना प्रशंसनीय स्थान बना लिया ।

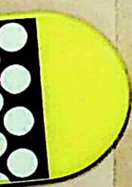
भर्तृमेण्ठ एवं राजशेखर : यह आश्चर्य की बात है राजशेखर ने वाल्मीकि तथा भवभूति काल के मध्य हुए सबसे महान् कवि कालिदास की अपेक्षा भर्तृमेण्ठ को ऊँचा स्थान दिया है । राजशेखर का कथन है कि "जिस प्रकार हाथी अंकुश की चुभन से व्यथित होकर बिना सिर हिलाये नहीं रहता, उसी प्रकार मेण्ठराज की वक्रोक्तियों को सुनकर कोई भी मर्मविद्ध होकर अपना मस्तक हिलाये बिना नहीं रह सकता ।" इससे राजशेखर की सम्मति में भर्तृमेण्ठ

---

१. बालरामायण १–१६ ।



राजशेखरकालीन
भारत
तुषार
वाल्हीक
लिंपाक
वोक्काण
रमठ
करकंठ
शक
कुलूत
काम्बोज
पल्हव
केकय
पृथूदक
विनशन
तंगण
बर्बर
यवन
नेपाल
कान्यकुब्ज
विदेह
प्राग्ज्योतिष
प्रयाग
वाराणसी
मगध
मुद्गर
अंग
पुंड्र
मलद
मल्लवर्तक
बंग
ब्रह्मोत्तर
दशेरक
अर्बुद
कच्छीय
आनर्त
उज्जयिनी
देवसभा
भृगुकच्छ
माहिषक
विदर्भ
नासिक
महाराष्ट्र
अश्मक
दण्डक
उत्कल
तोसल
कोल्लगिरि
वानवासक
वल्लर
कांची
चोल
पांड्य
सिंहल
पूर्व देश
दक्षिणा पथ
पश्चाद्देश
उत्तरा पथ
मध्य देश
भागीरथीहारलता कालिन्दीकबरीभरा ।
सुमेरुशेखरा पृथ्वी पातु वः सागराम्बरा ॥
- राजशेखर.



ही का स्थान ऊँचा ठहरता है। परन्तु भर्तृमेण्ठ की एक मात्र कृति 'हयग्रीववध' अनुपलब्ध है। अतः संस्कृत साहित्य में हम उनका स्थान, अथवा राजशेखर से उनकी तुलना करने में असमर्थ हैं।

भवभूति एवं राजशेखर : कहा जा चुका है कि राजशेखर अपने को भवभूति का अवतार मानते हैं। यह सत्य भी है क्योंकि 'बालरामायण' में महावीरचरित से समानता रखने वाली इतनी अधिक पंक्तियाँ उपलब्ध हैं कि लगता है कि भवभूति ही पुनः राजशेखर के रूप में अवतरित हो गये हैं। कवि के काव्य-कौशल, अभिव्यञ्जना एवं शिल्प आदि पर भवभूति की अमिट छाप दिखायी देती है।

कालिदास एवं राजशेखर : राजशेखर ने कविकुलगुरु कालिदास के भावों को भी यथास्थान ग्रहण किया है। जिनका निर्देश नाटिका के प्रसंग में हो चुका है। कालिदास के काव्य में प्रायः कोमल तथा ललित उपादानों की 'अभिव्यंजना' हुई है। प्रकृति-वर्णन में भी वे प्रकृति के सौम्य रूप का ही चित्रण करते हैं। राजशेखर ने केवल सौम्यरूप का ही वर्णन नहीं किया अपितु वे प्रकृति के रौद्ररूप की भी झाँकी प्रस्तुत करते हैं। कालिदास व्यंजना-प्रिय हैं। राजशेखर अभिधा प्रेमी हैं। वे अपनी शाब्दी ध्वनि के श्रवण मात्र से ही दृश्य को नेत्र के सामने उपस्थित कर देने की क्षमता रखते हैं।

वाल्मीकि से प्रेरणा पाकर, मेण्ठ की वक्रोक्ति को अंगीकृत कर तथा स्वयं को भवभूति में विलीन कर राजशेखर ने 'बालरामायण' की सर्जना की। इसके अतिरिक्त नाटिका एवं सट्टक नामक उपरूपक का भी उन्होंने प्रणयन किया।

राजशेखर की उपलब्धि

संस्कृत-साहित्य में नाटिकाओं का शुभारम्भ श्रीहर्ष ने किया है। उनकी 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' परवर्ती नाटिकाकारों के लिए आदर्श बन गयी हैं किन्तु इन नाटिकाओं पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र की छाया स्पष्ट झलक रही है। इनके अध्ययन से विदित होता है कि अन्तःपुर की प्रणयलीलाओं का उद्घाटन इनका प्रमुख लक्ष्य है। अतः अन्तःपुर से सम्बन्धित पात्रों की संख्या एवं उनके कार्य नियत होते हैं। नायक-नायिका के अतिरिक्त राजा-रानी के परिचारकगण, विदूषक, राज्य के कर्मचारी, मंत्री तथा स्त्री-पात्रों में महादेवी की प्रमुख भूमिका के साथ दूती, प्रतिहारी परिचारिका आदि का नियोजन किया जाता है। राजशेखर ने इस परिपाटी का पालन किया है किन्तु प्रसंगानुसार परम्परा में मौलिकता का भी आविष्करण किया है। हर्ष एवं कालिदास

की नाटिकाओं के नामकरण नायिका अथवा नायक-नायिका के संयुक्त नामों पर हुए हैं--जैसे 'रत्नावली' 'प्रियदर्शिका' 'मालविकाग्निमित्रम्' आदि। यदि राजशेखर परम्परा को आदर्श मानते तो उनकी नाटिका का नाम विद्धशालभञ्जिका के स्थान पर मृगाङ्कावली होता। नायक, विद्याधरमल्ल नायिका मृगाङ्कावली को शालभञ्जिका में उत्कीर्ण देखता है, यही 'विद्धशालभंजिका' शीर्षक का आधार है। यह भी उल्लेखनीय है कि 'रत्नावली' और 'मालविकाग्निमित्र' की नायिकाएँ प्रथम अंक में ही दर्शकों के सम्मुख उपस्थित हो जाती हैं किन्तु 'विद्धशालभंजिका' में प्रथम से तृतीय अंक में केवल नायिका के सौन्दर्य का वर्णन मिलता है, उसके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते। दर्शक नायिका को देखने के लिए कितने अधिक उत्सुक होंगे, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। इन दो नवीनताओं की सृष्टि के अतिरिक्त शेष संदर्भ में राजशेखर अपने पूर्ववर्ती नाटिकाकारों के पथ का अनुसरण करते दिखायी देते हैं।

सट्टक : हम राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' का परिशीलन कर चुके हैं। इस रचना के द्वारा उन्होंने नाट्यपरम्परा एवं नाट्यशास्त्र-परम्परा दोनों की अभिवृद्धि की है। प्राकृत साहित्य में सट्टक का प्रणयन करने के कारण वे मूर्धन्य माने जाते हैं। साहित्य क्षेत्र में सट्टक-निर्मिति का जो गौरव राजशेखर ने पाया है, वह अन्यतम है।

राजशेखर से पूर्व ही काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हो चुके थे। पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन, अपने मत का प्रतिपादन एवं मण्डन यही सम्प्रदायों की आधारशिला थी। अतः काव्यक्षेत्र में वादों-प्रतिवादों की लहर-सी चल पड़ी थी। सम्पूर्ण काव्य क्षेत्र इस व्याधि से पीड़ित था। परिणामतः मौलिक उद्भावना एवं प्रतिष्ठा के अनन्तर भी जिस परिमार्जन, शास्त्रीयता, सूक्ष्मता एवं व्यवस्था की आवश्यकता होती है, उसका पूर्णतः अभाव था। इस त्रुटि के परिमार्जन का श्रेय राजशेखर को है। उनका सब से बड़ा योगदान काव्यशास्त्र को वादों की भूमि से हटाकर सच्चे अर्थ में शास्त्र बनाना, उसके सिद्धांतों की शास्त्रीय प्रतिष्ठापना करना तथा उनको परिमार्जित व्यवस्था देना है।

'काव्यमीमांसा' में मौलिक उद्भावनायें अनेक हैं। वे प्रायः समस्त ग्रन्थ में वे बिखरी पड़ी हैं। काव्यमीमांसा ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिस गुरुशिष्य-परम्परा का आख्यान है, वह सम्पूर्ण साहित्य क्षेत्र में अपूर्व है। मंगल, श्यामदेव और सुरानन्द का नाम निर्देश भी प्रथमतः 'काव्यमीमांसा' में ही उपलब्ध है। पाँचवें

अध्याय में अलंकार-शास्त्र की षड़ङ्ग के समकक्ष प्रतिष्ठा, काव्य की पन्द्रहवीं विद्या के रूप में स्थापना, साहित्य की पञ्चमी विद्या में गणना, काव्यपुरुष की अवतारणा, साहित्य विद्या-वधू द्वारा काव्य-पुरुष की खोज में रीति-वृत्ति-प्रवृत्ति की गवेषणा, कवि की दिनचर्या, कवि-भेद,काव्यार्थ योनियों में चार अन्य स्रोतों का प्रवेश, हरण एवं कविसमय का विस्तृत विवेचन आदि समस्त विषय राजशेखर के उर्वर मस्तिष्क की उपज हैं । जिन विषयों का केवल संकेत-मात्र है, वे हैं— वैनोदिक एवं औपनिषदिक प्रकरण । इनके संकेत मात्र से मौलिकता की प्रतीति होती है । इस प्रकार शास्त्रीय विश्लेषण में राजशेखर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

राजशेखर एक स्वतन्त्रचेता आचार्य थे । उन्होंने, भरत, वामन, उद्भट, रुद्रट एवं आनन्दवर्धन की मान्यताओं को परिमार्जित एवं प्रतिष्ठापित करने का श्रमसाध्य कार्य भी किया था । उनकी यह विशेषता उनकी समन्वयात्मक प्रणाली में दृष्टिगत होती है । आनन्दवर्धन ने प्रतिभा को श्रेयस्कर माना है । वे कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों ही समान रूप से श्रेयस्कर हैं । "प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथः समवेते श्रेयस्यौ इति यायावरीयः ।"[1] इसी प्रकार रस के विषय में पाल्यकीर्ति और अवन्तिसुन्दरी के विभिन्न मतों का उन्होंने मंजुल समन्वय किया है ।

'कुछ विद्वान् एक लोक की, कुछ दो की, तीन की और कुछ तो सात से इक्कीस लोकों तक की कल्पना करते हैं। राजशेखर ने "सर्वमुपपन्नम्" कहकर सभी को स्वीकृति प्रदान की है । उनका जिस स्थल पर आचार्यों से मतभेद है वहाँ वे स्पष्ट शब्दों में असहमति प्रकट करते हैं। वे किसी भी बात को अपनी तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करते हैं ।

भरत मुनि को आचार्यत्व प्रदान करने वाला रस-सिद्धांत है । किन्तु यह सिद्धांत केवल नाट्य-रस से सम्बद्ध है । राजशेखर ने भरत मुनि के इस सूत्र पर रस-सम्प्रदाय का भव्य प्रसाद खड़ा करने की योजना बनायी । उन्होंने आचार्य भामह और दण्डी के शब्दार्थमय शरीर को काव्यपुरुष के रूप में मूर्त्त स्वरूप दिया है । वे वामन की रीति विषयक मान्यताओं से सहमत हैं तथापि उन्होंने रीति, प्रवृत्ति और वृत्ति के उद्गम की कल्पना प्रस्तुत कर वामन की रीति को और भी परिमार्जित कर दिया है । साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र में इसका महनीय कार्य

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ ।

है—एक सहस्र वर्षों की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके एक सर्वांगपूर्ण साहित्यिक ग्रन्थ की निर्मिति।

परवर्ती आचार्य हेमचन्द्र, वाग्भट, अरिसिंह, अमरचन्द्र, देवेश्वर, केशव मिश्र और विश्वनाथ इनसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने काव्यमीमांसा के अंश के अंश अपने ग्रन्थों में उद्धृत कर दिये हैं।

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में वे समन्वयात्मक प्रणाली द्वारा ग्रन्थ रचना करने वालों में मूर्धन्य हैं। आचार्य मम्मट, पण्डितराज जगन्नाथ और विश्वनाथ भट्ट ने उनके इसी पथ का अनुसरण किया। राजशेखर कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय के जनक हैं।

राजशेखर संस्कृत के महान् निर्माता हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने नवीं और दसवीं शताब्दी की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दशा भी चित्रित की है। उनकी विद्धशालभंजिका नाटिका राष्ट्रकूट एवं कलचुरि वंशों पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। 'बालरामायण', 'बालभारत' और 'कर्पूरमंजरी' नाट्य-कृतियों से नवीं और दसवीं शती के दो शक्तिशाली राजवंशों-गुर्जर प्रतिहार एवं कलचुरि वंश का परिचय मिलता है।

इन्होंने काव्यमीमांसा में पाठ-प्रतिष्ठा शीर्षक के अन्तर्गत भारत की विभिन्न पाठ प्रणालियों का वर्णन किया है, जिससे तत्कालीन संस्कृत-प्राकृत भाषा की प्रतिष्ठा का ज्ञान होता है।

इनकी काव्यमीमांसा में भारत के पाँच खण्ड, उनमें अन्तर्भुक्त जनपद, नदियाँ, पर्वत तथा वहाँ की उत्पाद्य वस्तुएँ यह प्रमाणित करती हैं कि राजशेखर भूगोल के भी वेत्ता थे।

उनके द्वारा किया गया भारत-भूमि का चित्रण इसी तथ्य का द्योतक है कि उन्होंने केवल परम्परा से श्रुत अनुभवों की अभिव्यक्ति ही नहीं की अपितु प्रत्यक्ष निरीक्षण को रूपायित किया है।

राजशेखर के आविर्भाव काल में जनजागृति की नितान्त आवश्यकता थी। उन्होंने रूपकों के माध्यम से धार्मिक पतन के प्रति जनता को सावधान किया। अतः वे कोरे साहित्यकार ही नहीं, एक ऐसे प्रचारक भी थे जो साहित्य-सृजन द्वारा अपने मत का प्रचार करते हैं। इस प्रकार महाकवि, कविराज, आचार्य, भूगोल एवं संस्कृति के निर्माता के रूप में इन्होंने संस्कृत साहित्य को जो समृद्धि प्रदान की है, उससे संस्कृत साहित्य के इतिहास में राजशेखर का स्थान निर्माता कलाकारों की पंक्ति में अग्रगण्य बन गया है। उनके विषय में कही गयी यह उक्ति अत्यन्त सार्थक है :—

"फुल्लाकीर्तिर्भ्रमति सुकवेर्दिक्षु यायावरस्य".।

परिशिष्ट १

राजशेखर की पुनरुक्तियाँ

श्लोक	बाल-रामायण	बाल-भारत	विद्धशाल-भंजिका	कर्पूर-मंजरी	काव्य-मीमांसा
१. अकंकणमकुण्डलम्			३।१२	३।२६	
२. अनुकूलं हिदैवं	१।५–६		४।२०–२१		
३. अयि पिबत चकोरा:	५।७५		३।१५		
४. आपन्नार्तिहर:	१।१८	१।११			
५. आद्य: कन्दो वेद–	१।१४	१।३			
६. उत्तालालक भंजनानि	२।२३		२।५		
७. कण्ठे मौत्तिककदाम–		१।२७	३।१६		
८. कर्णे स्मेरंशिरीषम्	५।२६				१८।१११
९. गत: स कालो	३।२				७।२१
१०. गर्भग्रन्थीषु वीरुधाम्	१।२३		१।२३		१८।१०८
११. तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता–	२।१७		१।१४		
१२. तनुलग्ना इव ककुमा			३।६		
१३. तरंगय दृशो मनाक्	३।२५		३।२७		
१४. दन्तोलूखलिभि:	१०।५८	१।१९			
१५. द्वित्रैव्योम्नि पुराण–			१।११		१७।१५
१६. धत्ते यत्किल	७।३८,१०।४४				९।४५
१७. ध्रुवा हि नाम नाट्यस्य	१।१९–२०	१।१३–१४			
१८. निर्यद्वासर जीवपीण्ड–		१।२२	२।२२		
१९. पातुं श्रोत्ररसायनम्	१।१७		१।७		
२०. पाणिप्रस्थैर्वकुल–	३।३९	१।६५			
२१. प्रेयान् में दन्तिदन्न–	८।११		४।२३		
२२. प्रथयति पात्रविशेषान्	१।२०	१।१४			

२३. बभूव वाल्मीकि–	१।१६	१।१२		
२४. ब्रह्मेभ्यः शिवमस्तु	१।१०	१।५		
२५. मया मूर्धि प्रहृते	६।११–१६		४।६	
२६. मयि शिशिरतरोः	१।४–२७		४।५	
२७. मूलं वालधि वीरुधाम्			४।५	
२८. यादांसि हे चरत	७।४५			१७।९६
२९. या स्त्रीणामपि	७।३९,१०।४६			
३०. यत्खातः सगरेण	७।३१,७।४३			
३१. यन्त्रद्रावित–	३।१४			१४।८०–८१
३२. येसीमन्तितगात्र–		१।२		१३।७१
३३. योगीन्द्रच्छन्दसा	१।९	१।१५		
३४ राजसूयक्रतोर्यज्वा	२।७	२।१३		
३५. लम्पाकीनां किरन्तः	५।३५			१८।९९
३६. वीराचण्डसिदण्ड	३।४४,७।६८			
३७. श्रियः प्रसूते		१।९	१।८	
३८. तमव्यायाध्याम्	१।२४			८।३८
३९. सपदि सखीनिभृतम्	५।४१		१।२४	
४०. सद्यश्चन्दनपंक–	१०।४०		३।२	
४१. साम्यं सम्प्रति	५।४०		१।२५	१८।९७–१०९
४२. सूत्रधारचलद्–	५।१६,७।७७			
४३. सौधादुद्विजते	५।१०		३।२	
४४. हारोऽयं केरल–		२।१५	१।१७	

२. अन्य ग्रन्थों में राजशेखर का उल्लेख तथा उद्धरण :

(१) अभिनवभारती : अभिनव गुप्त

१. यथा बालरामायणे इत्यादिना। अ २ पृ० ३२०

२. राजशेखरेण युक्तामित्यर्थः। अ २ पृ० २९५

३. शत्रुहृदय महस् इत्यादौ अ १ पृ० २९

पृष्ठ

(२) दशरुपक : धनंजय

(३) बक्रोक्तिजीवित कुन्तक

(८) अलंकारसर्वस्व : रुय्यक		
१. इन्दुर्लिप्त इव		१९२
२. इन्दोर्लक्ष्म		२०८
३. कर्पूर इव		२३५
४. चकोर्यं एव		११९
५. दाहोऽम्भः प्रसृतिम्पचः		१०७
६. दृशा दग्धम्		२५४
७. न्यंचतकुश्चित–		२९४
८. पृथ्वि स्थिरा भव		२०३
९. लोकोत्तरं चरित–		२०२
(९) काव्यानुशासन : वाग्भट		
१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थ योनि)	अध्याय १	५,६
२. प्रकृतिः (अर्थव्याप्तिः)	" ४	६०,६१
३. हरणम्	" १	१२,१३
४ कविसमयः	" १	७ से १२
५. देशः	" १	३-४
६. कालः	" ४	६५,६७
(१०) काव्यानुशासन : हेमचन्द्र		
१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थयोनयः)	" १	५,२८
		३०,१६,१७
२. प्रकृतिः (अर्थव्याप्तिः)	" ३	१२२,१२३
३. हरणम् (उपजीवन शिक्षा)	" १	८,१०
४. कविसमयः	" १	११ से १६
५. देशः	"	१२६,१३०
६. कालः	" ३	१३०,१३५
(११) काव्यकल्पलता : अरिसिंह एवं अमर		
१. कविसमयः		३०,३१
(१२) अलंकारचिन्तामणि : जिनसेन		
१. कविसमयः		७,८
(१३) काव्यकल्पलता––देवेश्वर		
१. कविसमयः		४०,४२

(१४) साहित्यदर्पण : विश्वनाथ

१.	सद्य. पुरीपरिसरेऽपि	३।१४५
२.	भो लंकेश्वर	३।२३४
३.	आहारे विरतिः	४।१०
४.	श्रवणैः पेयमनेकैः	६।२०
५.	कालरात्रिकरालेऽयम्	६।२०७
६.	अत्रासीन् पर्णपाश–	६।२०८
७.	चापाचार्यस्त्रिपुर–	७।८
८.	उदन्वच्छन्ना भूः	७।११
९.	आज्ञा शक्रशिखामणि–	१०।७४,१०।५
१०.	दशादग्घं	१०।७४,१०।५
११.	चकोर्य एव	१०।४९
१२.	इन्दुर्लिप्त इव	१०।५८
१३.	पृथ्वि स्थिरा भव	१०।६१
१४.	तद्वक्त्रं यदि	१०।८७

(१४) अलंकारमहोदधि : नरेन्द्र प्रभसूरि

१.	आज्ञा शक्रशिखा–	१५७
२.	आहारे विरतिः	२४६
३.	इत्युग्दते शशिनि	२०
४.	इन्दुर्लिप्त इव	२८३
५.	इन्दोर्लक्ष्म त्रिपुरजयिनः	२९१
६.	उदन्वच्छन्ना भूः	१३३
७.	कपाले भार्जारः	२४८
८.	कर्पूर इव	२९४,५
९.	चापाचार्यः	२४,१५४
१०.	चिते चहुद्दि	१८८
११.	ज्योत्स्नां लिम्पति	१३२
१२.	तरंगय दृशोऽङ्गने	१३४

(१५) अलंकार कौस्तुभ : विश्वेश्वर पण्डित

(१६) कुवलयानन्द : अप्पयदीक्षित

(१७) चित्रमीमांसा : अप्पयदीक्षित

३. राजशेखर द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	काव्यमीमांसा पृष्ठ संख्या
१.	ऋग्वेद	—	६,२८
२.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास	१२,२४
३.	रघुवंशम्	कालिदास	१२,४१,७६,८५
४.	कुमारसंभवम्	कालिदास	१२,४०,४४,४८,८१,८४,९६
५.	वेणी संहारम्	भट्टनारायण	१९,३२
६.	एतरेय एवं शतपथ		२५,३५
७.	निरुक्तम्		२८
८.	किरातार्जुनीयम्	भारवि	३२,५८,७०,८५
९.	महानारायणोपनिषद्	—	३५
१०.	सूर्यशतकम्	मयूरभट्ट	३५,९५,९९,
११.	विक्रमोर्वशीयम्	कालिदास	३५
१२.	रामायणम् (किष्किन्धा-काण्ड)	वाल्मीकि	३६
१३.	जानकीहरणम्	कुमारदास	३६
१४.	वायुपुराणम्	—	३६
१५.	शिशुपालवधम	माघ	३६,४२,४२,५४,६०,८६
१६.	भगवद्गीता	व्यास	३७
१७.	महिम्नःस्त्रोतम्		३७
१८.	कामसूत्रम्	वात्स्यायन	३९,६७
१९.	मालतीमाधवम्	भवभूति	४८,८६
२०.	अमरुशतकम्	अमरुक	४७
२१.	वृन्दावन यमककाव्यम्		५७
२२.	नारदस्मृतिः		५९
२३.	गोड़वहो	वाक्पतिराज	६२
२४.	विज्जका		६७
२५.	कादम्बरी	बाणभट्ट	७६,८८
२६.	मेघदूतम्	कालिदास	८६,९६
२७.	तैत्तिरीय संहिता		९९

४. राजशेखर के नाटकों के सुभाषित

प्राकृत-सुभाषित

१. अण्णोण्णमिलिदस्स मिथुणस्स मअरद्धअसासणेण परुढं पणअगंठि प्रेम्मं ति छइल्ला भणंति ।

२. अण्णं णिमित्तमिह किं पि तमत्थि मण्णे जेणंगणाओ हिअहिहिण ओसरंति।

३. अहिदेवअ व्व णिवसइ तह विहु तारुण्णाए लच्छी ।

४. आरंभरमणिज्जाइं कल्लाणाइं होंति ।

५. अहवा का वण्णणा वडलावली गंधभारवई

६. अदेवं देवउलं, अनक्खरो लेहो, जदो न दीसदि सा ।

७. एदं तं सीसे सप्पो देसंतरे वेज्जो ।

८. कधं अज्ज वि सो ज्जेव सिरिताली पत्तसंचओ ताओ ज्जेव अक्खरपंतीओ ।

९. को अण्णो चंदाहिंतो समुद्दवडण विअडो ।

१०. किं तुमं भज्जाजिदो विअ किंपि किंपि कुरुकुराअन्तो चिट्ठासि ।

११. किं ण कखु अणभिण्णसि कंदप्पचरिआणं । जं दाणिं णवं णवं कोऊहलं कामिजणे ।

१२. किं गदे सलिले सेदुवंधेण किं वा वुत्ते विवाहे नक्खत्तपरिक्खाए ।

१३. किं उव्वेल्लदि केलिकदलीए करिशुण्डादंडविडो ।

१४. किं विअ मक्कडो वरिट्ठाणं करणिज्जं पुच्छदि ।

१५. कधं महाभाअधेअजणकज्जसिद्धि विअ चिंततोवणदा पिअसही ।

१६. तुमं भण दाव उण अहं भणिस्सं । पढिमं सहआरमंजरी ।
उव्यिज्जईपच्छा तु कलकंठी मुहं सिढिलेदि ।

१७. ण हु सोवाणवंतिभतरेण वलही समारोहो ।

१८. मुणिणे वि एवंसुमरति, पादाहितों वहण पवित्तअंति सव्वं ।

१९. तुमं ज्जेव्व सव्वदो सारं उच्चिवसि । हंसो ज्जेव जलेहिं दुद्धमुद्धेरहि ।

२०. पुराणपत्तमणिक्कलिअ गो पल्लवो समुल्लसदि । ण अ तुरुणगंठिवण्ण अकंदली कखलणलुद्धो गंधहरिणे मदणकेदारिआए अहिरमदि ।

२१. केअई कुसुमवासिदस्स खदिरस्स अण्णे गंधुग्गारो ।

२२. ता मम विच्छुरदि तुण्डकण्डूः ।

२३. पारअरसचुंविअं विअ सुवण्णं से लावण्णं ।

२४. मूले वडललट्ठीए सुरागंडूससेओ कुसुमेसु मइरागंधुग्गारेति ।

२५. जइ चंदमणी हुअवंह णीसंदअदि को एत्थ पडीआरो ।

२६. ण हि सिणहो जुत्ताजुत्तमनुरुधेदि ।
२७. कथं विग्र सहग्रारलट्ठीए कलकंठा कुंठिदप्पणग्रा होदि ।
२८. तहा वि भगीग्रदि, सुदमंतसंखखणं कखु कज्जसिद्धीए कारणम् ।
२९. कथं विग्र जीग्रंतादो किकलासादो सिरसुवण्णं पावीग्रादि ।
३०. ण कखु मिग्रलंछणमुज्झीग्र ग्रण्णेण ससिकंतपुत्तलिग्रावद्धणिज्झरा वज्झरइ ।
३१. ण विण चदं सेहालिग्राए विग्रसंति कुसुमाइं ।
३२. ता चिरंपाइदव्वा जुण्गमंज्जरी दुद्धं ति कंजिग्रं ।
३३. पोम्मराग्रमणि एव्वं एग्रावलिं ग्रलंकरेदि ।
३४. गहु ग्रणुप्पी डिग्रो सहग्रारपिट्टगंठी रससव्वसं मुंचदि ।
३५. एसो ग्रवरो गंडस्स उवरि फुडिउब्भेदो ।
३६. कोच्चिरं वा चंदे पसादिदकरे ग्राविसट्टकदोट्टा णीलुप्पलिणी चिट्ठदि ।
३७. वरं तक्कालोवगदा तित्तिरी ण उण दिग्रहंतरिदा मौरी ।
३८. सहि कोसल्ले ण सव्वो रामभद्दो णग्ररे णग्ररे केकेयी ।
३९. हत्थे कंकणं किं दप्पणेण ।
४०. धावंतरस तुरंगभस्स सिग्धत्तणे किं साक्खिणो पुच्छीग्रंति ।
४१. ण कत्थूरिग्रा कुग्गामे वणे वा विक्कीणग्रदि, ग सुवग्णं कसवहिग्रं विणा कसीग्रदि ।
४२. णिसंगचंगस्स वि मागुसस्स सोहा समुम्मीलइ भूसणेहिं ।
४३. णहु विडुरभूमिं ग्रन्तरेण वेरुलिग्रमणिसलाग्रा गिप्पजदि ।
४४. दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ।
४५. हरिग्रंदपुरीव दिण पणट्ठा ग्र ।
४६. दरविलासिग्रथणीसु पुणो विवसई मग्ररद्धग्ररहस्सं ।
४७. रित्तत्तणदावग्गी विरमउ कमलाकडक्खवरिसेण ।
४८. रुदी का खंडणा ।
४९. छेग्रा पुणो पग्रइचंगिमभावणिज्जा ।
५०. जादिसो चित्तग्ररो तादिसी चित्तग्रम्मरुग्रसोहो, जादिसो कई तादिसी कव्वबन्धछ ग्रत्ति ।

संस्कृत-सुभाषित

१. ग्रखण्डितप्रसरा हि पुरुषकाराः कर्णाटानाम् ।
२. कलत्रहरणे पुंसां किं यदर्णवलङ्घनम् ।

३. सविघ्नविप्रुष एव काम्यक्रियारम्भाः ।
४. अनिर्वेदः सिद्धेर्मूलम् ।
५. अनुकूलं हि दैवं सर्वस्मै स्वस्ति करोति ।
६. अविमृश्यकारिता हि पुंसः परं परिभवस्थानम् ।
७. क्व नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ।
८. सुप्ततप्तकुपितानां हि भावज्ञानं द्रश्टव्यम् ।
९. सत्यं सत्यमिदं गीयते दुस्त्यजा प्रकृतिरिति ।
१०. हन्त हन्त नैकप्रकारो मदन-व्यापारः ।
११. न प्राणनिर्याणेऽप्युनुचितभावो भवन्ति भृत्याः ।
१२. अतिक्रान्ते वस्तुनि साक्षिप्रत्ययपरतन्त्रा व्यवहाराः ।
१३. आत्मवधः प्रथमः पातकेषु ।
१४. असतामपि महापुरुषशुश्रूषा किमपि कामदुग्धा ।
१५. आयुधनिपेध्या रिपवो न सामसाध्याः ।
१६. न विना हिमानीमचण्डो मार्तण्डः ।
१७. निरंकुशा कविवाचः ।
१८. स हि चन्द्रमसोऽनुभावो यदस्य ग्रावाणोऽपि निस्यन्दन्ते ।
१९. न च संदेहदेहो वीरव्रतनिर्वाहः ।
२०. अनाकलितसारा हिवीरप्रकाण्ड-प्रसूतिः ।
२१. सेयं कवीना वचनकामधेनुः । यदसतभूतमपि सूते ।
२२. डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरुणाम् ।
२३. न हि तरणि किरणस्पर्शादन्यो व्याधिरिन्दीवरवनस्य ।
२४. काललाभो हि नय विदां प्रयोगग्रामं कदलयति प्रयोग परतन्त्रा च कार्यं-सिद्धिः ।
२५. ईर्ष्यायितं हि स्त्रीणां प्रकाशकं प्रेमभरस्य ।
२६. किं हि दुष्करं साधुमेत्तेः किमसाध्यं वैदग्धस्य ।
२७. अयमपरः क्षते क्षारावसेकः ।
२८. देवि, दैवं शिक्षयति ।
२९. कः शक्तिमानपि मृगांकमूर्त्ति शिला पट्टके पिनष्टि ।
३०. सुप्तस्यापि महान् निनदः प्रतिबोधहेतुः ।
३१. अहो मर्ककीटस्याऽध्यवसायः ।
३२. स खल्वयस्कान्तमणेः प्रभावो यदयो द्रवति ।
३३. कियत्कालं जलदतिरस्करिणी मार्तण्डमण्डलमन्तरयति ।

३४. परिपालना हि भृत्यान् स्वामिनः स्मारयति न गुणग्रामः ।
३५. सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु ।
३६. प्रकृष्टं हि तपः कामदुघम् ।
३७. आलिप्यते आतृगात्रे कवोष्णः सोऽपि चन्द्रमाः ।
३८. एकविषयाभिलाषो हि वैरकन्दं कन्दलयति ।
३९. अनूचानो हि यद्ब्रूते सा स्वयंभूः सरस्वती ।
४०. यत्सत्यं मदिरां विनैव मदनो यूनां मनोन्मादभूः ।
४१. अहो महात्मनामपि कैतवानुगृहीता वृत्तयः ।
४२. संशये न च सतां प्रवृत्तयः ।
४३. शरीरधना हि राजानः ।
४४. किञ्च एकस्मिन्नपराद्धेऽपि तत्सहजचारिणोऽप्यपराद्धारः ।
४५. आकृतिमनु गृह्णन्ति गुणाः ।
४६. न प्रेम नव्यं सहतेऽन्तरायम् ।
४७. वैषम्यमेव वा विषं विषस्य :
४८. न चित्रशिखण्डिदाम्ना विना चकास्त्युदीची ।
४९. लेखमुखा एव लेखवाहा भवन्ति ।
५०. को हिनाम द्यूतजितानामुद्विजते मौखर्येण ।

नाट्यकृतियों में प्रयुक्त छन्द

		वाल-रामायण	वाल-भारत	कर्पूर-मंजरी	विद्धशाल-भंजिका	संख्या
१.	शार्दूलविक्रीड़ित ..	२०८	४१	२४	३९	३१२
२.	वसन्ततिलका ..	१६३	२५	२३	११	२२२
३.	अनुष्टुभ् ..	१२८	२५	..	३	१५६
४.	स्रग्धरा ..	९४	१२	११	१०	१२७
५.	मन्द्राकान्ता ..	६९	५	५	३	८२
६.	मालिनी ..	३८	५	७	१२	६३
७.	आर्या ..	१६	२	३२	१२	६२
८.	पृथ्वी ..	७	७	७	६	२७
९.	रथोद्धता ..	१	१२	९	..	२२
१०.	इन्द्रवज्रा ..	९	१	४	५	१९
११.	वंशस्थ ..	१३	१	१	१	१६
१२.	उपजाति ..	८	..	७	..	१५
१३.	पुष्पिताग्रा ..	५	..	२	२	९
१४.	उपेन्द्रवज्रा ..	३	..	३	२	८
१५.	स्वागता ..	१	..	४	१	६
१६.	शालिनी ..	४	१	१	..	६
१७.	शिखरिणी ..	४	..	१	..	५

१८.	हारिणी	..	२	१	..	१	४
१९.	प्रहर्षिणी	..	४	..	..	..	४
२०.	रुचिरा	..	३	..	..	..	३
२१.	गीति	..	१	..	२	२	५
२२.	उपगीति	..	१	..	१	१	३
२३.	हरिगीति	..	..	..	..	१	१

बालभारत

छन्दो विवरण

	छन्द का नाम		अंक १	अंक २
१.	शार्दूलविक्रीडित	..	२, ५, ६, ११, १६, १९, २२, २३, २६, २७, २९, ३३, ३४, ३५, ३८, ५०, ५२, ५५, ६२,६२,७०, ७१, ७७, ७८, ८२, ८५ ।	२, ४, ८ , १०, ११, १४, १७, २३, २७, २९, ३१, ३४, ३९, ४३, ५० ।
२.	वसन्ततिलका	..	३७, ४१, ४४, ४७, ४९, ५३, ५७, ५९, ६८, ७२, ७४, ७६ ।	९, २२, २४, २५, २६, २८, ३०, ४१, ४५, ४७, ४९, ५३, ५४ ।
३.	अनुष्टुभ्	..	१, ४, १०, १५, १८, ३६,४०, ४३, ४६,६१, ६४,६७, ८१, ८६,८८ ।	७, १२, १३, १६, १८, ३२, ३५, ३६, ४२, ४४ ।
४.	रथोद्धता	..	८, २४, ३९, ४२, ४५, ४८, ५१, ५४, ६०, ६३, ६६, ६९ ।	..
५.	स्रग्धरा	..	२५, ७३, ७५, ८४ ।	१, १५, ३६, ३८, ४६, ४८, ५१ ।
६.	पृथ्वी	..	३१, ८९ ।	३, १९, २०, २१, ५२ ।
७.	मालिनी	..	६,२१,३२,५६,८०,८७ ।	..
८.	मन्दाक्रान्ता	..	२८, ६५, ७९, ८३ ।	४० ।
९.	उपेन्द्रवज्रा	..	९, २० ।	..
१०.	आर्या	..	१०, १४ ।	
११.	इन्द्रवज्रा	..	१७ ।	..
१२.	हारिणी	..	३० ।	..
१३.	वंशस्थ	..	१२ ।	..
१४.	शालिनी	..	३ ।	..

विद्धशालभञ्जिका

छन्द का नाम	अंक १	अंक २	अंक ३	अंक ४	कुल
१. शार्दूलविक्रीडित ..	३, ७, १०, ११, १४, १५, २२, २३, २५, २९, ३३, ३९, ४०, ४३.	१, ५, ११, १२, १४, २०, २१, २२, २३.	१, २, १०, ११, १३, १४, १६, १९, २२.	५, ८, ९, १४, २०, २५, २६.	३९
२. आर्या ..	१६, २४, २६, २८.	१५, १६, १७, १८, १९.	६.	१५, १६.	१२
३. मालिनी ..	१, १८, ३०, ३६.	१०.	३, १५, १७.	२, ७, १७.	१२
४. वसन्ततिलका ..	१०, १९, २१, ३२, ३८, ३७, ३८, ४१.	३, ४, ९.	३१, २३. ..	.. ..	११
५. शिखरिणी ..	२०, ३१, ४४.	२.	९.	३, १२, १८.	८
६. स्रग्धरा ..	९, १२, १७, २७.	८.	७.	२१, २२, २३, २४.	१०
७. पृथ्वी ..	..	६, १३.	१२, २७.	१, ४.	६
८. इन्द्रवज्रा ..	३५.	....	४, ५.	१३, १९.	५
९. अनुष्टुभ् ..	२, १३.	...	..	२१.	३

१०. मन्दाक्रान्ता ..	..	..	२४, २५.	१०.	३
११. पुष्पिताग्रा ..	६, ४२.	..	..	५.	३
१२. गीति ..	४, ५.	..	..	..	२
१३. वंशस्थ ..	..	..	..	..	१
१४. उपगीति ..	..	..	१८.	..	१
१५. स्वागता ..	..	..	२६.	..	१
१६. हरिगीति ..	..	..	..	११.	१
१७. हारिणी ..	..	..	८.	..	१
१८. उपेन्द्रवज्रा ..	८.	..	२०.	..	१
	४४	२३	२७	२७	१२१

कर्पूरमञ्जरी

छन्द का नाम	अंक १	अंक २	अंक ३	अंक ४	कुल
१. शार्दूलविक्रीड़ित ..	१, १३, १६, १७, १८, २०, ३६, २९.	१, ३, ८, २७, २९, ४६.	१, ३, २५, २७.	४, ९, २२, २३.	२४
२. मन्दाक्रान्ता ..	३०, ३३.	२, २३, ३०.	..	..	५
३. वसन्ततिलका ..	१४, १९, २१, २४, २५, २७.	४, ५, ६, २६.	९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, २२.	५, ८, २१.	२३
४. स्रग्धरा ..	४, १५, २६.	१०, २८, ३१, ४१, ५०.	१९, २८, २९,	३०.	१

५.	पुष्पिताग्रा ..	२:	..	..	२.	२
६.	आर्या ..	३, ५, ७, ८, ९, १०.	१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, ३३, ४०, ४३, ४३, ४८, ४९.	८.	१, १९	३२
७.	गीति ..	६.	..	..	२४.	२
८.	रथोद्धता ..	११.	७.	२१, २३, २४, ३१, ३२, ३३, ३४.	..	९
९.	स्वागता ..	१२.	..	..	१६, १७, १८.	४
१०.	शालिनी ..	२३.	..	..	..	१
११.	मालिनी ..	..	२४, ४४, ९.	२, ७, १८.	२०.	७
१२.	इन्द्रवज्रा ..	२२.	७.	५, ६.	१०.	५
१३.	उपेन्द्रवज्रा ..	..	..	..	१४.	१
१४.	उपजाति ..	३१, २८.	२५.	..	११, १५, १२, १३, १४.	७
१५.	उपगीति ..	..	४५.	..	..	१
१६.	वंशस्थ ..	..	..	४.	..	१
१७.	पृथ्वी ..	३४.	३२, ४७.	२०, २६.	३, ६.	७
१८.	शिखरिणी ..	..	११.	..	..	१
		३६	५०	३४	२४	..

राजशेखर की सूक्तियाँ

(सुभाषित ग्रन्थों में)

शिव-विष्णु प्रार्थना

यद्‌वद्धार्धजटं यदर्धमुकुटं यच्चन्द्रमन्दारयो
धत्ते धाम च दाम च स्मितलसत्कुन्देन्दुनीलश्रियोः ।
तत्खट्वाङ्गरथाङ्गसंगविकटं श्रीकण्ठ वैकुण्ठयो—
र्वन्दे नन्दिमहोक्षतार्क्ष्यपरिषन्नामाङ्कमेकं वपुः ॥ (१)

शिव-नृत्य

भ्राम्यद्विश्वंभराणि भ्रमिचलन-नमत्कूर्मकुम्मीनसानि
त्रुटयत्ताराणि रिङ्गद्धरणिधरशिरः श्रेणिशीर्यद् दृणन्ति ।
दिक्कीर्णश्चिदम्पि द्रवदमरचमूचक्रचंचद्वियन्ति ।
व्यस्तन्तु व्यापदं वात्रिपुरविजयिनस्ताण्डवा रम्भणानि ॥ (२)

शिवभाल-शोभी चन्द्र

सः वः पायादिन्दुर्नवविसलताकोटिकुटिलः
स्मरारेर्यो मूर्ध्नि ज्वलनकपिशे भाति निहितः ।
स्रवन्भन्दाकिन्याः प्रतिदिवससिक्तेन पयसा
कपालेनोमुक्तः स्फटिकधवलेनाङ्कुर इव ॥ (३)

गौरी (विवाह के अवसर पर)

गोनासायनियोजितागदरजाः सर्पाय वद्धौषधिः ।
कण्ठस्थाय विषाय वीर्य्यमहतः पाणौ मणीन् बिभ्रती ॥
भर्तुर्भूतगणाय गोत्रजरतीनिर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च वः ॥ (४)

श्री राम

मार्तण्डैककुलप्रकाण्ड तिलकस्त्रैलोक्यरक्षामणि
विश्वामित्र महामुने निरुपधिः शिष्यो रघुग्रामणीः ।
रामस्ताडित ताडकः किमपरं प्रत्यक्षनारायणः
कौशल्यानयनोत्सवो विजयते भूकश्यपस्यात्मजः ॥ (५)

लक्ष्मी

प्रवीरहठभोग्यापि जयति श्रीर्महासती ।
कृत्स्नत्रैलोक्यवासापि कृष्णोरःस्थलशायिनी ॥१॥ (६)
विष्णुवक्षोगृहे लक्ष्मीरस्ति कौस्तुभदीपिके ।
पुनातुनिवसन्नी वो दृढदोः स्तम्भतोरणे ॥२॥ (७)

लक्ष्मीशृङ्गार

मिथ्याकण्डूतिसाचीकृतगल सरणिर्येषु जातो गरुत्मा
न्येनिद्रां नाटयद्भिः शयनफणिफणैर्लक्षिता न श्रुताश्च ।
ये च ध्यानानुवन्धच्छलमुकुलदृशा वेधसा नैव दृष्टा ।
स्ते लक्ष्मीं नर्मयन्तो निधुवनविधयः पान्तु वो माधवस्य ॥ (८)

कविन्प्रशंसा

सरस्वतीपवित्राणां जातिस्तत्र न देहिनाम् ।
व्यासस्पर्धी कुलालोऽऽभूद्द्रोणो भारते कविः ॥ (९)
हुता शिखिनि गौणाढ्या स्तोक शेषाऽपि साकथा ।
सुरलीढेन्दुलेखेव लोके पूज्यतमाऽभवत् ॥ (१०)
स्वस्ति पाणिनयो तस्मै यस्य रुद्रप्रसादतः ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवती जयम् ॥ (११)
भास नाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न न पावकः ॥ (१२)
तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौ रामिलसौमिलौ
काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥ (१३)
पृथिव्यां ग्रथिता गाथा सातवाहनभूभुजा ।
व्यदधुस्तेतु विस्तारमहो चित्र परम्परा । (१४)
सरस्वतीव कार्णाटी विजयांका जयत्यसौ ।
या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥ (१५)
आदौ गणपतिं वन्दे महामोदविधायिनम् ।
विद्याधरमणेर्यस्य पूज्यते कण्ठगर्जितम् ॥ (१६)
दूरादपि सतां चित्ते लिखित्वाश्चर्यमञ्जरीम्
कुलशेखरवर्माऽस्यां चकाराश्चर्यमञ्जरीम् ॥ (१७)
अनुप्रासिनि सन्दर्भे गोनन्दसमः कुतः ।
यथार्थनामतैवास्य यद् वाग्वदति चारुताम् ॥ (१८)

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ (१९)
मायुराजसमो जज्ञे नान्यः कलचुरिः कविः ।
उदन्वतः समुत्तस्थुः कति वा तुहिनांशवः ॥ (२०)
जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥ (२१)
पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे लघु सुभद्रया ।
कवीनां च वचोवृत्तिचातुर्येण सुभद्रया ॥ (२२)
शीलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि ॥ (२३)
के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रंजिताः ।
निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः ॥ (२४)
कालंजरपतिश्चक्रे भीमटः पंचनाटकीम् ।
प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननम् ॥ (२५)
अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातंगदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्या भवत्सभ्यः समो वाणमयूरयोः ॥ (२६)
दर्पं कविभुजंगानां गता श्रवणगोचरम् ।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाक् निकृन्तति ॥ (२७)
मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे ।
इतीव स कृतो धात्रा कविरत्नाकरोऽपरः ॥ (२८)
कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्थविजयं क्षमः ।
तदर्थः शक्यते द्रष्टुं लोचनद्वयिभिः कथम् ॥ (२९)
द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः ।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयः ॥ (३०)
सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानांच विलासभूः ।
प्रभुर्देवी कविर्लाटी गताऽपि हृदि तिष्ठति ॥ (३१)
वाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
प्रायः कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ (३२)
भासो रामिलसौमिलौ वररुचिः श्री साहसांकः कविः
मांघो भारविकालिदासतरलाः स्कन्धः सुबन्धुश्चयः ।
दण्डी वाण-दिवाकरौ गणपतिः कान्तश्चरत्नाकरः ।
सिद्धा यस्य सरस्वती यदि भवेत्के तस्य सर्वेऽप्यमी ॥ (३३)

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृंङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥ (३४)
सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकथा ।
वाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ॥ (३५)
कृत्स्न् प्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवे: ।
माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥ (३६)
वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम् ।
आविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्धानं कविकुंजरा ॥ (३७)
ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्वनिवेशिना ।
आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः ॥ (३८)
यायावरकुलश्रेणेर्हारयष्टेश्चमण्डनम् ।
सुवर्णवन्धरुचिरस्तरले स्तरलो यथा ॥ (३९)
अकालजलदश्लोकैश्चित्रात्मकृतैरिव ।
जातः कादम्वरीरामो नाटके प्रवरः कविः ॥ (४०)
अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका ।
नित्यं कविचकौरैर्या पीयते न च हीयते ॥ (४१)
नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डलम् ॥ (४२)

सत्पुरुष प्रशंसा

उदन्वच्छन्ना भूः स च निधिरपां योजनशतं
सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं गणयति ।
इति प्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः
सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते ॥ (४३)
नूनं दुग्धाब्धिमन्थोत्थाविमौ सुजनदुर्जनौ ।
किन्त्विन्दोः सोदरः पूर्वः कालकूटस्य चेतरः । (४४)

स्त्री

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः ।
विरुपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥ (४५)

सतीवर्णन

अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्य ोपचर्या स्वयम् । (४६)

सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा अमी ॥ (४७)
निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि ।
पत्युर्मित्रजने सनर्मवचना खिन्ना च तद्द्वेषिषु
स्त्रीणां संवननं नतभ्रु तदिदं वातौषधं भर्तृषु ॥ (४८)

पश्चिमी प्रदेश की स्त्री

खेलं संचरितुं तरङ्गसरलभ्रूलेखमालोकितुं
रम्यं स्थातुमनादरार्पितमनोमुद्रं च संभाषितुम् ।
संत्यज्योज्जयिनीजनीर्विवदितुं हृद्यं च लङ्कापते ।
प्रत्यङ्गार्पणसुन्दरं च न जनो जानाति रन्तुं पुरः ॥ (४९)
प्रपञ्चितकलातन्त्रे पांचालीकेलिकर्मणि ।
सर्वास्त्रमोक्षं लभते समं कुसुमकार्मुकः ॥ (५०)
चकोर्य एव चतुराश्चन्द्रिकापानकर्मणि ।
आवन्त्य एव निपुणाः स्त्रियः सुरतकर्मणि ॥ (५१)
ताटङ्कवल्गनतरङ्गित गण्डलेख–
मानाभिलम्बिदरदोलिततारहारम् ।
आश्रोणि-गुल्फ-परिमण्डलितोत्तरीयं
वेशं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम् ॥ (५२)

उत्तर-पूर्व की स्त्री

अत्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहार—
सीमन्तचुम्बिसिचयस्फुटबाहुमूलः ।
दुर्वाप्रकाण्डरुचिरासु गुरुपभोगो
गौडाङ्गनासु चिरमेष चकास्ति वेषः ॥ (५३)

दक्षिणात्य स्त्री

आमूलतो वलितकुन्तल चारुचूड़
चूर्णालकप्रकरलाञ्छितभालभागः ।
कक्षानिवेशनिविडीकृतनीविरेष
वेषश्चिरं जयति कुन्तलकामिनीनाम् ॥ (५४)
नेत्रयात्राशरक्षेपैस्त्रयम्बकस्यापि ताडनी ।
भ्रूलता द्रविड़स्त्रीणां द्वितीयं कामकार्मुकम् ॥ (५५)

नायिका
(किंचिदुपारुढ़-यौवना)

पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्यां
श्रोणीविम्वं त्यजति तनुतां सेवते मध्यभागः ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं च वक्त्रम्
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥ (५५)

युवती

तरन्तीवाङ्गानि स्फुरदमललावण्य-जलधौ
प्रथिम्नः प्रागल्भ्यं स्तनजघनमुन्मुद्रयति च ।
दृशोर्लीलारम्भाः स्फुटमपवदन्ते सरलता—
महो सारङ्गाक्ष्यास्तरुणिमनि गाढःपरिचयः ॥ (५६)

मुग्धा

ध्रुवमुदधितटीषु वल्लयस्ता
यदुदिततन्तुचयैर्भवन्ति काञ्च्यः ।
इह हरिणदृशः फलैर्यदीयै
र्विदधति मौक्तिकनदामभिश्च हारान् ॥ (५७)

लक्षित विरहिणी

आहारे विरतिः समस्तविषयग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः ।
मौनं चेदमिदं च शून्यमखिलं यद्विश्वमाभाति ते
तद्ब्रूयाः सखि योगिनी किमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि । (५८)
यत्तालीदलपाकपाण्डुवदनं यन्नेत्रयोर्दुर्दिनं
गण्डः पाणिनिषेवणाच्च यदयं संक्रान्त-पंचाङ्गुलिः ।
गौरी क्रुध्यतु वर्तते यदि न ते तत्कोपि चित्ते युवा
धिक्धिक् त्वां सहपांशुखेलन-सखीवर्गेपि यन्निह्नवः ॥ (५९)

नायिकागमन

नितम्वगुर्वी वहुशः श्रमेण
विश्रम्य सोपानपदेषु काचित् ।
कांचीकरालम्बितवामपाणि
रुत्थाय हर्म्यं कलयारुरोह ॥ (६०)

विरहिणी रोदन

मुक्तानङ्गः कुसुमविशिखान्पञ्च चूर्णीकृताग्रा
न्मन्ये मुग्धां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारुणेन ।
वारां पूरः कथमितरथा स्फारनेत्रप्रणाली
वक्रोद्वाहस्त्रिवलिविपिने सारणी-साम्यमेति ॥ (६१)

पक्ष्मान्ते स्खलिताः कपोलफलके लोलं लुठन्तः क्षणं
धारालास्तरलोच्छलत्तनुकणाऽ पीनस्तनास्फालनात् ।
कस्माद् ब्रूहि तवाद्य कण्ठविगलन्मुक्तावलीविभ्रमं
बिभ्राणा निपतन्ति वाष्पपयसां प्रस्यन्दिनो बिन्दवः ॥ (६२)

उपालम्भ

चन्द्रोपालम्भ

प्रियविरहमहौष्ण्यान्मुर्मुरामङ्गलेखा–
मयि हतकहिमांशो मा स्पृश क्रीडयापि ।
इह हि तव लुटन्तः प्लोषभावं भजन्ते
दरजरठमृणाली-काण्डमुग्धा मयूखाः ॥ (६३)

सूतिर्दुग्धसमुद्रतो भगवतः श्रीकोस्तुभौ सौदरौ
सौहार्दं कुमुदाकरेषु किरणाः पीयूषधाराकिरः ।
स्पर्धा ते वदनाम्बुजैर्मृगदृशां तत्स्थाणुचूडामणे
हंहो चन्द्र कथं न मुञ्चसि मयि ज्वालामुचो वेदनाः ॥ (६४)

मदनोपालम्भ

आपुङ्खाग्रममी शरा मनसि मे मग्नाः समं पञ्च ते
निर्दग्धं विरहाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं मम ।
कष्टं काम निरायुधोसि भवता जेतुं न शक्यो जनो
दुःखी स्यामहमेक एव सकलो लोकः सुखं जीवतु ॥ (६५)

चन्द्र

(चन्द्रकला)

लेखामनङ्गपुरतोरणकान्तिभाज–
मिन्दोर्विलोकय तनूदरि नूतनस्य ।
देशान्तरप्रणयिनोरपि यत्र यूनो–
र्नूनं मिथः सखि मिलन्ति विलोकितानि ॥ (६६)

चन्द्रमा

सद्यः कुंकुमपंकपिच्छिलमिव व्योमाङ्गणं कल्पयन्
पश्चैरावत-कान्तदन्तमुसलच्छेदोपमेयाकृतिः ।
उद्गच्छत्ययमच्छमौक्तिमणिप्रालम्वलम्वैः करैः
मुग्धानां स्मरलेखवाचनकलाकेलि-प्रदीपः शशी ॥ (६७)

चन्द्ररश्मि

ये पूर्वं यवशूकसूचिसुहृदो ये केतकाग्रच्छद–
च्छायाधामभृतो मृणाललतिकां लावण्यभाजश्च ये ।
ये धाराम्वुविडम्विनः क्षणमथो ये तारहारश्रिय––
स्तेमी स्फाटिकदण्डडम्वररुचो जाताः सुधांशोःकराः ॥ (६८)

कपाले मार्जारः पयः इति करांल्लेढि शशिन––
स्तरुश्छिद्रप्रोतान् विसमिति करी संकलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विह्वलयति ॥ (६९)

ज्योत्स्ना

सद्यः पाटित-केतको दरदलश्रेणीश्रियं विभ्रती
येयं मौक्तिकदामगुम्फनविधौ योग्यच्छविः प्रागभूत् ।
उन्मेयाकलशीभिरंजलिपुटैर्ग्राह्या मृणालाङ्कुरैः
पातव्या च शशिन्यमुग्धविभवे सा वर्तते चन्द्रिका ॥ (७०)

बहुरूपचन्द्र

प्रथममरुणच्छाय स्तावत्ततः कनकप्रभ
स्तदनु विरहोत्ताम्यत्तन्वी-कपोलतलद्युतिः ।
प्रभवति ततो ध्वान्तध्वंसक्षमः क्षणदामुखे
सरसविसिनीकन्दच्छेदच्छविर्मृग-लांछनः ॥ (७१)

सकलंक

शेषस्याहेर्व्रजति तुलनां मण्डलीभूतमूर्ते–
रिन्दुः कुन्दस्तवकविशदः पार्वणोऽयं यथैव ।
व्योमाम्भोधौ सजलजलदश्यामरोचिस्तथोच्चै–
रंकः शंकामयमपि हरेस्तत्र सुप्तस्य धत्ते ॥ (७२)

स्फटिकालवालक्ष्मीं प्रवहति शशिविम्वमम्वरोद्याने ।
किरणजलसिक्त-लाञ्छन-वालतमालैकविटपस्य ॥ (७३)

चन्द्राभास

यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो वेशेन रागान्वितः
स्वैरं शीतकरः करं कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन् ।
शीतस्पर्शमवाप्य संप्रति तथा गुप्ते मुखाम्भोरु हे
हासेनैव कुमुद्वतीवनितया वैलक्ष्यपाण्डूकृतः ॥ (७४)

मिश्रकचन्द्र

चिताचक्रं चन्द्रः कुसुमधनुषो दग्धवपुषः
कलङ्कस्तस्यायं वहति मलिनाङ्गार तुलनाम् ।
अथैतस्य ज्योतिर्दरदलितकर्पूर धवलं
मरुद्भिर्भस्मेव प्रसरति विकीर्णं दिशि दिशि । (७५)

बहुरूपकचन्द्र

फेनः क्षीराम्बुराशेरयमुदयगिरेस्तुंगशृंगातपत्रं
पूर्वस्या भालदेशे तिलक इव दिशो दर्पणो यामिनीनाम् ।
वापीनां राजहंसः परिलसिततसटः केशरीकाननाना–
माकाशस्याट्टहासः कुमुदवनचयाब्दोद्यशंखः शशांकः ॥ (७६)

चन्द्रोदय

यस्त्रैलोक्यजितः स्मरस्य किमपि क्रीडातडागं महद्
पश्चाभोगभृतो भुवः प्रकटिताकारार्पणे दर्पणः ।
सोयं सुन्दरि मन्दराद्रिमथित-क्षीरोदसारोच्चय
श्चन्द्रः कुंकमपंकपिण्डलडहच्छायः समुग्दच्छति ॥ (७७)
असावेकद्वित्रिप्रभृतिपरिपाट्या प्रकटयन्
कला स्वैरं स्वैरं नवकमलकन्दांकुररुचः ।
पुरन्ध्रीणां प्रेयोविरहदहनोद्दीपितदृशां
कटाक्षेभ्यो बिभ्यन्निभृत इव चन्द्रोभ्युदयते ॥ (७८)
पर्णे नागरखण्डमार्द्रसुभगं पूगीफलं फालयः
कर्पूरस्य च यत्र कोऽपि चतुरस्ताम्बूलयोगक्रमः ।
देशः केरल एष केलिसदनं देवस्य शृंगारिण
स्तं दृष्टा कुरु कोमलांगि सफले द्राघीयसी लोचने ॥ (७९)
वाक्सत्वांगसमुद्भवैरभिनयैर्नित्यं रसोल्लासतो
वामाङ्गयः प्रणयन्ति यत्र मदनक्रीड़ा महानाटकम् ।
अग्रान्ध्रास्तव दक्षिणेन त इमें गोदावरीस्रोतसां
सप्तानामपि वानिधिप्रणयिनां द्वीपान्तराणि श्रिताः ॥ (८०)

यत्क्षेमं त्रिदिवाय वर्त्म निगमस्याङ्गं च यत्सप्तमं
स्वादिष्टं च यदैक्षवादपि रसाच्चक्षुश्च यद्वाङ्गमयम्।
तद्यस्मिन्मधुरं प्रसादि रसवत्कान्तं च काव्यामृतम्
सोयं सुभ्रु पुरो विदर्भविषयः सारस्वतीजन्मभूः ॥ (८१)

एतन्मालवमण्डलं विजयते सौजन्यरत्नांकुरैः
संपद्विभ्रमधामभिः किमपरं शृंगारसारैर्जनैः ॥
यत्रारुह्य विचित्रचित्रवलभीर्लीला शिलासद्मनां
नीयन्ते जलदोदयेषु दिवसाः कान्तासखैः कामिभिः। (८२)

संग्राम

कुपितखड्ग:

वीरश्रीवेणिबन्धो भुजभुजगफणा शत्रुषु भ्रूपताका
देवस्य प्रेतभर्तुः स्फुरदुरुपतना द्वीपिनी वीचिदण्डः।
क्रोधाग्नेर्धूमवर्तिः सुरयुवतिदृशां शृंखलादाम दीर्घं
लक्ष्मीलीलाकटाक्षः प्रतिसमरमभूद्यस्य जैत्रः कृपाणः ॥ (८३)

संग्रामधूलि

यस्याहवे हयचमूखुरखण्डितोर्वी
पांसु प्रसारपरिपूर्तिभिया वहन्ति।
नेत्राणि नित्य-विकचानि मरुत्तरुण्यो
नीरन्ध्रपाणिपुटयुग्मपिधानवन्ति ॥ (८४)

रिपुसंभ्रम

मुग्धे किं शुकपंजरेण रसिके किं सारिकान्वेषणैः
सुस्थे मुचसि किं न चित्रफलकं किं वीणया रागिणि॥
नायं भूषणसंग्रहस्य समयः लीलावती वर्यता—
मित्यासन्पुरविद्रवे भवदरिस्त्रीणां वयस्यागिरः ॥ (८५)

धनुर्भङ्ग

रामं रुद्रशरासनं तुलयति स्मित्वास्थितं पार्थिवैः
शिंजासज्जनतत्परे च हसितं दत्वा मिथःतालिकाः।
आरोप्य प्रचलाङ्गुली किसलये म्लानं गुणास्फालने
स्फाराकर्षणभग्नपर्वणि पुनः सिंहासने मूर्च्छितम्॥ (८६)

हनुमदादि का शौर्य

वक्तीति वानरबलानि हसन्हनूमा—
न्मद्रोमवल्लिषु दृढं कुरु तावलम्बम्।

येनैव सागरमहं लघु लङ्घयामि
किं सेतुना समरकर्मणि वो नयामि ॥ (८७)
नीलेन सैन्यपतिता प्रभुताड़नान्ते
मुक्त स्तथा किलकिलाध्वनिरेष रौद्रः ।
स्रष्टापि वांछति सरोजभवः श्रवांसि
शङ्के यथा करयुगेन मुधा पिधातुम् ॥ (८८)

ऋतुचक्रवाल

वसन्त का आरम्भ

गर्भग्रन्थिषु वीरुधां सुमनसो मध्येऽङ्कुरं पल्लवा
वाञ्छामात्रपरिग्रहः पिकवधूकण्ठोदरे पञ्चमः ।
किं च त्रीणि जगन्ति जिष्णुदिवसैर्द्वित्रैर्मनोजन्मनो
देवस्यापि चिरोज्झितं यदि भवेदभ्यासवश्यं धनुः ॥ (८९)

वसन्तः

जम्बूनां कुसुमोदरेष्वतिरसादाबद्धपानोत्सवाः
कीराः पक्वफलाशया मधुकरी श्चुम्बन्ति मुञ्चति च ।
एतेषामपि पश्य किंशुकतरोः पत्रैरभिन्नत्विषां
पुष्पभ्रान्तिभिरापरान्ति सहसा चक्षुषु भृङ्गाङ्गनाः ॥ (९०)
ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मन्युतन्तुच्छिदो ये
सद्यः शृंगारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि ।
ते कण्ठे लोलयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं ।
वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजय-महासाक्षिणो दक्षिणात्याः ॥ (९१)

वसन्तपथिक

सव्याधेः कृशताक्षतस्य रुधिरं दंष्ट्रस्य लालासवः
सर्वं नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः ।
आ ज्ञानं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥ (९२)

ग्रीष्मवेश

जलार्द्रं सव्यानं विसकिसलयैः केलिवलयाः
शिरीषैरुत्तंतः विचकिलमयी हाररचना ।
शुचावेणाक्षीणां मलयजरसार्द्रश्च तनवो
विना तन्त्रं मन्त्रं रतिरमणमृत्युञ्जयविधिः ॥ (९३)

शृङ्गारात्मक ग्रीष्म

हरन्ति हृदयानि यच्छ्रवणशीतला वेणवो
यदर्चति करम्बिता शिशिरवारिणा वारुणी।
भवन्ति च हिमोपमा स्तनभुवो यदेणीदृशां
शुचेरुपरि संस्थितो रतिपतेः प्रसादो गुरुः ॥ (९४)

शिशिर-सुख

चूडागर्भनिवेशिदाम विकलं मुक्ताफलैर्भूषणैः
स्त्रीणां कुङ्कुमपिच्छिलाः स्तनभुवो गूढोदरं मन्दिरम्।
छिन्नास्तूलपटाः प्रसर्पदगुरुग्रामाश्च धूमोद्गमाः
संभोगाय भवन्ति चात्र कृतिनां दीप्ता विशालाग्नयः॥ (९५)

शिशिर-स्वभाव

वह्नेः शक्तिर्जलमिव गता दर्शनाद्दाहवृत्ते
नित्योत्संधौ नवमकुरवके वर्तते पुष्पकार्यम्।
शीतात्त्रासं दधदिव रविर्याति चाशां कृशानो
र्नीहारार्तेरिव च दिवसाः सांप्रतं संकुचन्ति॥ (९६)

ग्रीष्मस्वभाव

धत्ते पद्मलता दलेप्सुरुपरि स्वं कर्णतालं द्विपः
शष्पस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्ये-शिखण्डं शिरः।
मिथ्यालीढमृणालकोटिरभसाद् दंष्टाङ्कुरं शूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायं महाकर्दमम्॥ (९७)

वसन्त तरवः

साम्यं साम्प्रति सेवते विचकिलं षाण्मासिकैर्मौक्तिकै
र्वाह्लीकीरदनच्छटारुणतरैः पत्रैरशोकोऽर्चितः।
भृङ्गीलंघितकोटिकिंशुकमिदं किंचिद्धि वृन्तायते
माञ्जिष्ठैर्मुकुलैश्च पाँटलितरोरन्यैव काचिल्लिपिः॥ (९८)

दक्षिणवात

आन्ध्रीनीरन्ध्र-पीनस्तनतट-लुठनायासमन्द्र—प्रचारा
श्चारुन्नुल्लासयन्तो द्रविड़वरवधूहारधम्मिलभारान्।
जिघ्रन्तः सिंहलीनां मुखकमलवनं केरलीनां कपोलं
चुम्बन्तो वान्ति मन्दं मलयपरिमला वायवो दाक्षिणात्याः॥ (९९)

ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मन्युतन्तुच्छिदो ये
सद्यः शृंगारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि।
ते कण्ठे लोठयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं
वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः। (१००)

मदन

सुधासूतेर्वन्धुर्मधुसहचरः पञ्चमरुचि–
र्दिशंल्लीला वल्लीः कुवलयदृशां नर्मणि गुरुः।
सदैवः शृंगारी हृदयवसतिः पञ्चविशिखः
सदा स्वादून् कुर्वन्मधुमदविकारान् विजयते॥ (१०१)

मदनशौर्य

कुलगुरुरवलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीला नाटिकासूत्रधारः॥ (१०२)

मदनलेख

ताडीदलं यदकठोरमिदं यदेषा
मुद्रास्तनाङ्कघनचन्दनपङ्कमूर्तिः।
यद्बन्धनं विसलता तनुतन्तुभिश्च
कस्याश्चिदेष गलितस्तदनङ्गलेखः॥ (१०३)

पाणिप्रेंङ्खणतो विशीर्णशिरसः स्वेदाम्बुभग्नश्रियः
तत्कृत्याकृतिलेशतो मनसि ते किंचित्प्रतीतिं गताः।
वैचित्र्यात्पुनरुक्त लाञ्छनभृतः खण्डेन वामेन वा
व्याक्षेपं कथयन्ति पक्ष्मलदृशोः लेखाक्षरश्रेणयः॥ (१०४)

मदनोपालम्भ

आपुङ्खाग्रममीशरा मनसि ते मग्नाः समं पञ्च ते
निर्दग्धुं विरहाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं मम।
कष्टं काम निरायुधोसि भवता जेतुं न शक्यो जनो
दुःखी स्यामयमेक एवं सकलो लोकः सुखं जीवतु॥ (१०५)

कटाक्ष

प्रणालीदीर्घस्य प्रसृमरतरङ्गस्य सुहृदः
कटाक्षव्याक्षेपाः शिशुशफरफालप्रतिभुवः।

सुधायाः सर्वस्वं कुसुमधनुषोस्मान् प्रतिसखे
नवं नेत्राद्वैतं कुवलयदृशः संनिदधति ॥ (१०६)

विलोकन

भवनभुवि सृजन्तस्तारहारावतारान्
दिशि दिशि विदिशन्तः केतकानां कुटुम्बम् ।
वियति च रचयन्तश्चन्द्रिकां मुग्धमुग्धां
प्रतिनयननिपाताः सुभ्रुवो विभ्रमन्ति ॥ (१०७)

स्वप्न

क्व पेयं ज्योत्स्नाम्भो वदत विसवल्लीसरणिभि
र्मृणालीतन्तुभ्यः सिचयरचना कुत्र भवतु ।
क्व वा पारीमेयो वत वकुलदाम्नां परिमलः
कथं स्वप्नः साक्षात्कुवलयदृशं कल्पयतु ताम् ॥ (१०८)

नायकाभिलाषा

न नीलाब्जं चक्षुः सरसिरुहमेतन्न वदनं
न बन्धूकस्येदं मुकुलमधरस्तद्द्युतिधरः ।
ममाप्येषा भ्रान्तिः प्रथममभवद्भृङ्ग किमुते
कृतं यत्नैरेभ्यो विरम विरमेत्यञ्जलिरयम् ॥ (१०९)

गुणकीर्तन

तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा हा हेम सा चेद्युति
स्तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्तच्चेत्स्मितं का सुधा ।
धिक्कन्दर्पधनभ्रुवो च यदि ते किं वा बहु ब्रूमहे
यत्सत्यं पुनरुक्त-वस्तुविमुखः सर्गक्रमो वेधसः ॥ (११०)

नायक आगमन

द्वारगतं काप्यवगम्य कान्तमुन्नम्य वक्त्रं सिचयाञ्चलेन ।
विमुञ्चती मण्डनकर्मदीर्घं यथायथात्मानमलंचकार ॥ (१११)
काप्यागतं वीक्ष्य मनोधिनाथं समुत्थिता सादरमासनाय ।
करेण शिञ्जद्वलयेन तल्पमास्फालयन्ती कलमाजुहाव ॥ (११२)

नायिका-गमन

नितम्बगुर्वी बहुशः श्रमेण विश्रम्य सोपानपदेषु काचित् ।
काञ्चीकरालम्बितवामपाणि-रुत्थाय हर्म्यं कलयारुरोह ॥ (११३)

भ्रूः

अकौसुमी मन्मथचापयष्टि रनंशुका विभ्रमवैजयन्ती।
ललाटरङ्गाङ्गणनर्तकीयमनञ्जना भ्रूरनुयाति दृष्टिम् ॥ (११४)

मध्य-भाग

कुचकलशमहिम्ना श्रोणिभारप्रथिम्ना
विहितनिविडपीडास्तां द्वयी मुद्विपण्णाः।
चिरमुदरतरंगश्रेणिमार्गेण यासां
भ्रुकुटिमिव वहन्ति क्रोधतो मध्यभागाः ॥ (११५)

स्तन

सजन्मानो तुल्यावपि जनितुराजन्म च सह
प्रवृद्धो नाम्ना च स्तन इति समानावुदयिनौ।
मिथः सीमामात्रे यदिदमनयोर्मण्डलभृतो
रपि स्पर्धा नूनं तदिह हि नमस्या कठिनता ॥ (११६)

वेश

कण्ठे मौक्तिकमालिका स्तनतटे कार्पूरमध्यं रजः
सान्द्रं चन्दनमङ्कके वलयिता पाणौ मृणालीलता।
तन्वी नक्तमियं चकास्ति शुचिनी चीनांशुके बिभ्रती
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहतः ॥ (११७)

जलक्रीडा

मौक्तुं स्नानांशुकानि स्मररभसरसस्यानुकूलैर्दुकूलैः
संस्कर्तुं केशपाशानगुरुसुरभिणा धूपधूमोद्गमेन।
ताम्बूलोल्लेखरेखामपि विरचयितुं धौतपृष्ठेधरोष्ठे
तीरोत्तीर्णास्तरुण्यः क्षणमुपविविशुर्वल्लिकेलीगृहेषु ॥ (११८)

कन्दुकक्रीडा

अमन्द-मणिनुपूर-प्रचुरचारु-चारक्रमं
झणज्झणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम्।
इदं तरलकङ्कणं वलिविशेषवाचालितं
मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडितम् ॥ (११९)

अस्याः स्वेदाम्बुविन्दुच्युततिलकतया व्यक्त-वक्त्रेन्दुकान्तेः
पर्यायात्कन्दुकस्य प्रहणनगणना केलिवाचालितायाः।

उत्पातोत्ताल-तालक्रम-नमितदृशस्तत्ताडनोत्तालत्ताली
लीलाख्यामानिताः स्मः प्रतिपदममुना कन्दुकक्रीडितेन ॥ (१२०)
चेलाञ्चलेन चलहारलताप्रकाण्डै-
र्वेणीगुणेन च वलाद्वलयीकृतेन ।
स्वेच्छाहितभ्रमरक भ्रमिमण्डलीभि-
रन्यं रसं रचयतीव चिरं नतभ्रूः ॥ (१२१)
शिखामणिरितोरुणस्तिलकयत्ययं मेदनी
मितोगलितगुम्फनास्तरलवेणिवान्ताः स्रजः ।
इतश्चुरितमन्तरा त्रुटितहारमुक्ता-फलै
रितः श्रवणपाशतः कमलपत्रमास्ते च्युतम् ॥ (१२२)

वनविहार

उज्झन्त्यः स्वर्णकाञ्चीर्झणिति रशनया चम्पकन्यासमय्या ।
तन्वन्त्यस्तारहारान्विचकिल-कलिकापङ्क्ति-मुद्रावलीभिः ।
किं चाशोक-प्रवालैररुणमणिमयान् संत्यजन्त्योवतंसा-
नुत्कीर्णाः कामवाणैरिव हृदि सुहृदो वल्लभानां वभूवुः ॥ (१२३)

उद्वेग-कथन

सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं
हारात्त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेशं विषं मन्यते ।
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारिशय्यातले
संकल्पोपनत-त्वदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा ॥ (१२४)

तनुता

दोलालोलाः श्वसनमरुत श्चक्षुषी निर्झराभे
तस्याः शुष्यत्तगरसुमनःपाण्डुरा गण्डभित्तिः ।
तद्गात्राणां किमिव हि बहु ब्रूमहे दुर्बलत्वं
येषामग्रे प्रतिपदुदिता चन्द्रलेखाप्यतन्वी ॥ (१२५)

निशावस्था

तापोम्भःप्रसृतिम्पचः प्रचयवान् बाष्पः प्रणालोचितः ।
श्वासा नर्तितदीपवर्तिलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः
किं चान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वद्वर्त्मवातायने
हस्तच्छत्रनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिवर्तते ॥ (१२६)

सन्तापकथन

एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्योद्य नः
स्निग्धेनापि जनेन दाहभयतः प्रस्थम्पचः पायसाम् ।
निर्वीयीकृत-चन्दनौषधविधौ तस्मिंश्चटत्कारिणो
लाज-स्फोटममी स्फुटन्ति मणयो विश्वेपि हाररत्रजाम् ॥ १२७)

नखक्षत

राजन्ति कान्तनखरक्षतयो मृगाक्ष्या
लाक्षारसद्रवमुचः कुचयोरुपान्ते ।
अन्तःप्रवृद्ध-मकरध्वज-पावकस्य
शङ्के विभिद्य हृदयं निरगुः स्फुलिङ्गाः । (१२८)

मानभङ्ग

चेतस्यङ्कुरितं विसारिणि दृशोर्द्वन्द्वे द्विपत्रायितं
प्रायः पल्लवितं वचस्युपचितं प्रौढ़ं कपोलस्थले ।
तत्तत्केकोपविचेष्टिते कुसुमितं पादानते तु प्रिये
मानिन्यां फलितंनु मानतरुणा पर्यन्तवन्ध्यायितम् ॥ (१२९)

शयनाधिरोहण

प्रत्यङ्गं प्रतिकर्म नर्मपरया कृत्वाधिरुढं स्मरा
दौत्सुक्यं प्रविलोक्य मोहनविधौ चातुर्यमालोक्य च ।
सद्यो यावकमण्डनं न रचितं पादे कुरङ्गीदृशा
स्मेरान्ता विशदच्छदे च शयने दृष्टिः समारोपिता ॥ (१३०)

पर्यंकाङ्कतलं गते रतिरसाव्यक्तक्रमं वल्लभे
तद्भावावगतौ तयापि रतये स्वं चित्तमाविष्कृतम् ।
नात्ते यन्मणिकुण्डले परिहृतो हारः समं कङ्कणैः
काञ्चीदाम निराकृतं विचकिलैः क्लृप्तश्च नो शेखरः ॥ (१३१)

संभोगान्त

आवृण्वाना झटिति जघनं मद्दुकूलाञ्चलेन
प्रेङ्खल्लीलालुलितकवरीबन्धन-व्यग्रपाणिः ।
अर्धोच्छ्वासस्फुटनखपदालंकृताभ्यां स्तनाभ्यां
दृष्टा धार्ष्ट्यादवनतमुखी सा मया मोहनान्ते ॥ (१३२)

प्रियसम्बोधन

विलिम्पत्येतस्मिन्-मलय रजसार्द्रेण महसा
दिशां चक्रं चन्द्रे सुकृतमिदमस्या मृगदृशः।
दृशोर्बाष्पः पाणौ वदनमसवः कण्ठकुहरे
हृदि त्वं ह्रीः पृष्ठे वचसि च गुणा एवभवतः॥ (१३३)

चन्द्रं चन्दनकर्दमेन लिखितं सा मार्ष्टि दष्टाधरा
वन्द्यं निन्दति यच्च मन्मथमसौ भंक्ताग्रहस्ताङ्गुलिः।
कामः पुष्पशरः किलेति सुमनोवर्गं लुनीतेच य
त्तत्कां सा सुभग त्वया वरतनुर्वातूलतां लम्भिता॥ (१३४)

प्रोषित

केयूरीकृतकङ्कणावलिरसौ कर्णावतंसीकृत
व्यालोलालकपद्धतिः पथि पुरो वद्धाञ्जलिः पृच्छति।
यावत्किञ्चिदुदन्तमात्मकमितुस्तावत्स एवैत्यथ
व्रीडावक्रितकण्ठनालमवला कैः कैर्न भिन्ना रसैः (१३५)

सवीर्ययश

दृष्टं संगमसाक्षिभिर्निगदितं वैतालिकश्रेणिभि
र्न्यस्तं चेतसि सज्जनैः सुकविभिः काव्येषु संचारितम्।
उत्कीर्णं कुशलैः प्रशस्तिविशदैः गीतंच नाकेषदां–
दानैर्निर्जितवैरिवीर भवतश्चन्द्रावदातं यशः॥ (१३६)

सा चन्द्रादपि चन्दनादपि दरव्याकोषकुन्दादपि
क्षीराब्धेरपि शेषतोपि फणितश्चण्डीशहासादपि।
कर्णाटीसितदन्तपत्रमहसोप्यत्यन्तमुद्द्योतिनी
कीर्तिस्ते भुजवीर्यनिर्जितरिपोर्लोकत्रयं भ्राम्यति॥ (१३७)

संकीर्ण

आश्लेषः प्रथमं क्रमेण विजिते कृत्ये धनस्यार्पणं
केलिद्यूतविदो पणं प्रियतमे कान्तांपुनः पृच्छति।
अन्तर्गाढ़विमूढमन्मथरसस्फारीभवद्दण्डया
स्वैरं शौरिविसारणाय निहितः स्वेदाम्बुगर्भः करः॥ (१३८)

मध्याह्न

धत्ते पद्मलतादलेप्सुरुपरि स्वं कर्णतालं द्विपः
शष्पस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्डं शिरः।

मिथ्या लेढि मृणालकोटिरभसाद्दंष्ट्राङ्कुरं शूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायामहाकर्दमम ॥ (१३९)

प्रदोष

सैरन्ध्रीकरकृष्टपट्टकसरत्ताराध्र्वनिदूरतो
दूतीसूत्रित-सन्धिविग्रहविधिः सोल्लासलीलाचयः ।
वारस्त्री-जनसज्ज्यमानशयनः संनद्धपुष्पायुध–
श्रीखण्डद्रवधौतसौधमलिनो रम्यः क्षणोवर्तते ॥ (१४०)

भोगावली

भिन्दानः सुन्दरीणां पतिषु रुषमयं हर्म्यपारावनानां
वाचालत्वं दधानः कवितृषु च गुणं प्रातिभं संदधानः ।
प्रातस्त्यस्तूर्यघोषः स्थगयति गगनं मांसलं पांसुतल्पा
दस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिणां श्रृङ्खलाशिञ्जितेन ॥ (१४१)

प्रिय-स्मरण

नागवल्लिरधिरोहतु पूगं
रात्रिरेणतिलकेन समेतु ।
त्वामसौ भजति कोकिलकण्ठी
वाचमर्चतु कवेः सुकृतार्थः ॥ (१४२)

श्रुतिसुख

वीणया च निनदेन च वेणोः
केकया च कलकण्ठगिरा च ।
शीत्कृतैश्च रणितैश्च वधूनां
भुञ्जते श्रुतिसुखानि युवानः ॥ (१४३)

तडाग

एतन्मानिनि मानसं सुरसरो निर्लूनहेमाम्बुजं
पार्वत्या प्रियपूजनार्थममुतो गङ्गासरिन्निर्गता ।
अस्माच्चित्तशिखण्डिभिश्चपरमे ब्रह्मण्युपादीयते
स्नानोत्तीर्णवृषाङ्क-भस्मरजसां संगात्पवित्रं पयः ॥ (१४४)

उपालम्भ

अध्वश्रमाय चरणौ विरहाय दारा
अभ्यर्थनाय वचनं च वपुर्जरायै
एतानि मे विदधतस्तव सर्वदैव
धातस्त्वया न यदि किं न परिश्रमोपि ॥ (१४५)

धन्य

शिलापट्टोद्घृष्टा मलयजरसालेपसुभगाः
स्फुरद्धूमामोदा दरदलित—कर्पूरसुहृदः।
इतः कम्बुच्छेदच्छविभिरहिवल्ली-किसलयै—
र्निषेवन्ते केपि क्रमुकफलपाणीन्: सुकृतिनः॥ (१४६)

———————

राजशेखर की पूर्वकवियों को श्रद्धाञ्जलि

कवि-प्रशस्ति

राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का न केवल अध्ययन किया था अपितु उनके गुणदोषों का सम्यक् परीक्षण भी किया था। पूर्ववर्ती कवियों के प्रति उन्होंने जो सादर श्रद्धांजलि अर्पित की है वह कविप्रशस्तिरूप में प्रस्तुत है—

१—द्रोण

सरस्वती-पवित्राणां जातिस्तत्र न कारणम्।
व्यासस्पर्धी कुलालोऽभूद्द्रोणो भारते कविः॥

२—गुणाढ्य

हुता शिखिनि गौणाढ्या स्तोकशेषाऽपि सा कथा।
सुरलीढेन्दुलेखेव लोके पूज्यतमाऽभवत्॥

३—पाणिनि

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्॥

४—भास

भासनाटक चक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

५—रामिलसोमिल

तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौरामिलसोमिलौ
काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम्॥

६—विजया

सरस्वतीव कर्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ।
या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम्॥

७—गणपति

अथो गणपतिं वन्दे महामोदविधायिनम्।
विद्याधरगणैर्यस्य पूज्यते कण्ठगर्जितम्॥

८—कुलशेखर वर्मा

दूरादपि सतांचित्ते लिखित्वाऽऽश्चर्यमञ्जरीम् ।
कुलशेखरवर्माऽऽभ्यां चकाराश्चर्य-मञ्जरीम् ॥

९—गोनन्दन

अनुप्रासिनि संदर्भे गोनन्दसमः कुतः ।
यथार्थनामतैवास्य यद्वाग्वदति चारुताम् ॥

१०—दण्डी

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥

११—मायुराज

मायुराजसमो जज्ञे नान्यः कलचुरिः कविः ।
उदन्वतः समुत्तस्थुः कति वा तुहिनांशवः ॥

१२—कुमारदास

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ॥

१३—सुभद्रा

पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे लघु सुभद्रया ।
कवीनां च वचोवृत्ति-चातुर्येण सुभद्रया ॥

१४—शीलाभट्टारिका

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि ॥

१५—विकटनितम्बा

के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रञ्जिताः ।
निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः ॥

१६—भीमट

कालञ्जरपतिश्चक्रे भीमटः पञ्चनाटकीम् ।
प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननम् ।

१७—मतङ्गदिवाकर

अहो प्रभावो वाग्देव्या यच्चाण्डालदिवाकरः
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यःसमो वाणमयूरयोः

१८—मयूरभट्ट

दर्पं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम् ।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ् निकृन्तति ॥

१९—रत्नाकर

मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे
इतीव स कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽपरः ॥

२०—त्रिलोचन

कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्थविजयं क्षमः ।
तदर्थः शक्यते द्रष्टुं लोचनद्वयिभिः कथम् ॥

२१—धनंजय

द्विः सन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः ।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयः ॥

२२—प्रभुदेवी

सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विलासभूः ।
प्रभुर्देवी कविर्लाटी गताऽपि हृदि तिष्ठति ॥

२३—कालिदास

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

२४—वाणवा

(१) सहर्षचरिता शश्वद् धृतकादम्बरीस्यदा ।
वाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा चरति क्षितौ ॥
(२) वाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत् कविकुरंगाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

२५—माघ

कृत्स्नप्रबोधकृत् वाणी भारवेरिव भारवेः ।
माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥

२६—भर्वुः

अवन्तिः काव्यमानर्च भर्वोमौखरिशेखरः ।
शिष्यो बाणश्च संक्रान्तकान्तवेद्यवचाः कविः ॥

२७—आनन्दवर्धन

ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्वनिवेशिना ।
आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः ॥

२८—तरल

यायावरकुलश्रेणे र्हारयष्टेश्चमण्डनम् ।
सुवर्णवन्धरुचिरस्तलस्तररलो यथा ।

२९—कादम्बरीराम

अकालजलदश्लोकै शिचत्रमात्मकृतैरिव ।
जातः कादम्वरीरामो नाटके प्रवरः कविः ॥

३०—अकालजलद

अकालजलदेन्दोः साहृद्या वचनचन्द्रिका ।
नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न च हीयते ॥

३१—सुरानन्द

नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
कवीनां च सुरानन्द श्चेदिमण्डलमण्डनम् ॥

३२—सातवाहन

पृथिव्यां ग्रथिता गाथाः सातवाहन-भूभुजा ।
व्यदधुस्ते तु विस्तारमहो चित्रपरम्परा ॥

३३—शंकरकवि

स्थिता माध्वीकपाकत्वान्निसर्गमधुरापि हि ।
किमपि स्वदते वाणी केषाञ्चिद् यदि शाङ्करी ॥

३४—व्यास

दन्तोलूखलिभिः शिञ्छिभिरिदं कन्दाशनैः फेनपैः ।
पर्णप्राशननिर्भिमिताम्बुकवलैः काले च पक्वाशिभिः ।
नीवार-प्रसृतिम्पचैश्च मुनिभिर्यद् वा त्रयीध्यायिभिः ।
सेव्यं भव्यमनोभिरर्थपतिर्भिस्तद् वै महाभारतम् ॥

३६—वाल्मीकि

योगीन्द्रच्छन्दसां स्रष्टा रामायणमहाकविः ।
वाल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो मुनिः ॥
ये विद्यापरमेश्वराः स्तुतधियो ये ब्रह्मपारायणे ।
येषां वेदवदादृता स्मृतिमयी वाग् लोकयात्राविधौ ।

स्नाताः स्वर्गतरङ्गिणीमपि सदा पूतां पुनन्तित्रयो ।
व्युत्पत्त्या परया रसोपनिपदां रामायणस्यास्य ते ॥
यदुक्ति-मुद्रा सुहृदर्थवीथी
कथारसो यच्चुलकैश्चुलुक्यः ।
तथाऽमृतस्यन्दि च यद्-वचोवै
रामायणं तत् कवितॄन् पुनाति ॥

३७—वररुचि

यथार्थता कथं नाम्नि याऽभूद् वररुचेरिह ।
तद्धत्त कण्ठाभरणं स सदारोहणप्रियः ॥

३८—प्रद्युम्न

प्रद्युम्नान्नापरस्येह नाटके पटवो गिरः ।
प्रद्युम्नान्नापरस्येह पौष्पा अपि शराःखराः ।

३९—अचल

कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयश्चापल-मात्रं परं दधति ॥

४०—नानाकवयः

इह कालिदास—भर्तृमेण्ठावत्रामररुपवर्षभारवयः ।
हरिचन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥
भासो रामिलसौमिलो वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कवि
र्मेण्ठो भारविकालिदास-तरलाः स्कन्दः सुबन्धुश्चयः ।
दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती यदि भवेत् के तस्य सर्वेऽपि ते ॥

—

राजशेखर-प्रशस्तयः

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता ।
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः ।
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद् भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दनीः ॥
समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः ।
यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः ॥
यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितः सूरिसमाजवर्यैः ।
नृत्यत्युदारं भणितेः रसस्था नटीव यस्योढरसा पदश्रीः ॥
स मूर्तो यत्रासीद्गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्द सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा ।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले ॥
आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधि
स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां गुरुः ।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्योः रघुग्रामणीः ॥

—

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

अप्पयदीक्षित .. चित्रमीमांसा—काव्यमाला सीरीज, १९४१ (३८)

अभिनवगुप्त .. अभिनवभारती—दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली १९६१

आनन्दवर्धन .. ध्वन्यालोक—चौखम्वा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९४०

कविकर्णपूर .. अलंकारकौस्तुभ—राजशाही, १९२६

कुन्तक .. वक्रोक्तिजीवित—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५

केशवमिश्र .. अलंकारशेखर—काशी संस्कृत सीरीज आफिस, वनारस, १९१७

क्षेमेन्द्र .. औचित्यविचारचर्चा—चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४

कविकण्ठाभरण—मोतीलाल वनारसीदास, १९६७

सुवृत्ततिलक—

दण्डी .. काव्यादर्श—चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८

धनजय .. दशरूपक—चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी, १९५५ १९५५

नरेन्द्रप्रभसूरि .. अलंकारमहोदधि—ओरियण्टल इन्स्टीटयूट, वड़ौदा, १८४२

भरत .. नाट्यशास्त्र—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, वड़ोदा, १९३४

भामह .. काव्यालंकार—वालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५६

भोजराज .. सरस्वती कण्ठाभरण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४

श्रृंगारप्रकाश—पुनर्वसु, मद्रास, १९६३
मम्मट .. काव्यप्रकाश—चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी, १९६०
राजशेखर .. काव्यमीमांसा—ओरियण्टल इन्स्टीटयूट, वड़ोदा, १९२४
रुय्यक .. अलंकारसर्वस्व संजीवनी—मोतीलाल वनारसी दास, १९६५
वामन .. काव्यालंकारसूत्र वृत्ति—काव्यमाला सीरीज, १९२६
विद्यानाथ .. प्रतापरुद्रयशोभूषण—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, १९०९
विश्वनाथ .. साहित्यदर्पण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
विश्वेश्वर .. अलंकारकौस्तुभ—काव्यमाला संस्करण, ..
हेमचन्द्र .. काव्यानुशासन—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४
देशीनाममाला—बम्बई, १८८०
शब्दानुशासन
वाग्भट .. काव्यानुशासनविवेक,

दृश्य-काव्य

कालिदास .. अभिज्ञानशाकुन्तल—चौखम्बा संकृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९५५
मालविकाग्निमित्र (नाटिका)—चौखम्वा सीरीज, आफिस, वाराणसी, १९५१
श्री हर्ष .. रत्नावली (नाटिका)—चौखम्बा संकृत सीरीज बनारस, १९५३
प्रियदर्शिका (नाटिका)—चौखम्बा संस्कृत, वाराणसी, १९५३
भवभूति .. उत्तररामचरित—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
महावीरचरित—चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, १९५५
मालतीमाधव (प्रकरण)—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
राजशेखर .. बालरामायण—बनारस, १९६९

बालभारत—निर्णयसागर प्रेस, वम्बई, १९४९
विद्धशालभंजिका (नाटिका)—चौखम्बा विद्या-भवन, वाराणसी, १९६५
बिल्हण .. कर्णसुन्दरी (नाटिका)—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८८

सट्टक

राजशेखर .. कर्पूरमंजरी—निर्णयसागर प्रेस, वम्बई, १९४९
कर्पूरमंजरी—आर्यभूषण प्रेस, पूना, १९६०
कर्पूरमंजरी—हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज, १९०१
कर्पूरमंजरी—युनिर्वासिटी ऑफ कलकत्ता, १९३९
घनश्याम .. आनन्दसुन्दरी—मोतीलाल वनारसीदास, १९५५
विश्वेश्वर .. शृंगारमंजरी— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
प्रसन्नचन्द्र .. रम्भामंजरी—निर्णयसागर प्रेस, वम्बई, १८८९
रुद्रदास .. चन्द्रलेखा

धर्म-ग्रन्थ

ऋग्वेद .. भारत मुद्रणालय, सतारा, १९४०
याज्ञवल्क्यस्मृति .. निर्णयसागर प्रेस, वम्बई, १९४९
बौधायन धर्मसूत्र .. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९३४
वैखानस गृह्यसूत्र .. " " "

गद्य-काव्य

बाणभट्ट .. हर्षचरित—निर्णयसागर प्रेस, वम्बई, १९४९
सोड्ढल .. उदयसुन्दरी-कथा
यशस्तिलकचम्पू—तारा यन्त्रालय, वाराणसी, १९६०
क्षेमेन्द्र .. बृहत्कथामंजरी—निर्णयसागर प्रेस, वम्बई, १९०१

अन्य

अमरसिंह .. अमरकोश, पूना, १९१३
आपटे वामन सदाशिव .. राजशेखर हिज़ लाइफ़ एण्ड राइटिंग्ज़—आर्यभूषण प्रेस, पूना, १८८६
बरो ए० .. भवभूति एण्ड हिज़ प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर—कलकत्ता, १७७८

डे० एस० के० एण्ड दास गुप्ता एस० एन० } दि हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर—कलकत्ता, १९६४
झा-गंगानाथ .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी अकादमी, इलाहाबाद १९५०
फ़्लीट ऑफ़ जॉन .. इंडियन एण्टीक्वेरी, १८८७
कीलहार्न एफ० .. एपिग्राफिका इण्डिका, १८८९
कृष्णमाचारी एम० .. दि हिस्ट्री ऑफ़ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास, १९३७
काणे पी० वी० .. एन इण्ट्रोडक्शन टू साहित्यदर्पण
मूलर एफ० एक्स० .. इण्डिया : व्हॉट कैन इट टीच अस ? लन्दन, १८८३
मिराशी वी० वी० .. पाठक कमेमोरेशन वाल्यूम
पीटर्सन एण्ड परब .. इण्ट्रोडक्शन टू वल्लभदेवाज सुभाषितावली, वाम्बे संस्कृत सीरीज़, १८८६
विल्सन एच० एच० .. सिलेक्ट स्पेसिमन ऑफ़ दि थियेटर ऑफ़ दि हिन्दूज़, वा० ३, लन्दन, १८७१
झा० गंगानाथ .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी एकादमी, इलाहाबाद, १९५०
संगीत रत्नाकर—आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुण्य-पतन, १९४२

मानविकी विषयक प्रकाशन

साहित्य तथा समीक्षा

१.	साहित्य समीक्षा के पाश्चात्य मानदण्ड	डॉ० [illegible]
२.	भारतेन्दु-युगीन हिन्दी नाटक	डॉ० [illegible]
३.	प्रसाद-युगीन हिन्दी नाटक	डॉ० [illegible]
४.	प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य	डॉ० [illegible]
५.	प्रगतिवादी काव्य-साहित्य	डॉ० कृष्ण[illegible]
६.	भारतीय पाठालोचन की भूमिका	डॉ० एस० एम० [illegible] अनुवादक : डा० [illegible] राय
७.	आचार्य हेमचन्द्र	डॉ० वि० भा० मुसलगाँवक[illegible]
८.	आचार्य मम्मट	प्रो० घुंडिराज गोपाल सप्रे

दर्शन तथा मनोविज्ञान

१.	वैज्ञानिक दर्शन का उदय	हेन्स राइखेनबाख अनु० अनन्त मराल शास्त्री
२.	वेदान्त का विकास और स्वरूप	डॉ० महेन्द्र शेखावत
३.	आधुनिक चिन्तन में वेदान्त	डॉ० महेन्द्र शेखावत
४.	भारतीय मनोविज्ञान (सांख्य एवं योग की पृष्ठभूमि में)	डॉ० लक्ष्मी शुक्ला

समाज-शास्त्र

१.	प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ	डॉ० कैलाशचन्द्र जैन
२.	वन्य समाज में अपराध और प्रथा	डॉ० ब्रानिस्लाव मेलिनोव[illegible] अनु० कौशल कुमार राय
३.	मानव, संस्कृति तथा समाज	सम्पादक : हेरी एल० शेपी[illegible] अनु० रामानुजलाल श्रीवा[illegible]

शिक्षा

१.	शिक्षालय-स्वास्थ्य	डॉ० एम० एल० गर्ग
२.	शिक्षा-प्रशासन एवं पर्यवेक्षण	के० सी० मलैया एवं डॉ० विद्यावती मलैया
३.	बुद्धि परीक्षण	डॉ० प्रह्लाद नारायण अग्नि[illegible]

इतिहास

१.	यूरोप का इतिहास १७८९–१८१५	डा० भगवानसिंह वर्मा
२.	रूस का इतिहास	जार्ज बर्नाद्स्की अनु० डा० उर्मिला अग्रवा[illegible] रतनकुमार

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व

१.	त्रिपुरी	डॉ० अजयमित्र शास्त्री
२.	भरहुत	डॉ० रमानाथ मिश्र

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल.